क्रान्तिवाद

हमारे कुछ प्रसिद्ध प्रकाशन

क्रान्तिवाद

(मानव विकास में विप्लव का महत्व)

लेखक
बिश्वनाथ राय
बी॰ ए॰, एल-एल. बी॰, संसद् सदस्य

१९५७
आत्माराम एण्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

मानव कल्याण हेतु

विप्लव की बलिवेदी पर

हंस हंस शीश चढ़ाने वाले

भारतीय क्रान्तिकारी हुतात्माओं में

शिरोमणि

स्वर्गीय सेनानी

चन्द्र शेखर आज़ाद

की

प्रेरणादायिनी स्मृति में

भूमिका

जिस प्रकार निर्धन की आर्थिक महत्वाकांक्षा प्रायः उसकी अभिलाषा मात्र ही रह जाती है उसी प्रकार क्रान्तिकारी के आदर्श बहुधा कल्पना ही के रूप में उसे सन्तोष देते हैं। विरला ही विप्लवी क्रान्ति की पूर्ण सफलता देख पाता है। भारतीय क्रान्तिकारियों का जीवन इसका उदाहरण है।

उनकी अनेकों पीढ़ियों के अध्ययन, मनन, त्याग एवं बलिदान तथा पराधीनता के विरुद्ध मानव प्रकृति के फलस्वरूप भारत में क्रान्तिकारी वातावरण उत्पन्न हुआ। युवक विप्लव की तरफ अग्रसर हुए। छात्र जीवन, राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राजबन्दी जीवन में लेखक भी क्रान्तिकारी आदर्श, तथा कार्यक्रम के लिए उत्सुक रहा। भारतीय क्रान्ति का अवसर आया। संसार विशेषतः एशिया उस से लाभान्वित हो रहा है।

मानव-विकास तथा विप्लव के इतिहास में मानवता के हित के अभिप्राय से गांधीवाद एवं नेहरूवाद भारत की अनोखी देन हैं। उनके नेतृत्व में भारतीय जनतन्त्र की स्थापना तथा उसके समाजवादी रूप का लक्ष्य क्रान्ति का नूतन प्रयोग है। समाज के समाजवादी ढांचे की घोषणा करने वाले भारतीय संसद् द्वारा भारतीय विप्लव की पूर्ण सफलता की मनोकामना सहित "क्रान्तिवाद" जनता के सामने प्रस्तुत करने में क्रान्तिकारी को इस आशा में हर्ष होना स्वाभाविक है कि भारतीय जनतन्त्र कभी समाजवादी जनतन्त्र के रूप में विश्व समाजवादी जनतन्त्र संघ की स्थापना में अग्रणी बन मानव उद्धार एवं कल्याण करेगा। क्रान्ति रूपी जिस साधन से संसार-व्यापी परिवर्तन होते हैं उसके सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण से विचार-विनिमय इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

मानव समाज की समस्याओं को हल करने के अभिप्राय से संसार में अनेकों प्रकार के प्रयत्न एवं आन्दोलन होते हैं। उनमें क्रान्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। कभी कभी उसके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान के अभाव में भ्रमात्मक बातें लोगों में प्रचलित हो जाती हैं। यदि उसका महत्व साधारण जनता को भी भली भाँति विदित हो जाय तो विश्व में मानव जाति के विकास में उससे बहुत सहायता मिल सकती है।

इस प्रयोजन से क्रान्ति या विप्लव की व्याख्या भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से होनी समाज के लिए हितकर है। क्रान्ति का असली अर्थ क्या है? यह क्यों होती है? इसके कारण क्या होते हैं? विप्लव कितने प्रकार के होते हैं? इसकी सफलता

के लिए किस कला का प्रयोग होता है ? जनता कहाँ तक उसे सफल बनाने में उपयोगी होती है ? राज तथा क्रान्ति में कैसा सम्बन्ध होता है ? किस किस क्रान्तिकारी घोषणा का विशेष महत्व एवं देन मानव विकास के इतिहास में है ? क्रान्ति, राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता में पारस्परिक सहयोग, प्रेरणा एवं शक्ति सम्बन्धी आदान प्रदान कैसे होता है ? क्रान्तिवाद तथा आध्यात्मिकवाद के लक्ष्य में कोई विशेष अन्तर होता है अथवा नहीं ? ऐसे प्रश्नों को समझने का प्रयास लाभदायक हो सकता है।

भारतीय विप्लवियों में विख्यात शहीद सरदार भगत सिंह के शब्दों से भी यह प्रकट होता है कि क्रान्ति हिंसात्मक अभिप्राय से नहीं होती है । विप्लव उस महान मौलिक परिवर्तन को कहते हैं जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक बुराइयों, रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं का नाश करके समाज का नया संगठन सार्वजनिक हित के लिए उपयोगी नियमानुसार करता है।

क्रान्ति के कारण कई प्रकार के होते हैं । वह किसी व्यक्ति, गुट या दल की इच्छा की प्रेरणा से नहीं होती है। उसके देश-व्यापी कारण होते हैं । उनसे जनता पीड़ित रहती है । राष्ट्र शोषण करने वाली प्रथाओं, रीतियों, रूढ़ियों, नियमों तथा शासन प्रणाली से मुक्त हो कर ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जिससे अधिक से अधिक लोगों को लाभ हो। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक बुराइयों के फलस्वरूप जो कारण समाज में बहुत दिनों से चले आते हैं, उन्हीं से क्रान्ति होती है।

विप्लव कई प्रकार के होते हैं । यों तो मानव विकास के प्रत्येक महत्वपूर्ण क्षेत्र में क्रान्ति होती है किन्तु विशेषतः राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विप्लव ही राष्ट्र या समाज में महान परिवर्तन करते हैं । धार्मिक क्रान्ति से आर्थिक स्थिति पर नहीं के बराबर प्रभाव पड़ता है । राजनीतिक तथा आर्थिक विप्लव से राष्ट्र का आन्तरिक एवं बाह्य मौलिक परिवर्तन होता है।

उसमें कई भेद होते हैं । परतन्त्र देश में पराधीनता के विनाश के लिए राष्ट्रीय विप्लव होता है। वह दो प्रकार का हो सकता है । राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति तथा पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति। स्वतन्त्र राष्ट्र में पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव अथवा समाजवादी विप्लव होता है। राष्ट्रीय समाज में एकतन्त्र, अधिनायकतन्त्र, गुटतन्त्र अथवा पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उथल पुथल होता है।

संसार के विप्लवों में कौन कौन विशेषतायें थीं जिनसे उन्हें सफलता मिली और कई देशों के समाज का राजनीतिक तथा आर्थिक ढाँचा ही बदल गया ? उनमें

जनता का कितना सहयोग था और उससे क्रान्ति में कितना बल मिला ? विप्लव के संचालन तथा नेतृत्व में जनता, दल या व्यक्ति विशेष का कितना महत्व होता है जिससे उसकी सफलता होती है ? क्रान्ति का प्रभाव राज पर कैसे पड़ता है ? क्या उससे सरकार बदलती है और राज स्थायी रहता है ? भविष्य में राज का विनाश सम्भव है अथवा केवल उसका रूपान्तर हो सकता है ?

इस प्रकार की महत्वपूर्ण बातों एवं प्रश्नों पर ध्यान रखते हुए विश्व में ऐतिहासिक विप्लवी घोषणायें हुईं । मानव समाज के मौलिक परिवर्तन में उनका प्रभाव केवल एक ही देश पर नहीं बल्कि अनेकों देशों पर पड़ा । किसी किसी देश की क्रान्तिकारी घोषणा से प्रेरित हो कर दूसरे देश के लोग भी उद्धार एवं कल्याण के लिए विप्लवी आदर्श अपनाने लगे । इससे विप्लव, राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता में केवल पारस्परिक सहयोग ही नहीं बढ़ा बल्कि एक दूसरे की पूरक होने लगी ।

उनमें एक का दूसरे से कैसा सम्बन्ध होता है ? वे आपस में विरोधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती हैं या तीनों मानव विकास में एक से आदर्श का प्रचार करती हैं ? यदि संसार की सारी मानव जाति का हित तीनों का लक्ष्य होता है तो आध्यात्मिक-वाद तथा क्रान्तिवाद में ध्येय सम्बन्धी अन्तर होता है या नहीं ? इन विषयों के सम्बन्ध में इस पुस्तक द्वारा विचार विनिमय सैद्धान्तिक रूप में हुआ है ।

आशा है कि मानव कल्याण हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास में इससे अनेकों बातों का स्पष्टीकरण होगा ।

संसद् भवन
नई दिल्ली

विषय-सूची

क्रान्तिवाद

पहला परिच्छेद

क्रान्ति

संसार जीवधारी प्राणियों का कार्य-क्षेत्र है। इसमें विभिन्न प्रकार के प्राणी अपना जीवन-निर्वाह प्राकृतिक नियमानुसार करते हैं। भिन्न-भिन्न तरह के अन्य जीवों की अपेक्षा मानव-जाति में अधिक गुण तथा विशेषता होने के कारण वह सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। उसी विशेषता के सहारे मानव-समाज के सदस्य अपने सार्वजनिक हित तथा व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयत्न किया करते हैं। सामूहिक कल्याण तथा अपने निजी सुख के लिए जो कार्य किये जाते हैं उनके फलस्वरूप सभ्यता का जन्म होता है।

यह बात अवश्य है कि सभ्यता का प्रारम्भ सर्वत्र एक साथ ही तथा एक ही प्रकार से नहीं होता है। पृथ्वी प्राकृतिक सीमाओं से विभिन्न भागों में विभाजित है। ऐसे विभाजन भिन्न-भिन्न देश कहलाते हैं। वैसे भाग प्रायः प्राकृतिक होने के कारण विभिन्न देशों के निवासियों के रहन-सहन तथा किसी अंश में उनके स्वभाव में भी कुछ अन्तर होता है। ऐसी भिन्नता के कारण सब देशों की सभ्यता न तो एक ही समय आरम्भ हुई और न उनका विकास एक ही प्रकार से हुआ। किसी-किसी मुल्क में उसके पड़ोसी देश से कई शताब्दी पहले सभ्यता का प्रारम्भ हुआ। मानव-उत्थान के साथ मनुष्य की दुर्बलताएँ लुप्त नहीं होती गईं।

चूँकि मानव-प्राणी के गुण या विशेषता के साथ ही कुछ दुर्बलताएँ भी रहती हैं इसलिए मानव-समाज के सामूहिक जीवन में भी उनका रहना स्वाभाविक होता है। समाज या राष्ट्र व्यक्तियों का ही समुदाय होता है। इससे कभी-कभी यह देखा जाता है कि किसी-किसी ऐसे देश में भी, जहाँ सभ्यता बहुत ही उच्च शिखर पर पहुँची रहती है, उसका पतन होता है।

अर्थात् राष्ट्र का उत्थान तथा पतन समय-समय पर हुआ करता है । जब मनुष्य के गुण प्रबल होते हैं तब उनकी तथा मानव-समाज या राष्ट्र की उन्नति होती है और जब दुर्बलताओं की प्रबलता हो जाती है तब सभ्यता तथा राष्ट्र का पतन होता है । वैसी दशा में प्रायः समाज के सार्वजनिक हित का ध्यान भी कम हो जाता है। संसार के इतिहास से यह मालूम होता है कि प्रत्येक जाति, राष्ट्र या देश के जीवन में कभी-कभी ऐसा समय आता है जब उसकी प्राचीन जीर्ण रूढ़ियाँ तथा प्रथाएँ समाज के लिए हानिकर सिद्ध होने लगती हैं। वैसी कुप्रथाएँ या रीति-रिवाज सामाजिक नियम के गलित अंग होते हैं। उनके मूलोच्छेदन से राष्ट्र या समाज का पुनरुद्धार होता है।

जिस समय सामाजिक व्यवस्था में वैसे पुनर्निर्माण की आवश्यकता मालूम होने लगती है, जब पुरानी रूढ़ियों वा रीति-रिवाजों को वर्तमान परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं की कसौटी पर कसकर उनके खरे या खोटे होने का निर्णय होने लगता है तथा जिस समय वास्तविकता के लिए समाज कटिबद्ध हो जाता है उस समय राष्ट्र के मंगलमय पुनर्जन्म का दर्शन करने में जनता समर्थ होती है। वैसे अवसरों पर राष्ट्र के पुनः उत्थान का प्रश्न उठता है। जो राष्ट्र समयानुसार सचेत हो जाते हैं उनका जीवन तथा उनकी सभ्यता संसार में जीवित रह जाती है। जो जातियाँ निष्क्रिय एवं आलसी बन जाती हैं वे निर्जीव हो जाती हैं। जब कभी राष्ट्र के पुनर्निर्माण का प्रश्न उठता है तब सदा जनता की भलाई की आवाज़ उठती है। सच्ची बात तो यह है कि समाज के हित के लिए ही उसके सारे नियम होते हैं। उसके बदले जब जनता के कल्याण का ध्यान नहीं रह जाता, और कुप्रथाओं तथा कुरीतियों से देश की हानि होने लगती है तब सार्वजनिक हित की रक्षा तथा राष्ट्र को पतन से बचाने के लिए समाज क्रान्तिवाद की शरण लेता है।

मानव-समाज के विकास के इतिहास में 'प्राचीनता' तथा 'नवीनता' में संघर्ष के फलस्वरूप विप्लव होने का प्रमाण मिलता है । जब 'पुरातन' अपना आधिपत्य जमाये रखना चाहता है और 'नवीन' उसे मिटाना चाहता

है तब पुरानी तथा नवीन विचारधारा में संघर्ष होता है। 'प्राचीन' अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए तथा 'नवीन' की प्रगति रोकने के लिए जब-तब क्रूर साधन का भी प्रयोग करता है। पीड़ा देने के सब साधन, फाँसी की रस्सियाँ, आजन्म कारावास तथा हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ इत्यादि अपनी-अपनी क्रूरता का पूरा सहारा लेने में नहीं हिचकती हैं। फिर भी पुरातन पराजित होता है तथा 'नवीन' अपना राज्य स्थापित करता है। विघ्न-बाधाओं का साहसपूर्वक सामना करते हुए तथा विपत्तियों को सहर्ष झेलते हुए 'नवीन' का प्रादुर्भाव वैसे ही होता है जैसे उषा की रक्तिम रश्मियों का आविर्भाव अन्धकारमय रात्रि के बाद होता है। इसी तरह क्रान्ति का शुभागमन अनेकों प्रकार की बाधाओं तथा विपत्तियों का सामना करने के बाद होता है।

संसार में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलते हैं, उथल-पुथल मचता है तथा उन्नति के लिए अनेकों प्रकार के प्रयास होते हैं। यों तो विश्व में छोटे-मोटे परिवर्तन प्रायः हुआ करते हैं किन्तु उनमें सब विशेष महत्वपूर्ण नहीं होते हैं। मानव-जाति की विकट समस्याओं को सुलझाने, कुरीतियों को नष्ट करने तथा लाभदायक संगठन बनाने के लिए जो प्रयत्न होते हैं उनमें विप्लव का स्थान सब से ऊँचा होता है।

आजकल 'क्रान्ति' या 'विप्लव' शब्द बहुत प्रचलित है। चारों तरफ इसकी पुकार मची है। आधुनिक युग में पराधीनता, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, तानाशाही, सामन्तशाही तथा अन्य कुप्रथाओं के विनाश के दिन ज्यों-ज्यों निकट आते जाते हैं, त्यों-त्यों उनके समर्थक घबड़ाते हैं तथा क्रूरतम उपायों का प्रयोग करते हैं किन्तु तब भी उन प्रतिक्रियावादी प्रथाओं का अस्तित्व भयंकर संकट में ही रहता है। क्रान्ति उन्हें संसार से मिटाने के लिए सक्रिय प्रयत्न कर रही है। जिस विप्लव का इतना महत्व विश्व में है उसकी विशेषता समझने के बदले कभी-कभी लोगों में उसके प्रति भ्रम पैदा हो जाता है।

भूल के कारण बहुतेरे लोग क्रान्ति का मतलब यह समझते हैं कि वह कोई ऐसी घटना होती है जो एकाएक, आश्चर्यजनक तथा हिंसात्मक

होती है । इस कारण उन लोगों के मन में यह आशंका उठती है कि विप्लव से देश में लहूलुहान होता है, उस समय उत्तेजित लोग भाले, बर्छी, रिवाल्वर या बन्दूक लिये अनेकों व्यक्तियों की हत्या करते हैं, व्यर्थ में रक्त बहता है, हत्यारों का बोलबाला होता है, मधुर स्वभाव वाले नर-नारियों पर अत्याचार होता है, प्रतिष्ठित महिलाओं का अपमान होता है या अनेकों मनुष्यों को बिना अपराध प्राणदण्ड मिलता है...आदि आदि ।

भ्रमवश कुछ लोग विप्लव शब्द ही से भयभीत होते हैं । उनके हृदय में इसकी बात उठते ही हिंसा तथा रक्त की गन्ध आने लगती है । घरों में आग लगाने, बच्चों के अनाथ होने, अकाल पड़ने तथा गृह-युद्ध होने की आशंका उत्पन्न होने लगती है । विध्वंस तथा अव्यवस्था की बात उन्हें आतंकित करती है । सम्भव है कि किसी देश में वैसी दुर्घटनाएँ घटित हुई हों परन्तु यथार्थ में वैसी बातें विप्लव के लिए आवश्यक नहीं होती हैं । वैसी आशंकाओं का कारण यह है कि वे क्रान्ति की असल महत्ता को नहीं समझते हैं । इससे विप्लव सम्बन्धी निराधार धारणाओं को छोड़ उसके विभिन्न दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिए ।

क्रान्ति का असली महत्व प्रकट करने के बदले वैसी भ्रमात्मक बातों से उसका विकृत रूप मालूम होता है । जैसे अगाध समुद्र में भयंकर बवण्डर के कारण जल का ऊपरी भाग ऊँची लहरों के रूप में जहाज को झकझोर देता है परन्तु जैसे उससे महासागर की गम्भीरता सदा के लिए नहीं मिटती वैसे ही समाज रूपी महासागर में क्रान्ति रूपी सामाजिक लहर उठने पर असाधारण परिस्थिति तो अवश्य उत्पन्न हो जाती है किन्तु देश की उन्नति तथा जनता के हित के लिए आवश्यकीय शान्ति शीघ्र ही स्थापित हो जाती है । विप्लव के समय अज्ञानता के कारण कभी-कभी वायुमण्डल दूषित हो सकता है परन्तु उससे क्रान्ति की आवश्यकता न तो कम हो सकती है और न उसकी महत्ता मिट सकती है । उसकी क्षणिक दुर्बलताएँ उसकी विशेषता तथा गुणों को नष्ट नहीं कर सकती हैं ।

यदि विप्लव सम्बन्धी वैसी भ्रमात्मक धारणाएँ किसी के हृदय में जम गई हों तो उन्हें मिटाकर सच्ची बात समझने का प्रयत्न करना

चाहिए। उसकी विशेषता समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले स्वतन्त्र मस्तिष्क से उस पर विचार किया जाय। सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिए कि क्रान्ति से विनाश बहुत कम होता है बल्कि उससे रचना तथा नव-निर्माण अधिक होता है। उसके द्वारा जनता अपने अधिकारों से वंचित नहीं की जाती बल्कि समाज के सदस्यों के अधिकार बढ़ते हैं। उससे विनाश कम बल्कि देशव्यापी रचना अत्यन्त अधिक होती है। वह अवनति के लिए नहीं बल्कि समाज की उन्नति के लिए होती है। यदि इस बात पर ध्यान रख क्रान्ति पर विचार किया जाय तो उसकी विशेषता तथा व्यापकता स्पष्ट रूप में प्रकट हो जायगी। तब उससे आतंकित होने के बदले लोग उसका स्वागत करेंगे।

इस अभिप्राय से विभिन्न दृष्टिकोण से विप्लव पर विचार करना चाहिए। सर्वप्रथम उसकी भिन्न-भिन्न परिभाषा समझने से मुख्य विषय जानने में बहुत सहायता मिलेगी। क्रान्ति स्थिर सत्य है जो प्राकृतिक होता है। फिर भी सत्य का प्रदर्शन कुछ लोगों को अच्छा नहीं मालूम होता है। बहुतेरे व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम्' वाली नीति का समर्थन करते हैं। हर अवस्था में सत्य मधुर तथा प्रिय नहीं होता है। अप्रिय होने पर भी मानव-हृदय इसका प्रदर्शन अपना कर्तव्य समझता है। ऐसी दशा में विपत्ति तथा कष्ट होने पर भी संसार सत्य को त्याग नहीं देता बल्कि उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने वाले व्यक्तियों, दल तथा समुदाय को पैदा करता है। इसी से हर युग में विप्लव के समर्थक या प्रचारक भी जन्म लेते हैं। उनकी सद्भावनाएँ, सिद्धान्त तथा आदर्श जितने ही ऊँचे होते हैं विपत्तियों में क्रान्तिकारी तथा उनके आदर्श उतने ही अविचल रहते हैं। कुछ लोगों को अपने स्वार्थ के कारण वैसे विप्लवी आदर्श भीषण या भयंकर प्रतीत होते हैं। अच्छे सोने में खराब धातु मिल जाने पर खरा स्वर्ण कुत्सित हो जाता है और उसे साफ करने के लिए फिर तपाना पड़ता है। वैसे ही जब सत्य स्वार्थों से कलुषित हो जाता है तो शुद्ध होने के लिए उसको भीषण रूप धारण करना पड़ता है। क्रान्ति की वही दशा होती है। विप्लव सत्य का भीषण

रूप होता है।

क्रान्ति सत्य की सच्ची आवाज़ है। यह न्याय का नवीन रूप है—न्याय का सच्चा मार्ग है। यह राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का निरोगीकरण है। न्याय की प्रबल पुकार जो विप्लव के रूप में उठती है कभी-कभी बड़ी डरावनी भी हो जाती है। विशेषत: अत्याचारी शासन या शासक तथा स्वार्थी गुट उससे बहुत डरते हैं। इस कारण वे विप्लव के अंकुर को ही निर्मूल करने का प्रयत्न करते हैं। तब भी क्रान्ति हर युग में होती है। भूतकाल में भी उसके उदाहरण मिलते हैं। आधुनिक काल तो उसका प्रदर्शन देख ही रहा है।

प्रबल विरोध होने पर भी वह सफल होती है। इसकी सफलता का मुख्य कारण यह है कि विप्लव एक प्राकृतिक विधान होता है। प्रकृति के नियमों पर ध्यान देने से ऐसा मालूम होता है कि क्रान्ति समाज के प्राकृतिक दोषों को दूर कर उसमें शुद्धि तथा पवित्रता उत्पन्न करने के लिए होती है। विप्लवी भावनाओं के उद्गार समाज के प्राकृतिक उद्गार होते हैं। सामाजिक शक्तियों का प्राकृतिक विस्फोट होने से अनेकों प्रकार के दमन होने पर भी विप्लव सफल होते हैं।

इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह बात बिल्कुल साफ-साफ प्रकट हो जाती है कि संसार में हर क्षण सृष्टि के साथ विनाश अथवा विनाश के साथ सृष्टि होती रहती है। जीव के शरीर के बढ़ाव के साथ ही उसके अनेकों सेल नष्ट होते रहते हैं। अपनी देह से लेकर संसार के प्रत्येक भाग तक प्रति मुहूर्त ध्वंस तथा रचना का कार्य चलता रहता है। किसी वस्तु, पदार्थ या जीव का नष्ट होना ही मृत्यु कहलाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि हमें सदा मृत्यु का सामना करना पड़ता है। उसी के साथ हमारा या अन्य जीवों का जन्म तथा विकास होता रहता है। सदा सृष्टि हो और विनाश न हो, यह सम्भव नहीं है। रचना, जीना अथवा सृष्टि का अर्थ ही अशुभ को नष्ट कर शुभ उत्पन्न करना होता है। प्रकृति में जो संघर्ष होता है उसका सामना किये बिना जीना असम्भव होता है। संघर्ष में जीवित रहने की शक्ति भी पैदा होती है। उस प्राकृतिक संघर्ष

में जिस ध्वंस तथा सृष्टि की लीला चलती रहती है उससे नवीन का जन्म होता है। इससे यह बात साबित होती है कि रचना के लिए जो आन्दोलन या संघर्ष होता है वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही होता है। जब यह बात मानव-समाज पर लागू होती है तब यह ज्ञात होता है कि क्रान्ति उसी सृष्टि तथा ध्वंस अथवा विनाश तथा रचना की लीला का सामाजिक रूप होती है।

अब दूसरे दृष्टिकोण से क्रान्ति की परिभाषा समझनी चाहिए। विप्लव उस महान् मौलिक परिवर्तन को कहते हैं जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों, रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं का नाश करके समाज का नया संगठन सार्वजनिक हित के लिए उपयोगी नियमानुसार करता है। यह ऐसा परिवर्तन तथा उथल-पुथल होता है जो बहुत प्रभावशाली तथा व्यापक होता है। ऑक्सफोर्ड तथा अन्य शब्द-कोषों में विप्लव का जो अर्थ दिया गया है उसके अनुसार भी इसका मतलब ऐसा पूर्ण परिवर्तन होता है जिससे समाज में उथल-पुथल हो जाता है, सामाजिक संगठन बदल जाता है तथा मौलिक नव-निर्माण होता है।

इसके द्वारा उन प्रथाओं, रीतियों तथा नियमों का अन्त होता है जो जनता के हित के लिए घातक होते हैं। उनके बदले ऐसी नई प्रथा, रीति तथा नियम बनते हैं जिनका लक्ष्य पूरे राष्ट्र या समाज का सुख होता है। उस विप्लवी परिवर्तन से अन्यायी शासन का अन्त होता है और उसके बदले नई शासन-प्रणाली तथा नीति का आरम्भ होता है। उससे बड़ी-बड़ी राजगद्दियाँ नष्ट हो जाती हैं, राजसिंहासन डाँवाँडोल हो जाते हैं, ऐसी शासन-प्रणाली का नामोनिशान मिट जाता है जिसके आतंक से प्रजा काँपती रहती है तथा उनके कर्मचारियों को जिनके अत्याचार से प्रजा कराहती रहती है, उचित दण्ड भोगना पड़ता है। उनके साथ ही उनके सहायक भी जो समाज तथा प्रजा का रक्त-शोषण अनेकों उपायों द्वारा किया करते हैं, अनुचित लाभ छोड़ने के लिए विवश होते हैं। ग़रीब तथा शोषित लोग जो अपने जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित रहते हैं, अपने अधिकार के लिए मर मिटने के लिए तैयार हो जाते हैं।

किसी-किसी देश में जहाँ परतन्त्रता रहती है पराधीन राष्ट्र विदेशियों को शक्ति-हीन कर तथा विदेशी शासन-प्रणाली के ढाँचे को बदल कर अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करता है। इस प्रकार तत्कालीन व्यवस्था के पुनर्संगठन के लिए जीर्ण प्रणाली रूपी पुरानी, कमज़ोर तथा बेकार इमारत जिसका सहारा विदेशी पाशविक शक्ति होती है, नींव से खोद दी जाती है और उसके बदले नये आधार पर सामाजिक व्यवस्था के नये नियम रूपी महल तैयार किया जाता है जिसकी नींव जनता की इच्छा पर अवलंबित रहती है। इन्हीं सारी बातों से विप्लव महान् परिवर्तन कहा जाता है।

अवश्य ही वैसा परिवर्तन संकटमय होता है। वह धीरे-धीरे नहीं बल्कि बहुत जल्दी-जल्दी होता है। किसी-किसी देश के वैसे परिवर्तन में शारीरिक बल का प्रयोग भी होता है। शारीरिक शक्ति लगने के कारण अशान्ति होती है। उस समय की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के समर्थक ही प्रायः तत्कालीन शासन-प्रणाली तथा सामाजिक नियमों की रक्षा के लिए बल-प्रयोग करते हैं और प्रगतिशील या क्रान्तिकारी शक्तियों को मिटाना चाहते हैं। वैसे लोग पुरानी कुरीतियों की रक्षा के लिए क़ानूनी तथा ग़ैरक़ानूनी उपाय की शरण लेते हैं। वे अपनी सुविधा के लिए बुरी प्रथाओं को चलाने का पूरा प्रयत्न करते हैं। परन्तु सामाजिक या क्रान्तिकारी शक्तियाँ आगे बढ़ती हैं तथा कुप्रथाओं को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। इस कारण उनमें तथा पुरानी व्यवस्था के समर्थकों में संघर्ष होता है। उस संघर्ष में पुरानी प्रथाओं का प्रभाव कम होते ही परिवर्तन शीघ्रतापूर्वक होने लगता है।

वैसे महान् परिवर्तन या विप्लव की गति बहुत तीव्र होती है। उसका वेग बहुत तेज होने के कारण स्वार्थी व्यक्ति, गुट या दल उसे रोकने में प्रायः असमर्थ होते हैं। इससे क्रान्ति अपना कार्य किसी न किसी अंश में अवश्य पूरा कर लेती है। यदि किसी कारण विप्लव असफल प्रतीत होता है तब भी यह इतना काम तो अवश्य ही कर लेता है जिससे विचार-

धारा में परिवर्तन हो जाता है। साथ ही इसका प्रभाव देश के प्रत्येक भाग पर पड़ता है। समाज का कोई भी अंग ऐसा नहीं रह जाता है जो उससे वंचित रह जाय। इसके द्वारा मनुष्य की विचार-शैली तथा दृष्टिकोण बदल जाता है। देशवासियों में नई प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। नई भावना जाग्रत होती है। इससे नया वायुमण्डल बन जाता है। आधुनिक युग में तो आवागमन में आश्चर्यजनक सुविधाएँ होने तथा एक राष्ट्र का संपर्क दूसरे देश से प्राचीन या मध्यकालीन युग की अपेक्षा बहुत बढ़ जाने से एक देश की क्रान्ति का प्रभाव दूसरे राष्ट्रों पर भी शीघ्र ही पड़ता है। विप्लवी परिवर्तनों से आस-पास के देशों पर तो बहुत अधिक असर पड़ता है। इसी से विप्लव का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है।

क्रान्ति किसी एक व्यक्ति के प्रयत्न से नहीं होती है। उसमें तो सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन होता है। इतिहास में इस बात के प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि महान् पुरुष विशेष समाज में कभी-कभी बिल्कुल नई परिस्थिति पैदा कर देते हैं। तब भी प्रायः वे अपने अनुयायियों की सहायता से ही विप्लव सफल बनाने में समर्थ होते हैं। वे अकेले राष्ट्रव्यापी परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि व्यक्तिवाद की अपेक्षा समूहवाद सदा श्रेयस्कर तथा शक्तिशाली होता है। विप्लवी संघर्ष में सामूहिक शक्ति व्यक्तितत्व की शक्ति पर विजय प्राप्त करती है और उसे अपने में सम्मिलित कर लेती है। व्यक्ति में अधिकार या पद की लालसा उत्पन्न हो जाने पर प्रायः अनर्थ होने लगता है। उसके फलस्वरूप निरंकुश एकतन्त्र (या राजतंत्र) तथा अधिनायकतन्त्र का जन्म होता है। वैसी अनधिकार चेष्टा एवं अनुचित स्वार्थ को रोकने के लिए समूह लड़ता है। अनियंत्रित व्यक्तिवाद या किसी वर्ग विशेष द्वारा किये गये अनर्थ, हानिकारक रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं को नष्ट करने के लिए जो आन्दोलन चलता है वह क्रान्ति का रूप धारण कर लेता है।

इस सम्बन्ध में भारत के विप्लवियों के विचार जानने से विप्लव का मतलब समझने में सहायता मिल सकती है। गुप्त रूप से क्रान्ति के

लिए प्रयत्नशील भारतीय विप्लवी दल में सब से अधिक सुसंगठित हिन्दुस्तानी समाजवादी जनतंत्र संघ एवं सेना के प्रतिनिधि की हैसियत से 'असैम्बली बम केस' में शहीद सरदार भगतसिंह ने न्यायालय में जो बयान दिया था उसमें क्रान्ति की व्याख्या का सारांश था। उस विश्वविख्यात विप्लवी के शब्द उद्धृत करना ही उचित है।

"..... In answer to that question, we would say that revolution does not necessarily involve sanguinary strifes nor is their any place in it for individual vendeta. It is not the cult of bomb and the pistol. By 'revolution' we mean that the present order of things, which is based on manifest injustice must change. Producers or labourers inspite of being the most necessary element of Society, are robbed by their exploiters of the fruits of their labour and deprived of their elementary right ....By revolution we mean the ultimate establishement of an order of society which may not be threatened by such break down and in which the sovereignty of the proletariat should be recognised and as a result of which the world federation should redeem humanity from the bondage of capitalism and the misery and peril of wars........ Revolution is the inalienable right of mankind."

अर्थात्..........इस प्रश्न के उत्तर में हम लोग यह कहेंगे कि विप्लव में लहूलुहान, रक्तपात या हत्या होनी आवश्यक नहीं होती है। साथ ही उसमें व्यक्तियों की हत्या का स्थान भी नहीं होता है। यह बम तथा पिस्तौल का पुजारी नहीं होता है। क्रान्ति से हम लोगों का मतलब यह है कि वर्तमान व्यवस्था जो प्रत्यक्ष अन्याय पर अवलंबित है अवश्य बदल जानी चाहिए। पैदा करने वाले तथा श्रम करने वाले लोग समाज के सबसे आवश्यक अंग होते हैं। फिर भी उनके शोषक उनके परिश्रम के फल को लूट लेते हैं और वे अपने आवश्यकीय अधिकारों से भी वंचित कर दिये जाते हैं।.........विप्लव से हम लोगों का मतलब समाज की ऐसी

व्यवस्था है जिसमें ऐसे पतन का भय न हो तथा जिसमें श्रमिकों की राजसत्ता मान्य हो जाय और उसके फलस्वरूप विश्व-संघ मानवता को पूँजीवाद, दुख तथा युद्ध के संकट से सुरक्षित कर दे······क्रान्ति मानव-जाति का अविच्छेद्य अधिकार है।"

हिन्दुस्तानी समाजवादी जनतंत्र संघ (तथा सेना) नामक गुप्त विप्लवी दल के नेता अमर शहीद सरदार भगतसिंह की क्रान्ति सम्बन्धी व्याख्या से विप्लव का मतलब मालूम होने के साथ ही एक और विशेष बात का पता चलता है। वह यह है कि किसी उच्च आदर्श को लक्ष्य मान तथा उससे प्रेरित होकर ही विप्लव होता है। उच्च ध्येय के बिना इन्कलाब हो ही नहीं सकता। हर युग में क्रान्ति का जन्म किसी ध्येय-हेतु होता है। इसका आगमन किसी विशेष महान अभिप्राय से होता है। स्वयं इसका लक्ष्य न्याय, सत्य, समानता तथा स्वाधीनता का राज्य होता है जिसमें जनता और समाज के सदस्यों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक हित की रक्षा हो।

इसी बात की चर्चा विप्लव सम्बन्धी उपरोक्त व्याख्या में है। उसमें सरदार भगतसिंह ने उस व्यवस्था ही को दोषपूर्ण साबित किया है जिसके अन्तर्गत शोषण की प्रथायें रहती हैं। किसी-किसी स्वतंत्र देश में भी स्वार्थी गुट या वर्ग अपने सुख तथा स्वार्थ की दृष्टि से नियम या कानून बनाते हैं। वैसे कानूनों से अधिकतर लोगों को किसी न किसी रूप में हानि पहुँचती है। कहीं-कहीं तो लोग अपने अधिकारों से भी वंचित रहते हैं। सत्य वा असत्य की जानकारी भी उन्हें अच्छी तरह नहीं रहती है। ऐसे कानूनों के कारण दरिद्रता बढ़ती जाती है। वैसी परिस्थिति में क्रान्ति का लक्ष्य सत्य, उन्नति तथा मानव-सुख होता है।

जो राष्ट्र विदेशी शासन के अधिकार में रहते हैं उनके विप्लव का ध्येय सर्वप्रथम स्वाधीनता होता है। वैसे देशों में सत्य का पूरा प्रचार और पूरी उन्नति तब तक असम्भव होती है जब तक स्वतंत्रता प्राप्त न हो जाय। पराधीन राष्ट्रों पर अन्याय तथा अत्याचार होना निश्चित रहता है। आर्थिक संकट के साथ ही उनका नैतिक पतन भी होता है। जनता का

शोषण साधारण बात होती है। किसी किसी स्वाधीन राष्ट्र में भी समाज की अल्पसंख्यक श्रेणी जनता का शोषण करती है। इससे समाज में दरिद्रता रहती है। ऐसी परिस्थिति में स्वतन्त्र देश हो या परतन्त्र विप्लव का मुख्य लक्ष्य राजनीतिक तथा आर्थिक समानता तथा न्याय होता है। बहरहाल यहाँ भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों पर अलग-अलग विचार नहीं करना है बल्कि विप्लव पर हर दृष्टिकोण से विचार-विनिमय करना ठीक है।

प्रत्येक अवस्था तथा परिस्थिति में क्रान्ति का ध्येय सदा दो प्रकार का होता है-- (प्रथम) विध्वंसात्मक, (द्वितीय) रचनात्मक। विनाशात्मक पहलू का मंतव्य सब बुराइयों तथा हानिकारक रूढ़ियों को नष्ट कर अत्याचार तथा अन्याय को रोकना होता है। उसका कार्य समाज के गलित अंग का मूलोच्छेदन होता है। अन्याय रोकने में इससे विशेष सहायता मिलती है। कुछ लोग, या कोई छोटा समूह (गुट), जब अपने स्वार्थ के लिए बहुत उत्पात मचाते हैं तो कभी-कभी उन्हें उचित दण्ड भी देना पड़ता है। अपने स्वार्थ के लिए वे विप्लव के मार्ग में रोड़ा अटकाते हैं। वैसी कठिनाई को दूर करने के लिए उन्हें ताड़ना मिलती है। इससे दोषपूर्ण, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था और अन्याई शासन-पद्धति की नींव हिलाकर समाज में उथलपुथल मचाया जाता है। ऐसे विध्वंसात्मक कार्यों द्वारा क्रान्ति अपने रचनात्मक ध्येय की पूर्ति के लिए कार्यक्रम आरम्भ करती है।

जहाँ तक इसके रचनात्मक लक्ष्य का सम्बन्ध है वहाँ तक इसका आदर्श सामाजिक व्यवस्था, सत्य, स्वाधीनता, समानता तथा न्याय होता है। इस ध्येय के लिए सक्रिय कार्यकर्ता को स्वयं त्यागी, गम्भीर और लोकप्रिय होना आवश्यक होता है। जिस क्रान्ति की अनुगामिनी जनता तथा नेतृत्व में उच्छृंखलता-रहित दूरदर्शिता अधिक होती है उस विप्लव की सफलता के लिये अधिक अनुकूल वातावरण तथा परिस्थिति प्रायः रहती है। विध्वंसात्मक कार्यों की अपेक्षा रचनात्मक कार्यक्रम महत्वपूर्ण होने से उपरोक्त गुणों की अभिव्यक्ति रचनात्मक कार्यों में अधिक होती है।

जनता के हितार्थ विध्यात्मक क्रान्तिकारी कार्यक्रम को पूरा करने के लिए विप्लव नये दृष्टिकोण द्वारा मानव-प्राणी की असल विशेषता का विकास करना चाहता है। सफल क्रान्ति से मनुष्य के प्रति मानव प्राणी का स्वतन्त्र सामाजिक भाव उत्पन्न होता है तथा सामूहिक जीवन के प्रति व्यक्तिगत जीवन की नई भावना का संचार होता है।

मानव-समाज के उत्थान तथा मानवता की विशेषता के विकास के अभिभाय से सम्बन्धित कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए विप्लव में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता बराबर रहती है। मनुष्य की जीविका सम्बन्धी आर्थिक कार्यक्रम के साथ ही यदि उसके हृदय तथा मस्तिष्क की उन्नति के लिए विप्लवी शक्तियाँ सचेत तथा सक्रिय रहती हैं तब तो क्रान्ति की पूर्ण सफलता होती है। रोटी की समस्या हल करने साथ मानसिक तथा बौद्धिक उत्कर्ष से ही मानवता की उन्नति होती है। जहां तक इस पहलू का सम्बन्ध है गांधीवाद इस दृष्टि से उच्चतम क्रातिकारी विचारधारा सिद्ध होती है। ऐसे मानवीय गुणौं के विकास के लिये अनुकूल वतावरण पैदा करना तथा समाज का नया दृष्टिकोण बनाना दो-चार वर्ष का कार्य नहीं होता है। उसके लिए तो दो-चार दसक लग सकते हैं।

उस काल में यदि क्रान्ति के नेताओं में स्वार्थ, लिप्सा तथा अदूरदर्शिता उत्पन्न हो जाती है तो विप्लव का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा-पूरा सफल नहीं होता है। जिस क्रान्ति का प्रवाह मानव प्राणी के प्राकृतिक स्वाभाव तथा संसार के मानव समाज के जीवन श्रोत के विपरीत होताहै, जिसमें उक्छृंखल एवं दुर्बल हृदय वाले तथा स्वार्थी व्यक्तियों का बोलबाला होता है, तथा जिसका नेतृत्व परिस्थिति तथा समय की आवश्यकताओं को समझ नहीं पाता है उस विप्लव का रचनात्मक ध्येय पूरा नहीं होता है। वैसी दशा में उन लोगों का दोष रहता है जो मानवता के उत्कर्ष सम्बन्धी विप्लवी विचारधारा को समझते नहीं हैं किन्तु क्रान्ति में कूद पड़ते हैं और कठिनाई उत्पन्न होने पर या तो अपनी स्थिरता खो देते हैं या अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की रक्षा के लिए सार्वजनिक भलाई की बात भूल जाते

हैं। वैसी हालत में वे विप्लव के लक्ष्य तथा कार्यक्रम की अवहेलना करते हैं। साधारण जनता तो समाज की पहेलियों को अच्छी तरह समझ नहीं पाती है। इससे वह वैसे दोषपूर्ण नेतृत्व को प्रायः बदल भी नहीं पाती हैं।

उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए जब किसी संगठित शक्ति के विरुद्ध आदोलन आरम्भ होता है तो उसकी प्रारम्भिक अवस्था में साधारण जनता को उसका असली महत्व नहीं मालूम पड़ता है। पहले कुछ शिक्षित प्रगतिशील व्यक्ति या दल उसे प्रारम्भ करते हैं या उस में भाग लेते हैं। प्रायः युवक उससे शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। फिर पीड़ित तथा शोषित लोगों में उसके द्वारा आशा उत्पन्न होती है। वे भी उसके समर्थक होते जाते हैं। धनीमानी लोग जो उस समय की शासन प्रणाली तथा सामाजिक व्यवस्था के समर्थक होते हैं प्रायः क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरुद्ध शुरू से ही रहते हैं। समाज के कुछ लोग तटस्थ रहते हैं। ऐसे लोगों में कुछ तो उसकी गंभीरता न समझने के कारण उसका मजाक उड़ाते हैं, कुछ मौखिक सहानुभूति रखते हैं और कुछ उसके प्रतिकूल बातें करते हैं। तटस्थ व्यक्तियों में प्रायः ऐसे लोग रहते हैं जो उसकी उपेक्षा करते हैं।

जब वही क्रान्ति अपने विकास की मध्य अवस्था में पहुँचती है तब उसका प्रभावशाली रूप प्रायः सब लोगों को मालूम होने लगता है। उस समय कुछ लोग तो क्रान्तिकारी समुदाय में सम्मिलित हो जाते हैं और कुछ लोग जिनके स्वार्थ को विप्लव से धक्का लगता है उसमें बिघ्न बाधा डालने लगते हैं। भीषण संघर्ष की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में विप्लवी शक्तियों की स्थिरता, साहस, बुद्धिमानी तथा नीतिकुशलता की कड़ी परीक्षा होती है। मतलब यह है कि वही समय विप्लवियों के लिये अधिक संकटमय होता है। वैसी परिस्थिति में योग्य तथा अनुभवी नेतृत्व सदा इस बात का प्रयत्न करता है कि तटस्थ जनता की सहानुभूति क्रान्ति के पक्ष में होती जांय और साथ ही उसके विरोधियों का सम्पर्क आम जनता से घटता जाय ताकि विपक्षियों का बल कम होता जाय। इस कठिन समय में यदि उनका त्याग, बुद्धि, शक्ति तथा सहिष्णुता अविचलित रहती है तो उन्हें सफलता प्रायः मिलती है।

उपरोक्त अवस्था के पहले क्रान्ति के लिये इस बात की सम्भावना रहती है कि वह तीन प्रकार के प्रतिरोध के रूप में प्रगट होवे। किन्तु हर देश में यह आवश्यक नहीं होता है कि उन तीनो की बारी आवे ही। इन्हें शांत प्रतिरोध, गुप्त प्रतिरोध तथा प्रगट प्रतिरोध जिसमें शारीरिक शक्ति का भी प्रयोग कभी-कभी होता है, कह सकते हैं। पहले प्रतिरोध की अवस्था में क्रान्तिकारी स्वयं कष्ट सहकर जनता को जागृत करते हैं तथा उसे संगठित कर अन्यायी शासन पद्धति के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। विप्लव के आदर्श को जनता विशेषत: शिक्षित समाज के सामने रखा जाता है। यह देख उस दोषपूर्ण अत्याचारी प्रणाली या सामाजिक व्यवस्था के संचालक, समर्थक तथा सहायक चौकन्ने हो उठते हैं। वे जनता तथा क्रान्तिकारियों के संगठन को तोड़ने के लिये कड़े से कड़े कानून बनाते हैं। उससे क्रान्तिकारी अधीर नहीं होते हैं बल्कि दृढ़तापूर्वक अपना कार्य नये ढंग से चलाते हैं। बहुत दमन और कठिनाई होने पर विप्लवी कार्यकर्ताओं को कभी-कभी गुप्त रूप से भी कार्य करना पड़ता है।

उसी अवस्था से गुप्त प्रतिरोध का प्रारम्भ होता है। वैसी परिस्थिति में गुप्त संगठन देश में बढ़ने लगता है। कभी-कभी इसका भंडाफोड़ भी हो जाता है और शासक उसको कुचल डालने का प्रयत्न अनेकों प्रकार से करते हैं। विप्लवी विचारधारा को रोकने के लिये तत्कालीन शासन प्रणाली के सभी कुचक्र चलने लगते हैं। किन्तु रुकने के बदले उसका वेग और बढ़ता ही जाता है। हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ, कारागार की काल-कोठरियाँ आजन्म कालेपानी की सजा तथा फांसी की रस्सियां उस क्रान्तिकारी प्रवाह को रोकने में बिल्कुल असमर्थ होती हैं। गुप्त प्रतिरोध में विप्लव की तीसरी अवस्था अर्थात् प्रगट प्रतिरोध की तैयारी होती है।

इन प्रतिरोधों के विषय में आगे किसी परिच्छेद में विचार किया जायगा। यहाँ इतना कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि शाँत प्रतिरोध तथा प्रगट प्रतिरोध में जिसमें शारीरिक शक्ति का प्रयोग भी जब-तब हो जाता है, एक भारी अन्तर होता है। शान्त प्रतिरोध में पहले तो आसानी मालूम होती है किन्तु बाद में कठिनाइयां बढ़ती हैं। पहले प्राय: यह ध्यान

नहीं रहता है कि उस प्रकार के संकट तथा कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। इसके विपरीत प्रगट प्रतिरोध की भीषणता आरम्भ ही से लोगों को मालूम होती रहती है। उसके लिये साधारण जनता में भी मानसिक तैयारी होती रहती है। उस प्रकार का प्रतिरोध पहले तो बहुत विकट जात पड़ता है किन्तु सफलतापूर्वक आरम्भ हो जाने पर उसकी मध्यम अवस्था में कठिनाइयाँ, जनता को विचलित करने में सफल नहीं होती हैं। इससे क्रान्तिकारी उसकी प्रारम्भिक भीषणता से अधीर नहीं होते हैं, बल्कि साहसपूर्वक विप्लवी प्रयास आरम्भ करते हैं। इसके द्वारा वे जनता को साफ-साफ दिखला देते हैं कि शासन पद्धति में आमूल परिवर्तन कर देना उतना कठिन नहीं होता है जितना लोग प्रायः समझते हैं।

अब इस बात पर विचार करना है कि इन तीनों प्रतिरोधों के पहले ही मानव जाति की प्राकृतिक भावनायें अनायास ही उसे क्यों जागृत करती हैं तथा नये नये विचार पैदा करती हैं। क्रान्ति किन सिद्धान्तों पर अवलंवित रहती है? मनुष्य के हृदय में इसके लिये प्रेरणा क्यों होती है?

इन प्रश्नों पर फ्रांस के विख्यात विचारक, रूसो ने प्रकाश डाला। वह सुधारों से सन्तुष्ट नहीं थे। इससे वह सुधारवाद के विरोधी थे। वह वह समाता के पक्षपाती थे। वह मजदूर, किसान तथा मध्यम श्रेणी वालों को बराबर अधिकार देनें के समर्थक थे। वह इस बात को नहीं मानते थे कि उन्नति केवल बुद्धिमानी के आधार पर ही होती है। बनावटी सभ्यता से उनका विरोध था। उनका ध्येय प्रजातन्त्र और समता थी। अपने इस आदर्श के लिये वह राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संगठन में उथल-पुथल द्वारा आमूल परिवर्तन कर नया संगठन स्थापित करना चाहते थे। विप्लव के बिना ऐसा नहीं हो सकता है। इसलिये वह क्रान्ति के सभर्थक थे और वह इस बात का प्रचार करते थे कि विप्लव द्वारा स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

रूसो का यह विचार था कि राजनीतिक संगठन के जन्म के पहले मनुष्य वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे। वे अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा कर सकते थे। उन लोगों के कार्य अधिकतर सहानुभूति, दया तथा स्वार्थ के भाव से होते थे। उस अवस्था में तर्क का पूरा

विकास नहीं हो पाया था। धीरे-धीरे सभ्यता की उन्नति के साथ स्वार्थ-साधन के लिए निजी सम्पत्ति की उत्पत्ति हुई जिससे गरीब तथा धनी और गुलाम तथा मालिक का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसके साथ ही समाज में कई अन्य बुराइयाँ पैदा हो गईं। इससे मनुष्य जाति का पहले वाला स्वाभाविक तथा प्राकृतिक आनन्द कम होता गया। मानवता की भ्रातृ-भावना दिन-प्रति-दिन कम होने लगी। उसके बदले धन तथा व्यक्तिगत वैभव की लिप्सा बढ़ने लगी। मनुष्य के व्यक्तिगत स्वार्थ एक-दूसरे के प्रतिकूल होने लगे। इसलिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता पड़ी जो पूरे समाज के सामूहिक हित की रक्षा करे। इसके फलस्वरूप राजनीतिक संगठन का जन्म हुआ। आरम्भ में राजनीति किसी आदर्श का विषय नहीं समझी जाती थी। नीच-ऊँच, दरिद्र-धनी तथा दास-स्वामी का प्रश्न पैदा होने पर राज की उत्पत्ति हुई। साथ ही राजनीति का प्रचार आवश्यक हो गया।

समाज में राजनीति द्वारा शासन-पद्धति तथा उसे चलाने वाली सरकार की स्थापना हुई। रूसो यह साफ-साफ कहते थे कि राजनीतिक शासन-प्रणाली, या सरकार जनता की सामूहिक स्वीकृति और राय से स्थापित हुई अर्थात् जनता की सामूहिक राय ही पर गवर्नमेण्ट निर्भर करती थी। यदि ऐसा नहीं होता तो मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं रह सकती थी।

रूसो के मतानुसार व्यक्तियों ने अपने प्राकृतिक अधिकारों को सामूहिक संगठन के हाथों में सौंप दिया। इससे राजनीतिक समाज के कुछ सामूहिक अधिकार भी स्थिर हो गये। पहले-पहल इस समाज में सब लोगों के अधिकार बराबर थे। उस सामूहिक अधिकार द्वारा व्यक्तियों की रक्षा होती थी। इसी अभिप्राय से जनता ने कुछ नियम या कानून बनाये। वे समान रूप में सब पर लागू होते थे। वैसे नियम समूह अथवा उसके सदस्यों के लिए होते थे—किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग के लिए नहीं। उन नियमों का एक मात्र लक्ष्य सार्वजनिक सुख ही था। बदि उनमें कुछ बुराई होती थी तो समाज का पूरा अधिकार था कि उस बुराई को

मिटादे और सब की भलाई के लिए नये नियम बनाये । इसी से जनता को हानिकर रूढ़ियों तथा बुरे नियमों को रद्द कर उनके बदले समाज में नया लाभदायक संगठन बनाने का जन्मसिद्ध अधिकार रहता है।

इस सम्बन्ध में रूसो ने इस बात को अच्छी तरह समझाया है कि राज और शासन-पद्धति या सरकार में भारी भेद होता है। राज से पूरे राजनीतिक समाज का बोध होता है । जहाँ तक राज का सम्बन्ध होता है वहाँ तक यह अपनी राय या अनुमति सार्वजनिक विचार (General Will) द्वारा प्रगट करता है । राजनीतिक समाज के सार्वजनिक विचार को कार्य-रूप में परिणत करने तथा उसे व्यक्तियों पर लागू करने के लिए राज या समाज जिन व्यक्तियों को नियुक्त करता है उनके संगठन को सरकार कह सकते हैं । चूँकि सरकार को जनता संगठित करती है इसलिए उसके इच्छानुसार सार्वजनिक हित के लिए उसमें अथवा शासन-पद्धति में परिवर्तन करने का उसे अधिकार होता है। सरकार तो जनता की नौकर होती है । अतएव यदि सरकार समाज के सामूहिक हित का ध्यान नहीं रखती है तथा अत्याचार या अन्याय करती है तो जनता का पूरा अधिकार होता है कि वह उस सरकार या शासन-व्यवस्था को बिल्कुल बदल दे । उपरोक्त बातें रूसो के क्रान्तिकारी विचारों का सारांश हैं।

अनेकों अन्य विद्वानों के विचार भी ऐसे ही थे । वे भी इस बात का प्रचार करते थे कि गवर्नमेण्ट या सामाजिक व्यवस्था के संगठन में जनता का पूर्ण अधिकार होता है । यदि शासन-प्रणाली अन्यायी हो तो उसे अधिकार है कि उस सरकार को बदल दे । ऐसा इसलिए न्यायसंगत है कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है । तब मानव-जाति को परतन्त्र रखकर उसे उसके अधिकारों से वंचित रखना अत्याचार तथा अन्याय होता है। अतः अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए समाज को हर प्रकार का अधिकार है कि क्रान्ति द्वारा शासन-पद्धति को बदलकर अपना अधिकार पुनः प्राप्त कर ले ।

ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर अमेरिका में स्वतन्त्रता के पुजारी

क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करते थे। उन्हीं की प्रेरणा से उस देश ने स्वाधीनता प्राप्त की। वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारी साहित्य द्वारा इस बात का प्रचार किया जाता था कि राजनीति के जन्म के पहले प्राकृतिक दशा में मनुष्य स्वतन्त्र थे तथा समानता के साथ रहते थे। सामूहिक भलाई के लिए मानव-जाति ने स्वयं अपनी इच्छानुसार राजनीतिक समाज का संगठन किया। उस समय उसके कुछ ऐसे अधिकार थे जिनको कोई भी सरकार छीन नहीं सकती थी। जनता ही के हाथों में सार्वभौम सत्ता होती है। इससे यदि शासन-पद्धति बुरी हो तो जनता द्वारा क्रान्ति होनी न्यायसंगत है।

जीवन के लिए स्वतन्त्रता, सम्पत्ति तथा सुख के लिए प्रयत्न करना मानव-जाति के जन्मसिद्ध अधिकार होते हैं। समाज के सामूहिक हित के साथ ही उसके सदस्यों की व्यक्तिगत स्वाधीनता तथा भलाई के लिए कार्य करना सरकार का कर्तव्य होता है। यदि शासन-प्रणाली अपना कर्तव्य-पालन नहीं करती है तो विप्लव होना अवश्यंभावी हो जाता है तथा दूसरी शासन-व्यवस्था जनता की इच्छानुसार स्थापित होनी आवश्यक हो जाती है। मनुष्य स्वतन्त्र तथा बराबर पैदा होता है। इसलिए कोई भी सरकार शासित प्रजा की स्वीकृति पर ही निर्भर होती है। साथ ही जब राजकर्मचारी जनता के नौकर होते हैं तब उन्हें अपने कार्य के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। यदि वे प्रजा के अधिकारों की अवहेलना करते हैं और अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं तो उन्हें अपने पद से पदच्युत होना चाहिए। अन्यायी शासन-पद्धति को पूर्ण रूप से बदलने के लिए क्रान्ति कारगर होती है। इसलिए आज़ादी के दीवानों का कर्तव्य विप्लव होता है। ऐसे ही सिद्धान्तों के आधार पर अमेरिका में स्वाधीनता-संघर्ष छिड़ा तथा स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

क्रान्तिकारी प्रेरणा उत्पन्न करने वाले प्राकृतिक अधिकारों तथा सिद्धान्तों का सारांश जानने के साथ ही विप्लव में काम करने वाली प्राकृतिक शक्तियों को भी जान लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सब लोग यह जानते हैं कि प्रकृति ने मनुष्य में दो प्रकार की शक्तियों को उत्पन्न

किया है---शारीरिक शक्ति तथा आत्मबल । अतएव क्रान्ति में इन दोनों शक्तियों का प्रयोग होना स्वाभाविक होता है । जीवन-संग्राम में मनुष्य के लिए इन दोनों का प्रयोग अनिवार्य होता है । संसार की उन्नति में भी इनका बड़ा हाथ रहता है । मनुष्य अपनी भलाई के लिए उनसे लाभ उठाता है । विप्लव समाज के उत्थान का एक साधन होता है । इससे इसमें दोनों प्रकार की शक्तियों का प्रयोग स्वाभाविक होता है ।

क्रान्ति के विनाशात्मक या विध्वंसात्मक ध्येय की पूर्ति के लिए शारीरिक शक्ति का प्रयोग अधिक होने की सम्भावना होती है । जब तक विप्लव का रूप शान्त प्रतिरोध अथवा गुप्त प्रतिरोध रहता है तब तक आत्म-बल या नैतिक शक्ति की अधिक आवश्यकता रहती है, किन्तु उस अवस्था के बाद जब प्रगट प्रतिरोध की बारी आती है तब शारीरिक शक्ति भी आवश्यक हो जाती है । क्रान्तिकारी लक्ष्य की पूर्ति के पश्चात् भी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन जरूरी होता है । यदि ऐसा न हो तो स्वार्थी व्यक्तियों या वर्ग द्वारा विप्लव असफल होने की बहुत आशंका रहती है और क्रान्ति-कारी संगठन या सरकार पर मार्मिक आघात होने का भय रहता है । इन्हीं कारणों से विप्लव आत्म-बल तथा शारीरिक शक्ति---दोनों को बराबर प्रोत्साहन देता है

इनके अतिरिक्त बौद्धिक शक्ति को आवश्यकता भी विप्लव में बहुत रहती है । क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरोधियों का यह आक्षेप रहता है कि विप्लव के प्रचारकों में तर्क की कमी होती है । ऐसी बातें बहुधा सुधारवादी लोगों या स्थिर स्वार्थ वाले व्यक्तियों या वर्ग के मुख से निकलती हैं । सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह साफ-साफ प्रगट होता है कि क्रान्ति में सुधारवाद की अपेक्षा तर्क की प्रबलता अधिक होती है ।

आखिर तर्क है क्या ? तर्क उस विचार-शैली को कहते हैं जिससे मानव-जाति भिन्न-भिन्न बातों में सत्य की खोज करती है । उचित मार्ग या उपाय निश्चित करने में यह सहायता करता है । इससे स्वार्थ, अन्याय तथा क्रूरता की बुरी भावनाओं का दमन होता है । यह स्वार्थ-

साधन तथा लिप्सा को रोकता है और मनुष्य को उच्च आदर्श के लिए उत्साहित करता है। साथ ही इससे समय के अनुकूल अपनी नीति, कार्यक्रम तथा नारा निश्चित करने में बहुत सहायता मिलती है। इसी से क्रान्ति में तर्क से काम लेना बहुत ही आवश्यक होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो राष्ट्र या व्यक्तियों में आत्म-बलिदान की भावना जागृत ही कैसे होती? यह तर्क ही है जो क्रान्तिकारियों को कण्टकमय मार्ग का अवलम्बन करने, त्याग तथा सर्वस्व न्योछावर करने के लिए उत्साहित करता है।

तर्क के बारे में एक बात अवश्य उल्लेखनीय है। सब देशों में विप्लव के सम्बन्ध में एक ही प्रकार का तर्क सफल नहीं होता है। विभिन्न राष्ट्रों की स्वाभाविक या प्राकृतिक भिन्नताओं के कारण क्रान्ति की सूक्ष्म विवेचनाओं के लिए उनके दृष्टिकोण में कुछ अन्तर होता है। किसी देश में विप्लव के प्रचारक भौतिकवाद से अधिक प्रोत्साहित होते हैं और किसी राष्ट्र में नैतिकता या आध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद दोनों के समन्वय से लोग क्रान्ति के लिए अधिक प्रेरित होते हैं। भारत ऐसे पूर्वीय देशों में आध्यात्मवाद या नैतिकता को भुलाकर लोगों में क्रान्तिकारी मनोवृत्ति उत्पन्न करनी अत्यन्त कठिन होती है। प्रायः पश्चिमी राष्ट्रों में भौतिकवाद की प्रधानता रहती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी-किसी राष्ट्र में नैतिकता से क्रान्ति के समर्थक अधिक प्रभावित होते हैं और किसी देश में केवल भौतिकवाद से ही लोग क्रान्ति की तरफ अधिक आकर्षित होते हैं। जब विप्लव के पक्ष में तर्क की सहायता ली जाती है तब ऊँचे आदर्शों से लोगों में प्रेरणा उत्पन्न करने के लिए भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद या नैतिकता का समन्वय होने से क्रान्ति के प्रचार में सुविधा हो जाती है।

मनुष्य की बुद्धि के साथ-साथ उसका हृदय भी सदा काम करता है। मस्तिष्क के तर्क के लिए यह आवश्यक होता है कि हृदय की भावनाएँ उसके अनुसार कार्य करने के लिए मनुष्य को तैयार करें। तर्क मानव-प्राणी से मशीन की तरह काम नहीं ले सकता है। जब बुद्धि तथा भावना

का मेल ठीक-ठीक होता है तब बड़े-बड़े कार्य पूरे करने में मनुष्य सफल होता है। इस बात पर ध्यान रखते हुए क्रान्ति के बुद्धिमान नेता समाज के सामने ऐसा आदर्श रखते हैं जिनसे मस्तिष्क तथा हृदय दोनों प्रेरित होते हैं अर्थात जो तर्क की कसौटी पर कसने से खरे तथा कल्याणकारी ज्ञात होते हैं और भावनाओं को जागृत भी करते हैं। अतः विप्लव को सफल बनाने के लिए मानव-जाति की उन्नति का आदर्श बतलाने से लोगों के हृदय की भावनाएँ प्रयत्नशील होने के लिए उन्हें उत्साहित करती हैं तथा मस्तिष्क का तर्क भी यही सिद्ध करता है कि ऊँचे आदर्श की पूर्ति होने से लोगों का हित हो सकता है।

इस प्रकार हमें यह मालूम होता है कि विप्लव के लिए आत्म-बल, शारीरिक शक्ति तथा बौद्धिक बल होना आवश्यक होता है। सच्ची बात तो यह है कि शारीरिक शक्ति के प्रयोग होने के पहले ही बौद्धिक तथा आत्म-बल की आवश्यकता पड़ जाती है। जब चतुर लोगों को अन्याय, अत्याचार तथा शोषण की जानकारी हो जाती है तब उन लोगों की बुद्धि तथा भावनाएँ उन्हें मिटाने के लिए सोचने तथा दृढ़ होने का कार्य करने लगती हैं। कुछ दिनों में उसके फलस्वरूप क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का प्रचार होने लगता है। इससे हमें एक और बात मालूम होती है। विप्लव किसी भयंकर संकट से समाज को बचाने ही के लिए होता है। उसमें उपरोक्त शक्तियाँ कभी महापुरुषों द्वारा और कभी जनसमूह द्वारा कार्य करती हैं।

यह बात अवश्य विचारणीय है कि यदि किसी व्यक्ति या गुट विशेष के प्रयत्न से राजनीतिक सत्ता नये व्यक्तियों के हाथ में आ जाय किन्तु आम जनता के अधिकार न बढ़ें या उनकी भलाई न हो तो उस परिवर्तन को विप्लव नहीं कहा जा सकता है। क्रान्ति के पहले आम जनता के जो अधिकार हों यदि वे विप्लव द्वारा बढ़ जायँ और अत्याचार, अन्याय या शोषण बहुत कम हो जायँ या मिट जायँ तब वैसा परिवर्तन विप्लव कहा जा सकता है। इससे यह बात साफ-साफ मालूम होती है कि आम जनता के अधिकार बढ़ाना, उनका कष्ट दूर करना और समाज

की भलाई करना ही विप्लव का असल लक्ष्य होता है। उस ध्येय की पूर्ति के लिए उपरोक्त शक्तियों का प्रयोग कभी-कभी विप्लवी महापुरुषों के रूप में होता है और कभी लाखों-करोड़ों के समूह के रूप में होता है। अर्थात् क्रान्ति को सफल बनाने के लिए महापुरुषों तथा जनता का घनिष्ट सहयोग विशेष लाभदायक ही नहीं बल्कि अनिवार्य होता है।

इस परिच्छेद को देखने के बाद भी यदि कोई क्रान्ति के सम्बन्ध में शंका करे तो उसे उन भ्रमात्मक बातों को भूल जाने का प्रयत्न करना चाहिए जो विप्लव के प्रतिकूल कही जाती हैं। निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र भाव से उस पर विचार करने से उसकी महत्ता साफ-साफ मालूम हो सकती है। फिर भी यहाँ शंका समाधान का प्रयत्न होना चाहिए। कभी-कभी सुधारवादी या विधानवादी लोग विप्लव के प्रतिकूल यह कहते हैं कि क्रान्ति के समय युद्ध की परिस्थिति पैदा हो जाती है। चूंकि लड़ाई से प्राय: लोगों को कष्ट होता है इसलिए ऐसा आन्दोलन जिससे युद्ध का वातावरण समाज में उत्पन्न होने की सम्भावना हो, जनता के लिए कष्ट-दायक हो सकता है। क्रान्ति भी एक प्रकार का युद्ध है। इससे उसकी आवश्यकता समाज को नहीं है............आदि आदि बातें।

इस प्रकार के क्रान्ति-विरोधी तर्क के उत्तर में तो यही कहना है कि युद्ध को समाप्त करने के लिए ही विप्लव की आवश्यकता होती है। संसार में जो शक्तियाँ गत दो-तीन शताब्दियों से युद्ध के लिए उत्तरदायी हैं उन्हीं को नष्ट करने के लिए तो इन्कलाब की जरूरत होती है। जिन देशों के शासक साम्राज्य स्थापित करने या अपना साम्राज्य सुरक्षित रखने के लिए दूसरे देशों पर अधिकार जमाते हैं या उन पर जमाने का प्रयत्न करते हैं वे ही युद्ध छेड़ते हैं। वे लोगों को ऐसी दशा में रखते हैं जैसी स्थिति प्राय: लड़ाई के समय होती है। शासित या शोषित जनता को तो उनके शासन में सदा कष्ट ही उठाना पड़ता है। युद्ध के समय तो वही बढ़ जाता है। अर्थात् साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और जमींदारी, ताल्लुकेदारी, जागीरदारी तथा रियासतों ऐसे सामन्तशाही के भग्नावशेष के अन्तर्गत रहने वाले लोगों को प्राय: वैसी परिस्थिति तथा कष्ट का सामना करना

पड़ता है जैसी छोटे-मोटे युद्ध के समय होती है। उनकी वैसी स्थिति को सदा के लिए मिटा देने के अभिप्राय से विप्लव होता है। इसी से इस बात का औचित्य सिद्ध होता है कि सर्वदा के लिए युद्ध का अन्त करने के लिए क्रान्ति की आवश्यकता होती है।

विप्लव समाज के लिए वैसे ही कार्य करता है जैसे कोई डाक्टर किसी रोगी के रोग का आपरेशन करता है। जैसे शरीर के सड़े घाव को अच्छा करने के लिए उसके आपरेशन से रोगी की पीड़ा कुछ समय के लिए बढ़ जाती है किन्तु कुछ दिनों में ही उसका सारा कष्ट मिट जाता है वैसे ही समाज की कुरीति, कुप्रथा तथा बुराई रूपी रोग को मिटाने के लिए समाज में विप्लव रूपी आपरेशन की जरूरत पड़ती है। इससे समाज के सदस्यों को कुछ समय के लिए असाधारण परिस्थिति का सामना करना पड़ता है किन्तु क्रान्ति सफल हो जाने पर समाज निरोग हो जाता है और जनता सुखी हो जाती है।

इसी से यह कहा जाता है कि क्रान्ति समाज के लिए विनाशकारी नहीं होती है बल्कि कल्याणकारी होती है। वह सुधारवादी नहीं होती है। विप्लव से समाज का मौलिक पुनर्निर्माण होता है। वह सामाजिक सफाई का कार्य करता है। उससे पुरानी जीर्ण व्यवस्था के स्थान पर नई लाभ-दायक प्रणाली की स्थापना होती है और उससे पहले की अपेक्षा लोगों की भलाई अधिक होती है।

पूंजीवादी व्यवस्था में तो ऐसे लोग जो प्रायः अल्पमत में हैं समाज के साधनों का उपयोग अपने हिस्से से बहुत अधिक करते हैं और जिन लोगों का भारी बहुमत है वे लोग अपनी आवश्यकतओं को पूरी करने के लिए भी साधन नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में विप्लव यह चाहता है कि जहाँ तक सम्भव हो अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख पहुँचाया जाय। इसी अभिप्राय से समाज क्रान्ति की शरण लेता है। जनता का सुख ही विप्लव का मुख्य लक्ष्य होता है।

दूसरा परिच्छेद

क्रान्ति के कारण

क्रान्ति क्या है ?——इसके विषय में विचार किया गया। साथ ही उसके मौलिक सिद्धान्तों को भी समझने के लिए प्रयत्न हुआ। अब यह देखना है कि क्रान्ति क्यों होती है? इसके सर्वव्यापी कारण क्या होते हैं ?

यह तो सभी जानते हैं कि समय-समय पर समाज में न्याय और अन्याय की प्रबलता होती रहती है। सामाजिक संगठन के भिन्न-भिन्न अंगों में कभी-कभी विकार उत्पन्न हो जाता है। इसे दूर करने के लिए क्रान्ति होती है। इस सम्बन्ध में लिखा जा चुका है कि क्रान्ति का ध्येय मानव-जाति के कष्टों का निवारण एवं सार्वजनिक हित होता है ताकि समाज में न्याय का राज्य स्थापित हो। यह बात सभी समझते होंगे कि मनुष्य का स्वभाव ही सुख, समानता तथा न्याय चाहता है। ऐसे ही मानापमान का विचार भी आदमी में स्वभावत: रहता है। कोई भी तिरस्कार नहीं पसन्द करता है। अनादर होने पर उसे दुख तथा ग्लानि होती है। वह आदर तथा बराबरी चाहता है। समानता की भावना रहने से समाज में न्याय की उत्पत्ति होती है। प्रकृति ही ने इसके प्रति प्रेम उत्पन्न किया है और अन्याय तथा अत्याचार के प्रति घृणा पैदा किया है।

मनुष्य मात्र के लिए उचित आवश्यकतानुसार प्राकृतिक साधन तथा उसके द्वारा उत्पादित पदार्थों का ठीक-ठीक वितरण करना तथा कराना न्याय कहलाता है। साथ ही सबके स्वार्थों का बरावर ध्यान रखना भी न्याय में निहित होता है। इसके प्रतिकूल केवल अपना, किसी व्यक्ति, वर्ग या राष्ट्र विशेष ही के स्वार्थों पर ध्यान रख दूसरे के हित का हनन करना अन्याय होता है। इस प्रकार जब किसी के साथ अन्याय होता है तब साथ ही उसका अपमान भी होता है क्योंकि उसके प्राकृतिक अधिकारों की अवहेलना होती है। अन्याय होने पर आदमी असमानता का भी अनु-

भव करता है। इसी अन्याय, अत्याचार तथा अपमान के प्रति घृणा और समानता, आदर तथा न्याय के प्रति प्रेम की भावना क्रान्ति का प्राकृतिक कारण होती है। क्रान्तिकारी भावना उत्पन्न करने में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

अन्यायी कोई व्यक्ति, वर्ग या राष्ट्र होता है जो किसी अन्य व्यक्ति, वर्ग या राष्ट्र पर अत्याचार करता है। मनुष्य न्याय का इच्छुक होता है। इससे स्वभावतः उसमें अन्याय करने वाले व्यक्ति, वर्ग या देश के प्रतिकूल घृणा उत्पन्न होती है। उस समय उसकी शारीरिक तथा नैतिक दोनों शक्तियाँ अत्याचार व अन्याय को मिटाना तथा अत्याचारी से छुटकारा पाना चाहती हैं ताकि भविष्य में इन बुराइयों की आशंका फिर न रहे। फलतः न्याय के लिए क्रान्ति का आगमन होता है। ध्यान-पूर्वक विचार करने से यह साफ साफ झलकता है कि मानव-जाति में मानापमान तथा आत्मसम्मान की भावना भी विप्लव का महत्वपूर्ण कारण होती है।

उपरोक्त बातों को यों भी कहा जा सकता है कि मानव-प्रवृत्ति में साधारणतः अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए साधन प्राप्त करने की इच्छा तथा उच्चादर्श की भावनायें सदा रहती हैं। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, या शिक्षित-अशिक्षित सब में किसी न किसी अंश में दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। इससे संसार में मनुष्य सदा उन्नति करने तथा आगे बढ़ने का प्रयत्न करता रहता है। उन्नति के मार्ग में जब रोड़े अटकाये जाते हैं तब मानव-हृदय में एक प्रकार की हलचल पैदा होती है। यह कहना ठीक होगा कि वही मानसिक हलचल या गतिविधि क्रान्ति की जन्मदायिनी होती है। वह मानवता की उन्नति का एक आवश्यक साधन बन जाती है।

अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने की इच्छा, उसके लिए संघर्ष का सामना करने की प्रवृत्ति, अपने सरीखे प्राणी तथा अन्य प्राणियों के प्रति साधारणतः सहानुभूति तथा मातृत्व की भावना जन्म से ही मनुष्य में रहती हैं। वैसे ही इस संसार में पैदा होते ही मानव-प्राणी के कई जन्म-

सिद्ध अधिकार हो जाते हैं। जीवित रहना, स्वतन्त्र रहना तथा सुख के लिए प्रयत्नशील रहना प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार होते हैं। प्रकृति ने जिन जीवों को उत्पन्न किया है उनमें से मानव-जाति पर विश्व में बहुत बड़े काम का भार रहता है। उस महान् कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राकृतिक तथा सामाजिक अधिकार होते हैं। यदि किसी व्यक्ति, वर्ग या व्यवस्था के कारण मनुष्य अपने जन्मसिद्ध अधिकारों से लाभ नहीं उठाने पाता है तो उसके साथ अन्याय होता है और तब वह स्वभावत: विप्लव के लिए अग्रसर होता है।

अन्यायी व्यवस्था वा शासन-पद्धति होने पर उसके विरुद्ध पहले मनुष्य के हृदय में घृणा उत्पन्न होती है। वह पहले छिपी रहती है। लोग पहले सारी परिस्थिति को समझने का प्रयत्न करते हैं और कुछ समय में इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि वैसे दोष-पूर्ण शासन-प्रणाली को बदलना उस समाज के हित के लिए आवश्यक है। कुछ दिनों तक घृणा की अग्नि संतप्त हृदय में धीरे-धीरे सुलगती रहती है और फिर वही ज्वाला हो भड़क उठती है। इसकी लपट इतनी प्रचण्ड हो जाती है कि अत्याचारी अपना मार्ग भूल जाता है और उसी ज्वाला में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर भस्म हो जाता है। इस अवस्था के पहले क्रान्ति सर्वप्रथम हृदय तथा मस्तिष्क में उत्पन्न होती है।

उसके साथ ही विचारों में विप्लव होता है। विचार-शैली में उथल-पुथल मच जाती है। समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है। फिर तो वायुमण्डल ही क्रान्तिकारी हो जाता है। उसमें जनता शिक्षित वा अशिक्षित क्रान्ति का पाठ पढ़ती है, उसके सिद्धान्तों पर मनन करती है तथा उसकी बलिवेदी पर चढ़ने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। हाँ, यह अवश्य है कि इसके आरम्भ में पहले काफी समय लगता है। कभी भी विप्लववादी आन्दोलन का प्रारम्भ तुरन्त ही नहीं होता है। इसके लिए क्रान्तिवादी वायुमण्डल आवश्यक होता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने में कुछ समय तो अवश्य लगता है किन्तु एक बार इसका अच्छी तरह प्रचार हो जाने पर क्रान्ति के ध्येय की पूर्ति किसी न किसी अंश में हो ही

जाती है।

उपरोक्त कारण यदि साधारण तथा थोड़े ही दिनों तक रहने वाले होते हैं तो क्रान्ति नहीं होती है। केवल काल्पनिक या क्षणिक दुखों के आधार पर यह नहीं हुआ करती है। उसके मूल में सदा ही कोई सर्व-व्यापी सिद्धान्त तथा कारण होता है। इस बात को अच्छी तरह समझना समाज के लिए जरूरी होता है, क्योंकि ऐसा न करने से प्रायः गलतियों की सम्भावना अधिक रहती है। इसी के फलस्वरूप कभी-कभी बहुतेरे लोग मुख्य सिद्धान्त तथा असल कारणों को भूल जाते हैं अथवा समझ ही नहीं पाते हैं और उनके बदले मामूली-मामूली घटनाओं ही को उसका असल कारण कहने लगते हैं। इस तरह मौलिक कारणों में साधारण बातें मिला देने से प्रायः भ्रम उत्पन्न हो जाता है क्योंकि तुरन्त ही असम्बन्धित तथा अस्पष्ट, विचार या घटनाएँ विप्लव-धारा में आने लगती हैं और वैसी मामूली बातें क्रान्ति के सच्चे इतिहास के रूप में प्रतीत होने लगती हैं। सिद्धान्तों का लाभदायक या हानिकर होना ही विप्लववादी व्यक्तियों तथा दलों की पवित्रता या अपवित्रता की परीक्षा की कसौटी होता है। इसलिए क्रान्ति की मुख्य बातों तथा उनके मौलिक कारणों को अच्छी तरह समझना अत्यन्तावश्यक होता है। सबको यह विदित होना चाहिए कि छोटी-मोटी घटनाएँ इसका मुख्य कारण नहीं बन सकती हैं। क्रान्ति का कारण सर्वदा बहुत व्यापक होता है। दसकों या शताब्दियों की बुराइयों के फलस्वरूप वह पैदा होता है। यह मुख्यतः अन्याय ही का प्रतिफल होता है जिससे दुख धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। जब मनुष्य को यह असहनीय हो जाता है तब मानव-समाज क्रान्ति की शरण लेता है। इन सब बातों का सारांश यह है कि क्रान्ति क्षणिक क्षोभ या ग्लानि के आधार पर नहीं होती है बल्कि सामाजिक व्यवस्था के गलित अंगों के मूलोच्छेदन के अभिप्राय से इसका बीजारोपण होता है।

मानव-समाज में सामाजिक तथा धार्मिक विप्लव भी होते हैं किन्तु राजनीतिक तथा आर्थिक क्रान्तियाँ ही अधिकतर होती हैं। राजनीतिक

विप्लव के जो कारण होते हैं उनका घनिष्ट सम्बन्ध सामाजिक कुरीतियों से होता है। दोनों का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है। प्रायः राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक बुराइयों तथा कुरीतियों का आपसी लगाव रहता है। एक के कारण दूसरी बुराई जल्दी ही पैदा हो जाती है। इससे क्रान्ति के कारणों में उन तीनों का गहरा सम्बन्ध होता है। बहरहाल जनता को कष्ट पहुँचाने वाली शासन-प्रणाली के प्रतिकूल विप्लव के कारण तीनों प्रकार के होते हैं—राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक।

स्वतन्त्र देश में वहाँ की राष्ट्रीय गवर्नमेंट होने पर भी यदि सरकारी कर्मचारी, राजा या शासक निरंकुश तथा स्वार्थी होते हैं और भोग-विलास में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे प्रजा के लिए घातक हो जाते हैं तो उन देशों में राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक तीनों तरह के कारणों की प्रधानता रहती है। ये तीनों एक में इस तरह मिले-जुले रहते हैं कि उनकी विवेचना अलग-अलग करनी कठिन होती है। उदाहरण के लिए रूस तथा चीन की राज्य-क्रान्तियाँ सामने हैं। उन देशों के तत्कालीन विप्लवी कारणों को यदि कोई पृथक-पृथक छाँटना चाहे तो बहुत कठिनाई होगी।

मतलब यह है कि जब सरकार मानव-प्राणी के प्राकृतिक अधिकारों पर हमला करती है या प्रकृति द्वारा निश्चित जन्मसिद्ध अधिकारों को पूरा नहीं करती है तब विप्लव के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कारण पैदा हो ही जाते हैं। किसी देश में आर्थिक समस्याएँ बहुत भंयकर होती हैं और किसी राष्ट्र में राजनीतिक प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

ऐसे देशों में जहाँ राष्ट्रीय सरकार नहीं रहती है और विदेशी सरकार शासन करती है वहाँ की परिस्थिति बिलकुल दूसरे ही ढंग की होती है। पराधीन लोगों के हृदय में तो यह भावना सदा उठा ही करती है कि स्वाधीन राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति या समाज को उन्नति करने के लिए सहज में साधन मिल जाते हैं किन्तु परतन्त्र देश में ठीक उसके उलटा होता है। जब कोई एक देश दूसरे राष्ट्र को अपने आधीन रखता है तो परतन्त्र समाज का आर्थिक तथा साथ ही नैतिक पतन भी होता है। शोषण होने

के कारण उसकी सम्पत्ति दिन-दिन घटती है । शासन करने वाली शक्ति अपनी प्रभुता जमाने के लिए जिन दूषित आचरणों का व्यवहार करती है उनसे विजित राष्ट्र का अधःपतन होना अनिवार्य होता है । नैतिक तथा आर्थिक नाश से राष्ट्र या समाज को बचाने के लिए पराधीनता के विरुद्ध क्रान्ति की लहर उठती है तथा सामाजिक संगठन में नवीनता का संचार करती है ।

पराधीन देशवासियों के हृदय में यह बात जमी होती है कि शासन करने वाली गवर्नमेण्ट का कर्तव्य होता है कि वह प्रजा में उत्तम गुणों का विकास करावे परन्तु विदेशी सरकार प्रायः घृणित दोषों की वृद्धि में सहायता करती है । स्वतन्त्र राष्ट्र का शासन सद्गुणों को उत्साहित करता है किन्तु विदेशी शासक प्रायः नीच प्रवृत्तियों को ही प्रोत्साहन देते हैं । इस दुर्नीति से अवश्य ही जनता में अनाचार बढ़ता है । विदेशी शासकों की कृपा उन पर होती है जो स्वदेश की कुप्रथाओं से लाभ उठाने के लिए यह चाहते हैं कि बुराइयाँ किसी न किसी रूप में जारी रहें । इन कारणों से आर्थिक कष्ट के साथ परतन्त्र लोगों को मानसिक पीड़ा भी होती रहती है । इससे पराधीनता के प्रतिकूल उनके हृदय में सदैव आग धधकती रहती है । इससे लोग सर्वप्रथम उस विदेशी शासन-पद्धति को नष्ट करना चाहते हैं । अतएव परतन्त्र देशों में क्रान्ति का मुख्य कारण राजनीतिक तथा आर्थिक होता है ।

ऐसे देशों में समाज का सर्वप्रथम लक्ष्य स्वाधीनता रहता है । यह निश्चित बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर सामाजिक तथा आर्थिक बुराइयों को मिटाना बहुत सरल हो जाता है । पराधीन देशों में ता हानिकर रूढ़ियों को दूर करना भी कठिन होता है क्योंकि विदेशी शासन-प्रणाली यही चाहती है कि उनसे राष्ट्र में दुर्बलता रहे और फिर उन कमजोरियों से अनुचित लाभ उठा शासन करने में आसानी रहे । यदि कभी कुरीतियों को मिटाने का आन्दोलन भी होता है तो विदेशी शासन उसमें अडंगा पैदा करता है । इसी से उन देशों के लोग सबसे ज्यादे राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों से दुःखी रहते हैं । इन्हीं बातों से

पराधीन राष्ट्र में स्वाधीनता के लिए विप्लव होता है।

स्वतन्त्र देश में आर्थिक, या सामाजिक अथवा दोनों प्रकार की बुराइयाँ रहने पर उन्हें मिटाने के लिए जब समाज में आन्दोलन होता है तो अपने देश की सरकार होने से राजनीतिक सुविधा कुछ न कुछ अवश्य मिलती है, किन्तु पराधीन राष्ट्र को विदेशी शासन से प्रायः इस कार्य में सहायता नहीं मिलती है। अर्थात् उन्हें राजनीतिक सहूलियत नहीं रहती है। यह कहना आवश्यक है कि स्वाधीन राष्ट्र में भी विशेष सुविधा तभी मिलती है जब शासन या तो जनता के नियन्त्रण में रहता है या शासक अपने देश की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यदि देश विदेशियों के शासन में न भी हो किन्तु एकतन्त्र हो तो साधारण जनता की उन्नति का ध्यान बहुत कम रहता है। राजनीतिक सुविधा तभी पूरी हो सकती है जब स्वतन्त्र राष्ट्र में जनतन्त्र हो।

जिन देशों में शासन-पद्धति साधारणतः ठीक रहती है परन्तु सामाजिक परिस्थितियाँ ठीक नहीं होती हैं वहाँ सामाजिक क्रान्ति होती है, क्योंकि राजनीतिक तथा आर्थिक सुख के बाद मनुष्य सामाजिक समानता प्राप्त करना चाहता है। अवश्य ही वैसी सामाजिक क्रान्ति राजनीतिक तथा आर्थिक विप्लव के समान महत्वपूर्ण तथा भीषण नहीं होती है।

उपरोक्त बातों पर अच्छी तरह प्रकाश डालने के लिए यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन-प्रणालियों के उदाहरण दिये जायँ। किसी-किसी देश में राजतन्त्र (Monarchy) होता है। वहाँ सरकार का प्रधान संचालक राजा होता है। वहाँ की सरकार के कर्मचारी भी रहते हैं। यदि राजा या बादशाह स्वयं पापी तथा आत्याचारी रहता है तो प्रायः उसके कर्मचारी भी प्रजा के हित का ध्यान नहीं रखते हैं। यदि वह स्वेच्छाचारी, विलासी तथा मूर्ख होता है तो उसकी गवर्नमेण्ट भी बहुधा उसके कर्मचारियों की स्वेच्छाचारिता सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करती है। रूस के ज़ार का शासन ऐसी ही सरकार का एक नमूना था। वैसे राज्य में पहले उस बादशाह तथा उसके कर्मचारियों के

प्रति घृणा उत्पन्न होती है तथा उनके विरुद्ध आवाज उठती है। असन्तोष फैलता है। तब प्रजा अपने कष्टों को प्रगट करना आरम्भ करती है, किन्तु सरकार इसकी परवाह नहीं करती है, क्योंकि राज्य के कर्मचारियों को तो प्रजा के सुख का ध्यान रहता नहीं है। अपनी विलासिता तथा वैभव के लिए वे अधिक से अधिक कर प्रजा से वसूल करते हैं। दिन-प्रतिदिन उनकी लिप्सा बढ़ती जाती है और प्रजा लूटी जाती है। कुछ समय में जनता बिलकुल निर्धन हो जाती है और भोजन-वस्त्र भी मिलना कठिन हो जाता है।

फिर तो बुभुक्षितों की आँखें खुलती हैं और वे यह समझने लगते हैं कि उनके सारे कष्टों के कारण स्वयं उस देश के राजा तथा राज-कर्मचारियों की करतूतें ही हैं। पीड़ितों में से कुछ ऐसे व्यक्ति या शिक्षित सज्जन निकल आते हैं जो जनता को संगठित करना आरम्भ करते हैं। शासन की आँखों में ऐसे कार्यकर्त्ता खटकने लगते हैं। इससे उनको दबाने का प्रयत्न किया जाता है तथा संगठन को तोड़ने की हर प्रकार से कोशिश की जाती है। संगठनकर्त्ता जेलों में ठूंस दिए जाते हैं, सताये जाते हैं, गोली के निशाना बनाये जाते हैं तथा कितने ही फाँसी के तख्ते पर चढ़ाये जाते हैं। यह परिस्थिति उत्पन्न होने पर प्रजा को साफ-साफ मालूम हो जाता है कि तत्कालीन शासन-प्रणाली उनके हित के लिए नहीं कायम है बल्कि राजा या राज-कर्मचारियों की विलासिता या स्वेच्छाचारिता के लिए ही है। दमन बढ़ता जाता है और साथ ही प्रजा की भूख की ज्वाला भी बढ़ती जाती है। फिर तो जनता मर-मिटने के लिए उद्यत हो जाती है। इन सब बातों से यह मालूम हो जाता है कि क्रान्ति के कारण धीरे-धीरे मनुष्य को उसके लिए तैयार करते हैं। एक कारण के साथ ही दूसरी बहुत सी बातें पैदा हो जाती हैं। जब तक गवर्नमेण्ट एक को मिटाना चाहती है तब तक उसके अत्याचार या स्वार्थ की वजह से दूसरा कारण उत्पन्न हो जाता है।

ऐसे ही क्रान्तिकारी कारणों से फ्रांस में १७८९ में एकतन्त्र के प्रतिकूल विप्लव हुआ और प्रजातंत्र के रूप में नई राजनीतिक शासन-

प्रणाली तथा सामाजिक व्यवस्था स्थापित हुई। उस व्यापक क्रान्ति के बाद तो एकतन्त्र के विनाश का युग आरम्भ हो गया। तब भी दुनिया में कहीं-कहीं अनियन्त्रित राजतन्त्र चलता रहा। फ्रांसीसी विप्लव के बाद भी कई देशों में निरंकुश एकतन्त्र जारी था। रूसी क्रान्ति से उस प्रथा को जोरों से निर्मूल करने में सहायता मिली। उससे एक नई व्यवस्था कायम हुई। एकतन्त्र के दिन समाप्त हो गये। अब जनतन्त्र का युग अपना प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ाता जा रहा है। जिस देश में अधिनायक-तन्त्र (Dictatorship) होता है वहाँ भी प्रायः उसी प्रकार क्रान्तिवादी कारणों का जन्म होता है। उसके बाद आगे चलकर कुछ-कुछ अन्तर हो जाता है। मोटे-तौर पर यह कहा जा सकता है कि राजतन्त्र और अधिनायकतन्त्र के विरुद्ध विप्लवी कारणों में बहुत एकता होती है।

राजतन्त्र का दावा तो यह है कि राजा में ईश्वरीय अंश होता है और वह प्रजा की रक्षा करने के लिए जन्म से ही अधिकारी होता है। अधिनायकतन्त्र इस तरह के अधिकार का दावा तो नहीं करता है किन्तु तब भी उसका आचरण लगभग वैसा ही होता है जैसा एकतन्त्र का व्यवहार प्रजा के साथ होता है। हाँ, बीसवीं शताब्दी का राजनीतिक अभिशाप, "नाजीवाद" अपने फुहरर को राजा ही की तरह समझता था।

जैसा भी हो राजतन्त्र तथा अधिनायकतन्त्र के प्रतिकूल जिन कारणों से विप्लव होते हैं उनमें केवल अत्याचार या आर्थिक कारण ही प्रमुख नहीं होते हैं बल्कि मानसिक विद्रोह भी वैसा ही महत्वपूर्ण होता है। जन्म से ही सब लोग समाज पर निर्भर रहते हैं और साथ ही व्यक्ति समाज का एक अविच्छेद्य इकाई बनकर उसका कार्य करता है। इससे जहाँ तक प्रकृति तथा मानव स्वभाव का सम्बन्ध है सब लोग सामाजिक तथा आर्थिक बराबरी चाहते हैं। प्रकृति ने भी सबको बराबर पैदा किया है। चाहे राजा का लड़का हो अथवा किसी गरीब आदमी का पुत्र हो, दोनों समाज की सहायता के बिना रह नहीं सकते हैं। तब ऐसी दशा में धनी होने से राज-पुत्र या राजा समाज की सामूहिक शक्ति तथा अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता है। वह समाज की एक इकाई होता है।

ऐसी प्राकृतिक बातें होने पर उसे वही प्राकृतिक तथा सामाजिक अधिकार होने चाहिएँ जो अन्य व्यक्तियों के लिए होते हैं। यही भावना एकतन्त्र तथा अधिनायकतन्त्र दोनों के प्रतिकूल विप्लव का मानसिक कारण होती है।

एकतन्त्र वाले राष्ट्र में राजा तथा उसकी सरकार के अतिरिक्त बड़े-बड़े ताल्लुकदारों का दल होता है, जो जनता का शोषण करता है तथा अपना कोष भरता है। ऐसे समुदाय को श्रेष्ठजन सत्तात्मक शासन-प्रणाली (Aristocracy) कहा जा सकता है। इस बीसवीं सदी में भी भारतवर्ष की देशी रियासतों में वैसी शासन-प्रणाली थी। फ्रांस में फ्राँसीसी क्रान्ति के पहले वैसी शासन-व्यवस्था थी। इसका अनुभव भारत-वासियों को काफी है। इससे इसके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, इतना कहना अच्छा होगा कि उस कुप्रथा के कारण समाज के थोड़े से आदमियों के हाथों में कई आर्थिक, सामाजिक तथा राज-नीतिक विशेषाधिकार रहते हैं और वे लोग सारे समाज पर अपना प्रभुत्व जमाये रखते हैं। जितना ही अधिक वे अपना अधिकार बढ़ाते जाते हैं उतना ही अधिक अन्य नागरिकों के स्वार्थों पर आक्रमण होता है। वैसा गुट अपने सुख के लिए दूसरों के हित पर आघात करता है। तब साधारण जनता का शोषण होता है। यही दुखी समाज कष्ट असह्य हो जाने पर उस क्रान्ति के लिए विवश होता है जिसको कोई भी सरकार रोक नहीं सकती है। वैसी कुप्रथा से सामाजिक असमानता भी होती है। उससे साधारण लोगों में मानसिक विद्रोह होता है।

मशीनों के आविष्कार के बाद जब से औद्योगिक क्रान्ति (Industrial revolution) हुई तब से दिन-प्रतिदिन छोटे-मोटे रोज-गार टूटते जाते हैं। इसका भी विशेष कारण है। मशीन के मुकाबले में हाथ से काम करने वाले मामूली व्यवसायी अधिक संख्या में सामान नहीं तैयार कर सकते हैं। इसलिए उनकी चीजें महँगी पड़ती हैं। मशीन द्वारा बहुत कम ही समय में बहुत बड़ी संख्या में सामान तैयार होता है। इससे चीजें सस्ती पड़ती हैं। सस्ती चीज़ ही ज्यादे बिकती हैं। इसी से जो व्यापार

मशीन से नहीं चलते हैं वे टूट जाते हैं। फलतः मध्य श्रेणी का रोजगार मारा जाता है। इसका फल यह होता है कि बहुत से आदमी जो छोटे-मोटे व्यापारों में लगे रहते हैं बेकार हो जाते हैं और उनके सामने रोटी का प्रश्न उठता है। साथ ही निम्न मध्यम श्रेणी के लोग दिन-प्रतिदिन दरिद्र होते जाते हैं। उनका रोजगार टूटने से वे भी गरीबों के समुदाय में मिलते जाते हैं, क्योंकि उन की पूँजी व्यवसाय में घाटा उठाने से समाप्त हो जाती है। उनकी दैनिक आवश्यकताएँ पहले ही की तरह रहती हैं और आय का अच्छा साधन नहीं रहता है। फलतः वे भी गरीब, किसान व मजदूर की श्रेणी में मिलते जाते हैं।

उनके विपरीत थोड़े से पूँजीपतियों का धन बढ़ता है क्योंकि उनके पास मशीन से काम करने वाले कारखाने होते हैं। समाज का सारा कारोबार उन्हीं के हाथों में आ जाता है। वे अपने ही धनोपार्जन तथा आनन्द का ध्यान रखते हैं। साधारण जनता के दुख तथा पीड़ा की चिन्ता उन्हें नहीं रहती है। इसका फल यह होता है कि प्रायः मध्यम श्रेणी के कुछ शिक्षित व्यक्ति उनके आर्थिक अधिनायकत्व के विरुद्ध संगठन आरम्भ करते हैं जो आगे चलकर विप्लव के रूप में परिणित हो जाता है।

क्रान्तिकारी आन्दोलन या विप्लव के नेता वे लोग होते हैं जो शिक्षित होते हैं। वैसे विप्लवी प्रायः मध्य-श्रेणी में होते हैं। मध्यम श्रेणी के इस महत्वपूर्ण कार्य की बात सुनकर योरोपीय क्रान्तिकारी विचारों को अन्धविश्वास की तरह मानने वाले कुछ लोगों को शायद अच्छा नहीं लगे किन्तु यथार्थ बातें तो कहनी ही चाहिये।

विप्लवी संघर्ष या क्रान्ति के नेता प्रायः मध्यम श्रेणी के शिक्षित सदस्य होते हैं। इसका एक खास कारण होता है। यह तो सबको मानना पड़ेगा कि सहजात प्रवृत्तियों के अच्छे मानव-स्वभाव शिक्षा से विकसित होते हैं। उनके विकास से मनुष्य अपने ही स्वार्थ की बात नहीं सोचता है बल्कि अपने सरीखे जीवधारी प्राणी के हित की बात भी सोचता है और उसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न यथाशक्ति करता है। स्वयं सहजात

प्रवृत्तियाँ जन्म से ही होती हैं। उन जन्मजात प्रवृत्तियों का कारण डार्विन ऐसे जीव विज्ञान के विश्वविख्यात विद्वान तथा अन्य वैज्ञानिक लोग भी नहीं बतला सके हैं। ऐसी हालत में उनके अस्तित्व को मानना पड़ता है किन्तु उनका कारण नहीं मालूम हो सकता है। कुछ भी हो, सहजात प्रवृत्तियों या जन्मजात स्वभाव की अच्छी बातों के विकास के लिए शिक्षा से विशेष सहायता मिलती है। मध्यम श्रेणी के सदस्यों को शिक्षा की सुविधा मजदूरों या किसानों की अपेक्षा अधिक होती है। इससे उस श्रेणी में शिक्षा अधिक होती है।

इस बात का कारण यह है कि शिक्षा पाने के लिए उसके सदस्यों के पास साधन होते हैं और उनके पास समय रहता है। उससे शिक्षित होने पर उनके गुण बढ़ जाते हैं। समझदारी बढ़ जाती है। साथ ही उन्हें गरीबों, किसानों, मजदूरों तथा अपने श्रेणी के कष्टों का अनुभव अच्छी तरह होने लगता है।

यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि पूँजीवादी वर्ग के सदस्यों, बड़े-बड़े जमींदारों एवं ताल्लुकदारों को शिक्षा की सुविधा तथा समय बहुत होने पर भी वे अपने सहजात प्रवृत्तियों के गुणों को उतना विकसित नहीं कर पाते हैं कि जिससे वे अपने स्वार्थ पर लात मार विप्लवी आन्दोलन में भाग लें। इस बात का एक खास कारण है। वे शिक्षा तो पाते हैं किन्तु उन्हें आम जनता के कष्टों का पूरा अनुभव स्वयं करने का मौका कम मिलता है। इससे न तो उनके भोग-विलास की आदत कम होती है और न उनके मानसिक भावों पर चोट लगती है।

उसके उलटा मध्यम श्रेणी वाले लोगों को शिक्षा के साथ समाज के साधारण लोगों की दैनिक कठिनाइयों तथा कष्टों का अनुभव अच्छी तरह होता रहता है। साथ ही उनकी दशा भी डाँवाँडोल ही रहती है। कभी उन्हें अधिक सुख कभी दुख रहता है। शिक्षा से सहजात प्रवृत्तियों का विकास अशिक्षित लोगों की अपेक्षा अधिक होने और साथ ही समाज के कष्टों का अनुभव भी होते रहने से उन्हें दुख अधिक होता है। सम्पन्न जीवन तथा कष्टमय जीवन दोनों का अनुभव उन्हें होता रहता है।

इससे वे अन्य लोगों की अपेक्षा जल्दी तथा अधिक क्षुब्ध हो उठते हैं। साथ ही शिक्षित होने से उनमें संगठन की योग्यता होती है। इससे वे कुरीतियों, कुप्रथाओं, पूंजीवाद, जमींदारी, ताल्लुकेदारी तथा पूँजीवाद के प्रतिकूल संगठन, आन्दोलन तथा संघर्ष आरम्भ करने तथा कराने के लिए आगे बढ़ते हैं और नेतृत्व करते हैं।

यह तो विप्लवी आन्दोलन या क्रान्ति के आत्मगत (Subjective) नेतृत्व की बात रही। अब हमें यह देखना है कि पूँजीवाद से क्रान्ति के कारणों की वृद्धि कैसे होती है। पूँजीवादी प्रथा से छोटे-मोटे व्यवसाय टूट जाते हैं और मिल-मालिकों के हाथों में समाज का आर्थिक संगठन चला जाता है। तब पूँजीपति अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के हित का ध्यान नहीं रखते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि कम से कम मजदूरों से कम वेतन पर अधिक माल तैयार हो। नतीजा यह होता है कि देश में अधिकतर लोग बेकार हो जाते हैं और दरिद्रता बढ़ जाती है। थोड़े से पूंजीपतियों के हाथों में असंख्य धन इकट्ठा हो जाता है और समाज गरीबी से दुखी हो जाता है।

ऐसी दशा में पूंजीपतियों के आधिपत्य को मिटाने के लिए किसान, मजदूर तथा मध्यम श्रेणी के लोग आन्दोलन करते हैं और सामाजिक विप्लव के लिए क्रान्तिकारी संघर्ष का आरम्भ होता है। किसी देश में पूंजीपति अपनी सत्ता सुदृढ़ करने के लिए सामन्तशाही के समर्थकों के अधिकार भी मिटाना चाहते हैं। कहीं-कहीं यदि मिल-मालिकों को उनसे हानि नहीं होती है या पूँजीवादी व्यवस्था कायम रखने में सहायता मिलने की आशा रहती है तो वे सामन्तों, नवाबों, ताल्लुकेदारों तथा राजाओं की आर्थिक सत्ता को सुरक्षित रखने की कोशिश करते हैं।

फ्रांसीसी क्रान्ति के समय जब प्रजातन्त्र की स्थापना यूरोप में हो रही थी तब पूँजीवाद पूर्ण रूप में विकसित नहीं हुआ था। उस समय पूंजीपति अपने व्यवसाय की उन्नति के लिए सामन्तशाही का नाश करना हितकर समझते थे और इससे वे प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति में सक्रिय सहायता

देते थे। किन्तु अब जब पूँजीवाद अच्छी तरह अपना सिक्का दुनिया में ज़माचुका है तब वह अपनी रक्षा के लिए सहायक ढूंढता है। इसी मतलब से वे किसी किसी देश में राजाओं और सामन्तशाही के पृष्ठपोषकों के विरुद्ध होने वाले विप्लव में भाग नहीं लेते हैं। वे यह सोचते हैं कि क्रान्ति से उनके अस्तित्व पर भी संकट आवेगा। इसी से वे प्रजा-तन्त्रात्मक क्रान्ति के लिए भी सक्रिय सहायता नहीं देते हैं।

इस बात का सबूत हमें भारतवर्ष में मिलता है। भारतीय पूँजीपति पराधीनता नहीं चाहते थे। तब भी वे स्वतन्त्रता के लिए विप्लवी आन्दोलन को प्रोत्साहन नहीं देते थे बल्कि उसे दबाना चाहते थे। फिर भी हिन्दुस्तान में प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति का आरम्भ तो हो ही गया।

विप्लव के कारणों पर विचार करते समय एक बहुत ही महत्व-पूर्ण प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। क्या उन कारणों में सबसे महत्वपूर्ण तथा व्यापक आर्थिक कारण ही होता है? क्या उसी से अन्य कारण पैदा होते हैं? क्या मनोविज्ञान का स्थान उतना ही प्रभावशाली होता है? क्या आर्थिक कारण ही से मनोवैज्ञानिक कारण उत्पन्न होते हैं? ये सवाल बहुत मौलिक हैं।

जो लोग मनोविज्ञान के महत्व की उपेक्षा कर आर्थिक पहलू ही को एकमात्र मौलिक कारण मानते हैं वे तो यह कहते हैं कि प्रथम महा-युद्ध के समय या उसके बाद जो विप्लव हुए उनका कारण केवल आर्थिक बातें थीं। उनका यह कहना कि संसार में मशीनों की उन्नति से सामान बहुत तैयार होने लगा। समाज के तत्कालीन ढाँचे में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह सब सामान खपा सके। इससे पूँजीपति तथा साम्राज्यवादी अपने लिए बाजार ढूंढने या सुरक्षित रखने के फेर में पड़े। उनकी प्रति-द्वन्द्विता बढ़ी। इससे महायुद्ध हुआ। फिर उस प्रतिद्वन्द्विता तथा लड़ाई के अवसर से लाभ उठा क्रान्तिकारी शक्तियाँ प्रबल हुईं और समाज के रद्दी ढाँचे को नष्ट कर नया संगठन स्थापित करने में सफल हुईं। मतलब यह है कि इस तर्क से क्रान्तिकारी कारणों में आर्थिक कारण ही एक मात्र

मौलिक कारण साबित किया जाता है।

संसार के अन्य विद्वान उसे एकमात्र मौलिक कारण नहीं मानते हैं। वे यह कहते हैं कि जीवधारी प्राणी में सहजात प्रवृतियाँ होती हैं। इनका कारण डार्विन ऐसे जीवन-विज्ञान के महापण्डित भी नहीं बतला सके हैं। वे यह कहते हैं कि प्रकृति आदमी में जात प्रवृत्तियाँ पैदा करती है। जन्मजात स्वभाव से मनुष्य कई बातें अनायास जन्म लेते ही करने तथा सोचने लगता है। वैसी प्रवृत्तियाँ उतनी ही महत्वपूर्ण होती हैं जितनी आर्थिक बातें। इससे क्रान्ति के कारणों में उन जात प्रवृतियों का महत्व उतना ही मौलिक होता है जितना आर्थिक बातों का असर होता है। इसके साथ ही विज्ञान या अन्य अज्ञात बातों के बारे में जिज्ञासा प्राकृतिक होती है। खोज की उत्सुकता अनायास आदमी के मन में रहती है। इस जिज्ञासा से मानव समाज का ज्ञान बढ़ता है और व्यवहार या प्रयोग होने वाले खोज सम्भव होते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ अधिक विचार करना अच्छा होगा। विज्ञान पर ध्यान देना जरूरी है। इस बात पर किसी को आपत्ति नहीं होगी कि व्यवहार या प्रयोग करने वाले विज्ञान के अतिरिक्त विज्ञान की बहुतेरी बातें सिद्धान्त के रूप में रहती हैं। उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों की सहायता से प्रयोग होने वाले विज्ञान की उत्पत्ति होती है।

उपरोक्त जिज्ञासा तथा बुद्धि से ऐसी बातें मालूम होती हैं अथवा अविष्कार तथा अन्वेषण होते हैं जिनसे उस समय अन्वेषक या खोज करने वाले के मन में आर्थिक लाभ की न तो लालसा ही रहती है और न वह उससे फायदा ही उठाता है। प्रकृति की पहेलियों को समझने के लिए प्राकृतिक जिज्ञासा की प्रेरणा से वह प्रयत्न करता है। औज़ार या यन्त्र आदि चीजों की उन्नति तथा सभ्यता के विकास में भी उस जिज्ञासा का उतना ही (और कभी-कभी अधिक) महत्व रहता है जितना आर्थिक बातों की महत्ता होती है।

कोपर्निसस, गैलीलियो तथा केप्लर ऐसे वैज्ञानिकों के युग में जब मैथेमेटिक्स और गति के सिद्धान्त (Law of Motion) का मेल खिलाने

या समन्वय करने से आधुनिक विज्ञान के लिए नया भाव पैदा हुआ तब उन पण्डितों ने अपने आर्थिक लाभ के लिए परिश्रम नहीं किया था बल्कि उनकी प्राकृतिक जिज्ञासा ने ही उन्हें अन्वेषण के लिए प्रेरित किया था। रेडियो, वायुयान, टेलीविजन इत्यादि आजकल आर्थिक समस्याओं को हल करने में सहायक होते हैं। जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर उनका आविष्कार इस युग में सम्भव हुआ है उन सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण वर्तमान काल में एकाएक नहीं हुआ है, बल्कि उनको लागू करने में गत दो सौ वर्षों के वैज्ञानिक खोज तथा ज्ञान का बहुत बड़ा हाथ रहा है। लगभग दो-तीन शताब्दी पहले जब केवल सैद्धान्तिक विज्ञान की खोज में उपरोक्त तथा अन्य विद्वान लगे थे तब उन्हें आर्थिक स्वार्थ से प्रेरणा नहीं मिली थी, बल्कि वे प्राकृतिक जिज्ञासा से प्रेरित होकर अपना जीवन ऐसी बातों को साबित करने में लगा रहे थे जिनसे उन्हें कोई लाभ नहीं था।

इन यथार्थ घटनाओं से न तो यह बात सिद्ध होती है कि आर्थिक कारण मानव-विकास, उन्नति या हलचल के लिए सबसे मुख्य या मौलिक होते हैं और न यह साबित होता है कि मनुष्य के सब कार्य आर्थिक स्वार्थ की ही प्रेरणा से होते हैं। मोटे तौर पर देखने से यह बात जरूर बिलकुल ठीक होती है कि जब तक मनुष्य का पेट नहीं भरता है तब तक उसे कला, सभ्यता, विज्ञान इत्यादि के लिए उत्साह नहीं होता है। जैसे यह बात सत्य है उसी तरह यह भी यथार्थ है कि जितना शरीर और उससे होने वाले कार्यों के लिए खाद्य-पदार्थ आवश्यक है उतना ही जरूरी फेफड़ों में आक्सीजन, नसों में लहू, अनुकूल जलवायु आदि भी है। कोई यह कह सकता है कि खाद्य पदार्थ ही से शरीर, शरीर-निर्माण तथा रक्षा के लिए खून, मांस तथा हड्डी बनती है। यह सही है। किन्तु आक्सीजन तो वह पदार्थ है जिसे प्रकृति ने सब जीवों के लिए बिना खाने-पीने वाली चीजों से ही बनाया है। उसके लिए न तो मनुष्य को खाद्य-पदार्थ ही जुटाने की चिन्ता करनी पड़ती है और न उसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। वह पर्याप्त मात्रा में वायुमण्डल में मौजूद रहता है और प्रत्येक जीव का

शरीर स्वतः उसे लेता रहता है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि अन्न के बिना मनुष्य दो-चार दस-बीस दिन जीवित रह भी सकता है किन्तु आक्सीजन के बिना वह उतना दिन जीवित नहीं रह सकता है।

इससे यह साबित होता है कि खाद्य-पदार्थ के अतिरिक्त जीवधारी प्राणियों के लिए अन्य बातें भी उतनी ही जरूरी हैं। कई पदार्थ तो खाने-पीने वाली चीजों से भी अधिक आवश्यक होते हैं। इससे खाद्य-पदार्थ के अतिरिक्त शरीर के लिए जो बातें उतनी ही महत्वपूर्ण होती हैं उनकी न तो उपेक्षा की जा सकती है और न उनके बिना कला, विज्ञान, सभ्यता इत्यादि मानव-समाज सम्बन्धी बातों का विकास हो सकता है। जैसे यह कहा जाता है कि खाद्य-पदार्थ न हो तो शरीर या जीव नहीं रह सकता है, उसी तरह यह कहना भी बिलकुल सत्य है कि आक्सीजन न हो तो जीव तथा शरीर नहीं रह सकते हैं। संसार में ग्रहों तथा पृथ्वी इत्यादि की आकर्षण-शक्ति न होती तो दुनिया के विभिन्न भाग अव्यवस्थित होते, आपस में टकरा जाते और फलस्वरूप जीवधारी प्राणी जीवित नहीं रह सकते।

इन सारी बातों से यह विदित होता है कि जीव या मनुष्य के लिए जितना आवश्यक खाद्य-पदार्थ होता है उतना ही और कभी-कभी उससे अधिक जरूरी ऑक्सीजन या वैसी ही कई अन्य वस्तु भी होती हैं। समाज सम्बन्धी कला, विज्ञान, सभ्यता, व्यवसाय इत्यादि मानव-उन्नति के लिए सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक बातें ही नहीं बल्कि उतनी ही महत्वपूर्ण कई प्राकृतिक बातें भी हैं जो आर्थिक बातों से नहीं उत्पन्न होती हैं। इससे यह नतीजा निकलता है कि इतिहास तथा मानव-प्रयास में आर्थिक बातों की तरह कई अन्य बातें भी महत्वपूर्ण होती हैं। उससे यह भी मालूम होता है कि क्रान्ति के कारणों में सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न ही नहीं होते हैं बल्कि मनोविज्ञान की महत्ता भी उतनी ही होती है। यह कहना बिलकुल सही है कि व्यक्ति का मानसिक तथा बौद्धिक विकास-विप्लव में जितना महत्वपूर्ण कार्य करता है उतना उसका आत्मगत महत्व विज्ञान में नहीं होता है।

इन बातों का सारांश यह है कि क्रान्ति के . जो कारण होते हैं उनका स्रोत आर्थिक समस्याएँ ही नहीं होती हैं बल्कि मनोविज्ञान भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। प्रकृति मनुष्य में कई ऐसे स्वभाव जन्म से ही उत्पन्न करती है जिनसे मनुष्य की प्रकृति ही बराबरी तथा स्वतन्त्रता चाहती है और उनके अभाव में आदमी में विद्रोह की भावना पैदा हुआ करती है। फलतः विप्लवी कारण उत्पन्न होते हैं और बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार विद्रोह के लिए आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं। उनसे क्रान्ति होती है।

तीसरा परिच्छेद

क्रान्ति में विभिन्नता

क्रान्ति के कारणों पर विचार करने के बाद यह शंका उठनी स्वाभाविक है कि क्या सभी क्रान्तियाँ एक ही प्रकार की होती हैं? नहीं, ऐसा नहीं होता है। इसमें भी कई तरह के भेद होते हैं। विप्लव चार प्रकार के होते हैं। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक। धार्मिक विप्लव मनुष्य जाति के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं होता है जितना आर्थिक तथा राजनीतिक। रोटी तथा वस्त्र के प्रश्न के बाद धर्म का सवाल उठता है। यूरोप में तो धर्म का बहुत ही साधारण अर्थ लगाया जाता है। वहाँ धार्मिक बातों के लिए उतना ज़ोर नहीं दिया जाता है जितना एशिया के पूर्वीय देशों में दिया जाता है। जैसे भारत, वर्मा, जापान में। भारतवर्ष में धर्म का बहुत ही विस्तृत अर्थ लगाया जाता है, जिसके कारण सभी बड़े परिवर्तनों में इसकी छाप कुछ न कुछ पड़ जाती है। किन्तु यह बात यूरोप में नहीं पाई जाती है जोकि वहाँ के इतिहास में ऐसे अवसर आ चुके हैं जब धार्मिक विप्लव के लिए बहुतेरे प्राणियों को प्राण तक गँवाने पड़े और उसके कारण समाज क्षुब्ध हो गया। कैथोलिक मत के प्रतिकूल जब लूथर ने प्रचार शुरू किया तब बहुतेरे आदमी दमन का शिकार बने। यहाँ तक कि जिन्दा ही आदमी जला दिये गये। परन्तु प्राय: संसार के सभी देशों में यह देखा जाता है कि धार्मिक क्रान्ति समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण नहीं होती है। इसी से इसके लिए जनता बहुत उत्सुक भी नहीं रहती है।

सामाजिक क्रान्ति का स्थान धार्मिक विप्लव से ऊँचा होता है। प्राय: यह देखा जाता है कि सामाजिक व्यवस्था की नींव आर्थिक आवश्यकताओं पर ही रहती है। इससे जब आर्थिक परिस्थिति में गड़बड़ी पैदा हो जाती है तब सामाजिक संगठन पर भी उसका असर पड़ता है। इससे समाज में परिवर्तन की जरूरत आ पड़ती है। फिर क्रान्ति आरम्भ

होती है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि सामाजिक विप्लव आर्थिक या राजनीतिक क्रान्ति का एक-प्रकार से अनिवार्य फल होता है।

आर्थिक विप्लव तथा राजनीतिक क्रान्ति का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। एक दूसरे का अविच्छेद्य अंग होता है। जब राजनीतिक उथल-पुथल होता है तो आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन अवश्यंभावी होता है, तथा जब आर्थिक हेर-फेर होता है तो उसका प्रभाव राजनीति पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता है। इससे यह कहा जा सकता है कि दोनों का सम्बन्ध साधन तथा साध्य की तरह सदा चला करता है।

इसी के फलस्वरूप पूँजीवाद की उन्नति के साथ साम्राज्यवाद का बोलबाला हुआ तथा बहुतेरे देशों की राजनीति में महान् परिवर्तन हो गये।

आधुनिक युग में आर्थिक प्रश्नों के आधार पर तीन प्रकार के राजनीतिक विप्लव होते हैं। (१) प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति तथा समाजवादी क्रान्ति होती हैं। फिर प्रजातन्त्रात्मक विप्लव भी दो प्रकार के होते हैं— (१) राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव और (२) पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव। अर्थात् सब मिलाकर (१) राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव (२) पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति तथा (३) समाजवादी क्रान्ति होती है। औद्योगिक विप्लव (Industrial Revolution) के पहले इस प्रकार के कई भेद नहीं किये जा सकते थे। उस समय तक पूँजीवाद पूरा उन्नति नहीं कर पाया था। सामन्त युग में या उसके पहले पूँजीवाद का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। इसी से इन दो भेदों का अलग-अलग विभेद भी नहीं हो सकता था। किन्तु उस औद्योगिक क्रान्ति के बाद इस समस्या का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति उस परिवर्तन को कहते हैं जिसमें विप्लव के बाद राजनीतिक मामलों में प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त लागू होता है किन्तु समाज का आर्थिक संगठन या व्यवस्था पूँजीवाद ही के आधार पर रहती है। इसे स्पष्ट करने के लिए पूँजीवाद की विवेचना जरूरी है। पूँजीवाद उस सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को कहते हैं जिससे

उत्पादन तथा वितरण के सभी बड़े-बड़े साधनों और मिल कारखानों के मालिक थोड़े से धनीमानी व्यक्ति होते हैं और यह वर्ग दूसरी श्रेणी का शोषण करता है। इससे अधिकांश जनता जिसमें मध्यम श्रेणी के लोग, मजदूर और किसान होते हैं, धनाढ्यों के आश्रित रह उनके (धनिकों के) औजारों तथा भूमि आदि से अपने परिश्रम द्वारा जीवन निर्वाह करती है। इस वजह से अधिकतर लोग गरीब होते हैं और भोजन-वस्त्र का प्रश्न सदा उनके सामने उपस्थित रहता है। इने-गिने लोग सुखी रहते हैं। बाकी सभी परीशान रहते हैं। जिस उथल-पुथल से नीच-ऊँच या धनी गरीब अथवा शोषक शोषित की समस्या हल नहीं होती है तथा जनता की गरीबी दूर नहीं की जाती है उसे पूंजीवादी क्रान्ति कहते हैं। ऐसी क्रान्ति से दो-चार व्यक्ति विशेष, किसी खानदान, किसी गुट, पार्टी अथवा वर्ग विशेष का लाभ भले ही हो जाता हो किन्तु साधारण जनता की परि-स्थिति में बहुत ही कम अन्तर होता है। गरीबों का शोषण उसी तरह जारी रहता है जिस तरह विप्लव के पहले।

बीसवीं सदी में ऐसी क्रान्ति के उदाहरण के लिए १९११ के चीन का विप्लव है। इस देश में विप्लव हुआ, राजतन्त्र शक्तिहीन हुआ तथा प्रजातन्त्र का आरम्भ हुआ। अर्थात् राजनीतिक अधिकार में परिवर्तन अवश्य हुआ किन्तु किसानों तथा मजदूरों की दशा में सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ। कुछ लाभ तो उनको भी जरूर हुआ परन्तु अच्छी तरह उनकी दशा नहीं सुधरी। ऐसे विप्लव से राज्याधिकार तथा राज सत्ता एक व्यक्ति या गुट के हाथों से निकलकर दूसरे दल या पार्टी अथवा वर्ग के हाथों में तो जरूर चली जाती है परन्तु पूरे समाज के कष्ट का मूलोच्छेदन नहीं होता है। प्रायः किसानों, मजदूरों तथा निम्न मध्यम श्रेणी वालों का पूर्ण अधिकार समाज के आर्थिक मामलों में नहीं रहता है।

हाँ, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐसे विप्लव से भी जो केवल प्रजातन्त्रात्मक होता है जनता को कम से कम आत्म-शक्ति का ज्ञान अवश्य हो जाता है तथा आत्म-विश्वास भी बढ़ता है। राजनीतिक वायुमण्डल उनके अनुकूल बदल जाता है। जनता सचेत भी हो जाती है। इतना होने

पर भी प्रायः सरकारी कार्य-संचालन की बागडोर सुखी धनिकों के हाथ में रहने से गरीबों के हित की तरफ उनका ध्यान कम आकर्षित होता है तथा पीड़ितों के स्वार्थों की अवहेलना होती है। इससे गरीबों की आर्थिक दशा शोचनीय ही रह जाती है। जहाँ तक केवल राजनीतिक प्रश्न का सम्बन्ध रहता है वहाँ तक यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ऐसी क्रान्ति से पूर्ण मौलिक परिवर्तन हो जाता है, किन्तु वर्तमान मशीन युग में उससे शोषितों की दुर्दशा का निपटारा नहीं हो पाता है और उनकी भूख की ज्वाला शान्त नहीं होती है।

ऐसी क्रान्ति की उपरोक्त दुर्बलता के अंकुर ही न उत्पन्न हों। इस मतलब से होशियार जनता यह प्रयत्न करती है कि असली शासनाधिकार पुराने शासकों के हाथों से निकलकर जनता के ही हाथों में आवे। इसके लिए यह जरूरी होता है कि प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार अच्छी तरह सर्वसाधारण में हो और उन्हीं के आधार पर शासन तथा राज्य का संचालन भी हो। इस अभिप्राय से निर्वाचन प्रथा के लिए बालिग मताधिकार आवश्यक होता है। निर्वाचिकों के इस अधिकार से बहुमत सदा उन लोगों का होता है जो शोषित तथा पीड़ित होते हैं। जब शासनाधिकार इनके प्रतिनिधियों के आधीन होता है तो उनकी सुनवाई होती है और उनके हितों की रक्षा भी की जाती है। यदि किसी देश में ऐसा होता है तो पूंजीवाद की कमजोरियाँ काफी हद तक दूर की जा सकती हैं।

तीनों प्रकार के राजनीतिक विप्लवों पर अलग-अलग विचार करना चाहिए। राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति पर सबसे पहले ध्यान देना है। उस विप्लव के तीन मुख्य सिद्धान्त होते हैं। राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र तथा जनता की जीविका सम्बन्धी साधन तथा अवसर में समानता।

राष्ट्रीयता का मतलब यह है कि राष्ट्र बिलकुल स्वतन्त्र हो। उस पर आर्थिक या राजनीतिक किसी प्रकार का बाहरी दबाव या प्रभुत्व न हो। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में वह दूसरे देशों से बराबरी के आधार पर

सन्धि करने के लिए स्वाधीन हो। उसे किसी तरह के दबाव से कोई ऐसी सुलह न करनी पड़े जिससे उस राष्ट्र को राजनीतिक या आर्थिक हानि उठानी पड़े। सारांश यह है कि अपने देश की भूमि, आकाश, समुद्र-तट इत्यादि सब साधनों, नागरिकों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्राप्त अधिकारों पर उसकी पूर्ण राजसत्ता हो।

प्रजातन्त्र का यह अर्थ है कि देश के सब नागरिकों को राजनीतिक तथा आर्थिक समानता के सिद्धान्त पर बराबर अधिकार प्राप्त हो। उन्हें अपनी सरकार चलाने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने और उनके द्वारा देश की गवर्नमेण्ट चलाने का हक हो। सब लोगों के जान-माल की रक्षा वैसे ही हो जैसे किसी प्रतिष्ठित नागरिक या सरकारी कर्मचारी की हो।

जीविका सम्बन्धी समानता का मतलब यह है कि प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन निर्वाह के लिए देश के सब साधन मिल सकें और उसे अपनी योग्यता अनुसार अपना काम चुनने की सहूलियत वैसे ही मिले जैसे अन्य नागरिकों को मिलती है।

उपरोक्त तीनों सिद्धान्तों से आर्थिक तथा राजनीतिक समानता की बात मालूम होती है। परन्तु दुनिया की वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में राजनीतिक बराबरी के होने पर भी आर्थिक बराबरी सब लोगों के लिए नहीं है। सिद्धान्त के रूप में हर देश में जहाँ प्रजातन्त्र है आर्थिक समानता का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त रहता है। किन्तु यथार्थ में रोटी के सवाल से अधिकतर लोग दुखी रहते हैं। मतलब यह है कि राजनीतिक समानता होने पर भी आर्थिक बराबरी नहीं रहती है।

ऐसी कमजोरी होने पर जो देश किसी प्रकार परतन्त्र रहते हैं उन्हें सबसे पहले विदेशी प्रभुत्व को मिटाकर अपने राष्ट्र को आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से स्वतन्त्र तथा स्वावलम्बी बनाना और अपने नागरिकों को प्रजातन्त्र के सिद्धान्त पर अधिकार देना सबसे बड़ा और तात्कालिक कार्य होता है। इसी अभिप्राय से पराधीन देश में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर प्रजातन्त्र की स्थापना सबसे पहला ध्येय होती है।

जिस क्रान्ति द्वारा ऐसा लक्ष्य प्राप्त हो उसे राष्ट्रीय क्रान्ति या राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति कहते है।

बहुतेरे ऐसे देश होते हैं जो पूर्णतः स्वतन्त्र होते हैं किन्तु वहाँ सामन्तशाही का अवशेष भी रहता है । वहाँ के लोगों को प्रजातन्त्र के अधिकार नहीं रहते हैं। उन्हें अपनी सरकार अपने प्रतिनिधियों द्वारा चलाने, अपने प्रतिनिधि चुनने, अपने शासकों को बदलने, अपने देश के शासन में परिवर्तन करने का अधिकार आदि नहीं रहता है। वहाँ कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें किसी खास वंश या परिवार में जन्म लेने से ही कई प्रकार के विशेष अधिकार मिल जाते हैं । ऐसा आमतौर से वहाँ होता है जहाँ राजतन्त्र या सामन्तशाही होती है। वैसे देशों में अपने मुल्क की राष्ट्रीय सरकार और पूर्ण स्वतन्त्रता होने पर भी नागरिकों के लिए राजनीतिक तथा आर्थिक बराबरी नहीं रहती है । इससे वहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना तात्कालिक ध्येय होती है। जिस विप्लव से प्रजातन्त्र की स्थापना होती है किन्तु यदि उससे पूँजीवादी व्यवस्था सबल होती है तो उसे पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति कहते हैं।

अब दूसरे प्रकार के विप्लव पर विचार करना है। इसे समाजवादी या सच्ची जनतन्त्रात्मक क्रान्ति कहा जा सकता है। ऐसा विप्लव उस व्यापक तथा आमूल परिवर्तन को कहते हैं जो पूंजीवादी व्यवस्था के हानिकार नियमों को पूर्ण रूप से बदलकर समाज का आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन समाजवाद या सच्चे जनतन्त्र के नियमों के आधार पर करता है और किसानों, मजदूरों तथा निम्न मध्यम श्रेणी (अर्थात् शोषित जनता) के स्वार्थों की रक्षा के लिए नई शासन-प्रणाली की स्थापना करता है।

समाज के पूंजीवादी संगठन में जमीन, उत्पादन सम्बन्धी (वस्तु पैदा करने वाले) साधन जैसे मशीन, पूंजी, श्रम, ऐसे लोगों के नियन्त्रण में नहीं रहता है जो स्वयं परिश्रम करते हैं और धन पैदा करते हैं बल्कि उन लोगों के हाथों में रहता है जिनके पास सम्पत्ति रहती है और जो श्रम करने वालों को नौकर रख अपनी मशीन, पूंजी तथा भूमि इत्यादि

माल से पैदा करते हैं । ऐसी सामाजिक व्यवस्था में आम समाज या जनता की भलाई नहीं होती है । थोड़े से मिल मालिकों, ताल्लुकेदारों या बैंक वालों का ही हित होता है । जिस विप्लव से व्यक्तिगत पूंजी, मिल का उत्पादन तथा वितरण के सब साधन समाज के हाथ में आ जाते हैं उसे समाजवादी क्रान्ति कहते हैं । ऐसे समाजवादी विप्लव की विशेषता सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने के लिए यह जरूरी है कि सबसे पहले वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था तथा समाजवाद का मतलब अच्छी तरह से समझ में आवे । समाजवाद का मतलब क्या है ?

पहले इसी प्रश्न को हल करना है । यों तो ईसा के जन्म के पहले ही से समय-समय पर इस विषय पर विचार होता आया है । इस सम्बन्ध में यूरोप के विख्यात विद्वान प्लेटो के लेख मिलते हैं । उनके बाद भी कई विद्वानों ने अपने-अपने आदर्श समाज (Ideal Society) की व्याख्या किया । यह संसार उन लोगों के लेखों की तरफ विशेष रूप से नहीं आकर्षित हुआ । वर्तमान युग के समाजवाद की वैज्ञानिक विवेचना का विशेष श्रेय मार्क्स तथा एंगिल्स को मिला । इनके पहले के विद्वान काल्पनिक साम्यवाद की चर्चा किया करते थे और उसके द्वारा वे लोग एक नया आदर्श समाज स्थापित करने की कल्पना किया करते थे । वे लोग आर्थिक परिस्थितियों पर सारी सामाजिक व्यवस्था को अवलम्बित नहीं समझते थे । उन लोगों का विचार था कि चीजें तैयार करने वाली जनता (किसान, मजदूर तथा निम्न मध्यम श्रेणी) तथा मालिकों में प्रतिद्वन्दिता की भावना कम होती है बल्कि सहयोग की आशा अधिक होती है । इससे उनमें सम्पत्ति का बँटवारा आवश्यकतानुसार हो सकता है और फिर इस तरह समाज का भेदभाव या शोषण बन्द हो सकता है । वे लोग सामाजिक संगठन पर आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझते थे जितना मार्क्सवादी विद्वान मानते हैं । इसका भी एक विशेष कारण था ।

औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के पहले श्रेणी-विभाजन इतना स्पष्ट नहीं हो पाया था जितना उसके बाद हो गया है ।

इससे पहले के पण्डित भविष्यवाणी नहीं कर सकते थे । यों तो विद्वान या बुद्धिमान भूतकाल के अनुभव से वर्तमान को सुधारने का प्रयत्न करते हैं और भविष्य को आदर्शवादी बनाने के लिए अपना सुझाव पेश करते हैं किन्तु भविष्य के लिए उनका कथन बिलकुल ठीक नहीं हो सकता है । इसी कारण से मार्क्स के पहले पण्डितों ने मशीन के आविष्कार की वजह समाज के श्रेणी-विभाजन या सम्बन्ध को विशेष महत्व नहीं दिया था ।

मानव-इतिहास की प्रगति तथा विचारधारा की विवेचना करते हुए कार्ल मार्क्स ने यह बतलाया है कि समाजवाद दो-तीन मुख्य सिद्धान्तों पर अवलम्बित रहता है। उनमें से इतिहास की भौतिक व्याख्या विशेष महत्वपूर्ण है । मनुष्य जाति के इतिहास पर ध्यानपूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर कानून, नियम, सामाजिक रीति-रिवाज तथा धर्म सम्बन्धी विचार बदलते रहते हैं । बहुतेरे विद्वान जो मार्क्सवाद के पहले हो चुके थे ऐसे परिवर्तन का कारण कुछ व्यक्ति विशेष के महान् कार्य या ईश्वर की इच्छा बतलाते थे । किन्तु कार्ल मार्क्स ने बतलाया कि इसका कारण राजा महाराजाओं की करतूतें नहीं हैं बल्कि समाज की उन्नति अवनति के कारण तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं । जब उत्पादन के साधनों में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है तब सामाजिक व्यवस्था पर भी उसका असर पड़ता है । फिर उससे वर्ग विशेष के उत्थान या पतन का आरम्भ होता है । इससे सामाजिक ढाँचे, लोगों के दृष्टिकोण तथा इतिहास की प्रगति भी बदलने लगती है । मार्क्स की यह तर्क था कि मानव-समाज सदा से दो विरोधी श्रेणियों में विभाजित रहा है ।

एक श्रेणी है शासकों तथा शोषकों की और दूसरी श्रेणी है शासितों तथा शोषितों की । सामन्त युग में एक तरफ थे राजे-महाराजे तथा बड़े-बड़े ताल्लुकेदार और दूसरी तरफ थे उनके दास, छोटे-छोटे व्यापारी तथा उनकी प्रजा । अथवा वर्तमान युग में एक तरफ हैं राजे ताल्लुकेदार, पूंजीपति मिल मालिक तथा दूसरी तरफ हैं उनकी मिलों को चलाने वाले किसान, मजदूर तथा निम्न मध्यम श्रेणी के लोग । मार्क्स को यह विश्वास

था कि इन दो विरोधी श्रेणियों के स्वार्थ सदा एक दूसरे के प्रतिकूल रहते हैं और हमेशा रहेंगे, जब तक कि इस तरह की श्रेणियों का अन्त न हो जाय। उन्होंने यह भी दिखलाया है कि उपरोक्त बातों के कारण समाज के विकास की पहली अवस्था या प्रारम्भिक समाजवाद के बाद श्रेणी-संघर्ष सदा से इतिहास में चला आता है। उन्होंने तो यहाँ तक माना है कि मानव-जाति का इतिहास श्रेणी-संघर्ष का इतिहास है, और इसी श्रेणी-विरोध या संघर्ष से समाज की उन्नति होती तथा सभ्यता का उत्थान होता है।

द्वन्दात्मक भौतिकवाद में घात, प्रतिघात, एवं संघात का सिद्धान्त निहित है। मार्क्सवादियों के दर्शन सम्बन्धी तर्क पर बहुत आक्षेप भी होता है। समाज की उन्नति श्रेणी संघर्ष से होती आयी है इसको अधिकतर विद्वान नहीं मानते हैं और यह कहते हैं कि राष्ट्र के उत्थान में कई अन्य बातों का भी उतना ही महत्व होता है जितनी आर्थिक समस्याओं, श्रेणी-संघर्ष या नई मशीन के आविष्कार की महत्ता होती है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि समाजवाद के कई प्रवर्तक मार्क्स के पहले भी हो चुके थे जिनमें कई ईसाई पादरी भी थे। अब तो दूसरे लोग भी धार्मिक ग्रन्थों में समाजवाद के सिद्धान्तों की कुछ बातें दिखलाने का प्रयत्न करते हैं। इससे इस शब्द की ठीक-ठीक परिभाषा देनी बहुत कठिन है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि समाजवाद उस सिद्धान्त को कहते हैं जो मनुष्य जाति के सुख के लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता का प्रचार करते हुए जनता में पैदावार का आवश्यकतानुसार बँटवारा करने पर जोर देता है और उत्पादन तथा वितरण के साधनों, उद्योग धन्धों, फैक्टरी, आवागमन के साधन इत्यादि का राष्ट्रीकरण चाहता है। इसके मुताबिक मनुष्य मात्र को प्राकृतिक पदार्थ समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। किसी देश का आधिपत्य दूसरे मुल्क पर नहीं होनी चाहिए। समाजवाद का प्रचारक एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर शासन करना बर्दाश्त नहीं कर सकता है। गुलामी का तो वह कट्टर विरोधी होता है। वह परतन्त्रता की जड़ ही निर्मूल करना

चाहता है । समय के हेर फेर के कारण वह विवश भले ही हो किन्तु अवसर मिलने पर उसकी शक्ति दासता पर अवश्य ही आघात करती है।

समाजवाद में उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार की बात नहीं होती है । वह तो यह कहता है कि पैदावार के सब जरिये जनता की सरकार के हाथों में होना चाहिए । जिसकी जितनी आवश्यकता हो उतनी उसको मिलनी चाहिए । आवश्यकता से अधिक मिलना अनुचित है । जमीन किसी व्यक्ति विशेष की नहीं है बल्कि यह समाज की है । इससे इसका लाभ सबको उठाना चाहिए । समाजवाद के विरोधी इन बातों पर यह आक्षेप करते हैं कि समानता हो ही नहीं सकती, क्योंकि यह स्वाभाविक नहीं है ।

उदाहरण से इस विषय पर अधिक प्रकाश पड़ेगा । एक किसान के कुटुम्ब को ले लीजिये । उसमें स्त्रियाँ बच्चे तथा मर्द होते हैं । कुछ पुरुष खेती का काम करते हैं। कुछ रोजगार करते हैं । कुछ मवेशियों की रखवाली करते हैं तथा दूसरे और और काम करते हैं । सबके काम से जो आमदनी होती है वह कुटुम्ब की सम्पत्ति होती है। उसमें से कोई अधिक खाता पहनता है, कोई कम खर्च करता है। किन्तु सबके सब अपना उपार्जित धन इकट्ठा ही रखते हैं जो सबकी थाती होती है। जिसको जो आवश्यकता होती है वह पूरी की जाती है । आवश्यकता से अधिक कोई नहीं लेता है । काम अपनी शक्ति के अनुसार सब करते हैं और व्यय उनकी आवश्यकता के अनुसार होता है। यदि कोई बीमार पड़ता है तो कुटुम्ब उसकी दवा का प्रबन्ध करता है । बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध कुटुम्ब ही करता है । यह कुटुम्ब एक छोटा-सा समाजवादी राज्य-सा होता है। इस उदाहरण से साफ-साफ मालूम हो सकता है कि जिस तरह एक परिवार में समानता होती है उसी तरह समाज में भी बराबरी होनी असम्भव नहीं है। इसी प्रकार समाजवादी राष्ट्र में सब उत्पादन के साधन जन-समूह के होते हैं। सब लोग मिलकर अपना-अपना काम करते हैं और उसका वेतन पाते हैं।

समाजवादी व्यवस्था ऐसी नहीं होती है कि कोई तो हजारों रुपये

महीना वेतन पावे और किसी को भोजन भर के लिए भी वेतन न मिले। किसी के पास हजारों एकड़ भूमि हो और किसी को अपना पेट पालने के लिए भी जमीन न हो। किसी को लाखों रुपयों का मुनाफा हो और किसी को पेट भर भोजन भी न मिले।

समाजवाद का लक्ष्य मनुष्य जाति का सुख है—और सुख सब के लिए किसी व्यक्ति विशेष ही के लिए नहीं। यह तभी सम्भव है जब श्रेणी-विरोध या श्रेणी-संघर्ष समाज में न रहे। इसके लिए यह आवश्यक है कि समानता हो। बराबरी का भाव समानता है। समाजवाद हर प्रकार की समानता चाहता है। राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समानता के लिए यह सिद्धान्त इस बात का प्रचार करता है कि एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर आधिपत्य नहीं होना चाहिए या किसी मुल्क या व्यक्ति का शासन दूसरे देशपर नहीं होना चाहिए। स्वभावतः एक समाजवादी परतन्त्रता का विरोध करता है। साथ ही वह साम्राज्यवाद का अन्त करना चाहता है क्योंकि साम्राज्य एक राष्ट्र का आधिपत्य दूसरे देश पर जमाकर आधीन राष्ट्र के शोषण के लिए रहता है। पूंजीवाद का विकराल रूप साम्राज्यवाद होता है।

जब पूंजीपति अपने देश के मजदूरों तथा किसानों से अनुचित लाभ उठाने में सन्तुष्ट नहीं होते हैं तब वे दूसरे राष्ट्र को अपना शिकार बनाते हैं। इसी तरह साम्राज्यवाद की नींव पड़ती है। अंग्रेजी पूंजीपति धन के लोभ में पहले अपने ही देश के किसानों तथा मजदूरों की मिहनत से नाजायज् फायदा उठाते थे। जब उस देश में पूंजीवाद की जड़ खूब दृढ़ हो गयी तब उन्होंने दूसरे देशों में अपने वाणिज्य-व्यापार द्वारा राज्य स्थापित करना आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे-धीरे उन्होंने साम्राज्यवाद का प्रचार किया।

साम्राज्य के अन्दर मजदूरों, किसानों तथा मध्यम श्रेणी का लाभ किसी भी हालत में हो ही नहीं सकता है। इस कारण से समाजवाद सर्वदा साम्राज्यवाद का नाश चाहता है। वह तो इस बात का प्रचार करता है कि जब तक साम्राज्यवाद रहेगा तब तक राजनीतिक समानता हो नहीं

सकती है। जब साम्राज्यवाद का अर्थ ही यह है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र या देश को अपने चंगुल में रखे और उस राष्ट्र का शोषण किया करे तब राजनीतिक समानता के लिए साम्राज्यवादी नीति का अन्त होना आवश्यक है। परतन्त्रता का नाम संसार से मिट जाना चाहिए।

मानव-सुख के लिए आर्थिक समानता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है जितनी राजनीतिक समानता। बहुत से देश स्वतन्त्र हैं किन्तु उन में भी किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी को वही अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो पूँजीपतियों को हैं।

जहाँ कुछ लोग साल में लाखों रुपये का लाभ उठाते हैं वहाँ मजदूर किसान कठिनता से अपने भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध कर पाते हैं। उनके परिवार के लिए कोई अच्छी व्यवस्था नहीं होती है। कपड़े के कारखानों में हजारों मजदूर काम करते हैं। उनकी मेहनत से मिल मालिक करोड़ों रुपये कमाते हैं किन्तु मजदूरों के परिवार वालों को पर्याप्त कपड़ा नहीं मिलता है। यह सब पूँजीवाद का परिणाम है। जो लाखों गज कपड़ा तैयार करते हैं उनके बच्चों के लिए चिथड़ा है। जो हजारों मन चीनी तैयार करते हैं उनके लिए गुड़ मिलने में भी कठिनाई होती है। धन्य है! पूँजीवाद, तेरे ही काल-चक्र में आज लोग पीसे जा रहे हैं।

किसानों की भी दशा ऐसी ही है। किसी-किसी के पास अधिक भूमि है। किसी को भोजन की सामग्री पैदा करने के लिए खेती भी नहीं है। उनके लिए कोई रास्ता ही नहीं है। गाँवों में न कोई रोजगार है, न कल-कारखाना है जहाँ वे काम करके अपना पेट पालें। जीवन-निर्वाह के लिए केवल खेती है। उसके लिए भी भूमि नहीं है। भला उन गरीबों के परिवार के निर्वाह के लिए भी तो कुछ होवे। कैसे रहेंगे उनके बच्चे? क्या खायेंगी उनकी स्त्रियाँ? क्या पहनेंगी उनकी मातायें? खैर, यह तो विदित ही है कि आर्थिक समानता पूँजीवादी समाज में हो ही नहीं सकती। पूँजीवाद में मनुष्य के सुख का ध्यान नहीं है बल्कि धनोपार्जन ध्येय बन गया है। वह भी धन केवल इने-गिने पूँजीपतियों की विलासिता

के लिए । समाजवाद ऐसी ही असमानता के विरुद्ध है । समाजवादी सिद्धान्त कहता है कि समाज में सबके लिए समान भाव से धन मिलना चाहिए जिससे जनता को सुख हो । सबको पेट भर भोजन मिले । सबको अंग ढकने के लिए वस्त्र मिले । सबके बच्चों की शिक्षा होवे । सबको बीमारी में दवा मिले । यदि सर्वत्र जनतन्त्र स्थापित हो जाय तो इस के लिए समानता होने में अधिक समय नहीं लग सकता है ।

कई राष्ट्रों में सामाजिक प्रश्न भी इतने कठिन हैं कि उसको सुलझाने के लिए बड़े परिश्रम की आवश्यकता है। कई देशों में जहाँ ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म या इस्लाम धर्म का प्रचार है, जाति-पाँति का झंझट नहीं है। भारत की सैकड़ों जातियों की तरह दूसरे मुल्कों का समाज अलग-अलग बंटा हुआ नहीं है। इस देश में तो एक वर्ण के अन्दर कई जातियाँ हैं और उन जातियों में से हर एक में कई उप-जातियाँ पैदा हो गई हैं। कुछ देर के लिए मान भी लिया जाय कि वर्ण व्यवस्था किसी समय समाज के कार्य के बँटवारे के लिए संगठित हुई थी तो आज उसकी जरूरत नहीं है। समाज के कल्याण के बदले उसे भारतीय समाज की बड़ी हानि है। जातियों के कारण भारतीय समाज टुकड़े-टुकड़े हो गया है । उनमें से कुछ अपने को शिरमौर्य समझती हैं। वर्तमान युग में भी कुछ लोग अपने को सर्वोच्च समझते हैं । वे भले ही अनपढ़ हों किन्तु वे अपने को दूसरी जातियों का गुरु ही समझते हैं। कुछ जातियों के साथ हिन्दू समाज ने जो अन्याय किया है उसे सब हिन्दुस्तानी जानते हैं।

ऐसी अन्यायी व्यवस्था के लिए जनतन्त्र तथा समाजवाद में जगह नहीं है। ऊँच-नीच के भाव ही का विरोधी समाजवाद है । उसके अनुसार सब मनुष्य बराबर हैं । किसी कुल या ज़ाति में जन्म लेने से वह ऊँच-नीच नहीं हो जाता है । समाज के किसी पेशे के कारण कोई नीच या ऊँच नहीं हो सकता है। मानव समाज में प्रत्येक मनुष्य के काम से उसके साथी मनुष्य का कुछ सम्बन्ध अवश्य ही रहता है । इस प्रकार एक देश के समाज का सम्बन्ध उसके प्रत्येक व्यक्ति से रहता है। समाज के सदस्यों के कार्य सम्मिलित होने पर वे पूरे समाज के कार्य के रूप में प्रगट होते

हैं । इससे एक के काम से दूसरे का लाभ होता है । ऐसी हालत में हर एक व्यक्ति के काम समाज के लिए कुछ न कुछ अवश्य महत्वपूर्ण होते हैं ।

जब एक व्यक्ति के काम का असर दूसरे व्यक्ति पर पड़ता है और व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग से समाज की उन्नति होती है तब समाज में हर एक को सामाजिक समानता होनी चाहिए । यह सामाजिक बराबरी राजनीतिक समानता को दृढ़ बनाती है । समाजवाद का यही सिद्धान्त है । यह अवश्य है कि सामाजिक समानता तभी हो सकती है जब देश में राजनीतिक तथा आर्थिक समानता हो । इनके बिना सामाजिक बराबरी असम्भव है । इसलिए समाजवाद का प्रचारक इस बात पर जोर देता है कि सब से पहले राजनीतिक अधिकार जनता के हाथों में आ जाना सबसे आवश्यक है । राजनीतिक शक्ति हो जाने पर आर्थिक प्रश्नों को हल करने में आसानी होती है । उसके बाद तो सामाजिक समानता अपने आप ही आ जाती है ।

उपरोक्त बातों का सारांश यह है कि जनतन्त्र या समाजवाद का लक्ष्य है मनुष्य जाति का सुख, और सुख किसी व्यक्ति विशेष, गुट, श्रेणी या राष्ट्र के लिए नहीं बल्कि पूरी मानव-जाति के लिए । राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता इसके मुख्य अंग हैं ।

उपरोक्त बातों के लिए समाजवाद तथा सच्चा प्रजातन्त्र यह आवश्यक समझते हैं कि उत्पादन तथा वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीकरण होवे । ये इस बात का प्रचार करते हैं कि जब तक पैदावार तथा बँटवारे के साधन व्यक्तिगत हाथों में रहेंगे तब तक उनका प्रयोग उचित रूप से नहीं हो सकता, और न पूरे समाज का इनसे विशेष लाभ ही हो सकता है । सारे समाज के सामूहिक हित के लिए यह आवश्यक है कि ये सब राष्ट्र के अधिकार में रहे । उत्पादन के साधन जैसे भूमि, खान, रेल, कारखाने या देश के वे रोजगार जो समाज की आर्थिक स्थिति को अपने काबू में रखते हैं, राष्ट्र की सम्पत्ति होनी चाहिए । इसी तरह बँटवारे के बड़े बड़े साधन समाज ही की सम्पत्ति होनी चाहिए । तभी

पूरे राष्ट्र की भलाई अच्छी तरह हो सकती है।

समाजवाद तथा धर्म में क्या सम्बन्ध हैं ? यह प्रश्न भी ऐसा है जो लोगों का ध्यान आकर्षित करता है । अपने अपने धर्म के कट्टर अनुयायी तो यह कहते हैं कि धर्म ही समाजवाद का मूल है तथा धर्म समाजवादी सिद्धान्तों का समर्थन करता है । भारतवर्ष में कुछ लोग हिन्दू धर्म ग्रन्थों में ऐसे-ऐसे वाक्य दिखलाते हैं जिनका मतलब समाजवादी सिद्धान्त जैसा होता है । योरोप में भी पहले ही से अनेकों धार्मिक पुरुषों के विचार ऐसे थे जिनसे समाज में बराबरी का प्रचार होता है ।

किन्तु जब से वैज्ञानिक समाजवाद का बोलबाला संसार में हुआ है तब से यह साफ-साफ प्रगट हो गया है कि धर्म तथा समाजवाद के दृष्टिकोण ही में भारी अन्तर है । समाजवाद धर्म को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझता है जितना पादरी, मुल्ला या हिन्दू धर्म के पंडित। बल्कि वह तो यह कहता है कि धर्म की आड़ में पूँजीवाद के प्रचारक अपना मतलब साधते हैं । कभी-कभी धर्म अन्धविश्वास सिखलाता है जिसको समाजवादी बिलकुल नहीं चाहता है। अन्ध विश्वास ही के कारण एक धर्म का आदमी दूसरे धर्म का शत्रु बन जाता है । दुनिया के इतिहास में धर्म के नाम पर लाखों प्राणियों का खून बहाया जा चुका है। भारतवर्ष आँखों के सामने है । यही नहीं, योरूप में भी कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट की धार्मिक लड़ाई लोगों को मालूम है । जीवित आदमी जलाये गये । उनके अंग-अंग काटे गये । किसके लिए ? धर्म के लिए। यह है धर्म । प्रत्येक धर्म में कुछ मनुष्य दूसरे से उच्च समझे जाते हैं। ऊँच-नीच का भाव ही समाजवाद तथा जनतन्त्र को स्वीकार नहीं होता है। धर्म बहुधा भाग्य पर ज़ोर देता है । खासकर भारत की जनता में तो भाग्य का भाव इतना भरा हुआ है कि आदमी भाग्य ही पर भरोसा करके बैठे रहते हैं और कर्तव्य का कम ध्यान रखते हैं । समाजवादी कर्तव्य जानता है और उसके लिए परिश्रम करना सिखलाता है।

उसके लिए भाग्य कोई महत्व नहीं रखता है। वह अपनी सफलता और असफलता को अपने किये हुए कर्तव्य से तौलता है । यदि वह

असफल होता है तो भाग्य को दोष नहीं देता है बल्कि अपनी दुर्बलताओं को ढूँढता है, जिनके कारण असफलता हुई । वह उन कमजोरियों को दूर करता है और फिर सफलता के लिए प्रयत्न करता है। समाजवादी यह कहता है कि अपनी बुद्धि, अपने बाहुबल का भरोसा, उत्साह तथा परिश्रम ही सब कठिनाइयों को सरल बनाता है । आशावादिता उसकी विशेषता होती है । वह तो यह समझता है कि किसी दिन अपने कर्तव्य से मनुष्य अवश्य सफल होता है। उसका धर्म भ्रातृभाव तथा समानता है । इसका मतलब यह है कि समाजवाद किसी भी धर्म के संकुचित विचारों को नहीं मानता है बल्कि यह प्रचार करता है कि जहाँ तक जन्म का सम्बन्ध है सब धर्म वाले बराबर हैं तथा सब मनुष्य समान हैं।

समाजवाद के बारे में कई प्रकार की भ्रमात्मक बातें भी कभी-कभी सुनाई देती हैं । सब से पहले तो यह कहना जरूरी है कि मार्क्स के पहले भी कई विद्वान समाजवाद का प्रचार करते थे किन्तु उनकी व्याख्या अधिकतर काल्पनिक थी । फिर भी कम से कम इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन लोगों ने भी समाज के संगठन का आधार राजनीतिक तथा आर्थिक समानता और प्रजातन्त्र बनाने का प्रयत्न किया ।

उनके बाद मार्क्स ने अपना नया दृष्टिकोण लोगों के सामने रखा। उनके विचारों की कुछ बातें सत्य साबित हो रही हैं और कुछ गलत हो रही हैं या समाज के कार्य रूपी प्रयोगशाला में खरी नहीं उतर रही हैं । यहाँ उनके बारे में विस्तार से विचार करना असली विषय से दूर जाना होगा। तब भी दो-चार बातें तो अत्यन्त आवश्यक हैं।

मार्क्स ने आर्थिक मामलों को ही सर्वप्रधान तथा सबसे महत्वपूर्ण मानकर उन्हें अन्य सारे प्रश्नों का मूल माना है। उन्होंने मनुष्य के आत्मगत महत्व की उपेक्षा करके मानवप्राणी के मनोविज्ञान को भुला दिया मनुष्य में कई प्रवृत्तियाँ जन्म से ही पैदा होती हैं जो समाज की प्रगति में बराबर काम करती रहती हैं। वे आर्थिक समस्याओं से नहीं पैदा होती हैं बल्कि जन्मजात होती हैं। उनके महत्व को कम करना मानव शक्ति की

उपेक्षा है ।

उन प्रवृत्तियों में जिज्ञासा या अनजान बातों को जानने की प्राकृतिक प्रेरणा आदमी को उन्नति के लिए प्रोत्साहित किया करता है। उनसे मनुष्य नये-नये अन्वेषण तथा आविष्कार करता है—नये-नये औजार बनाता है। उन नये मशीनों से समाज के विकास में सहायता मिलती है। किन्तु असल में उन मशीनों या औजारों को बनाने वाला मनुष्य ही होता है। औजार आदमी को नहीं बनाता है । इससे यह नतीजा निकलता है कि समाज के विकास में मनुष्य के प्राकृतिक गुण सबसे अधिक काम करते हैं और उनकी विशेषताओं से ही औजार या मशीन वगैरह पैदा होती हैं जो सामाजिक प्रगति में प्रभावकारी सिद्ध होती हैं।

तीसरी बात जिसकी चर्चा यहाँ होनी चाहिए यह है कि समाज में कभी श्रेणी-संघर्ष जोरों से चलता है तो कभी श्रेणी समन्वय जोर पकड़ता है। यह कहना गलत होगा कि वर्ग संघर्ष ही सदा चला करता है । वैसे ही यह साबित करना कि वर्ग समन्वय ही प्रायः होता है और वर्गों में संघर्ष का महत्व कम होता है गलती होगा । असल बात यह है कि समाज की प्रारम्भिक समाजवादी अवस्था के बाद कभी किसी देश में श्रेणी-संघर्ष जोर पकड़ता है तो कभी श्रेणी समन्वय।

आजकल कुछ लोग जो मार्क्सवादी विचार को आँख मूंदकर मानते हैं यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि हर देश में बराबर वर्ग-संघर्ष चला करता है। परन्तु जब हम इंग्लैंड और हिन्दुस्तान के आपसी सम्बन्ध पर ध्यान देते हैं तो यह मालूम पड़ता है कि १९४७ के पहले इंग्लैण्ड के सब वर्ग मिलकर भारत का शोषण करने में हाथ बटाते थे। भारत के मुकाबले में ब्रिटेन के मजदूर, मध्यम श्रेणी तथा पूंजीपति एक होकर हिन्दुस्तानियों के शोषण में हिस्सा बटाते थे। भारत के शोषण के लिए वहाँ उन वर्गों में समन्वय होता था।

ऐसे ही उदाहरण कई देशों के श्रेणियों में मिलेंगे । इससे यही साबित होता है कि समाज में कभी श्रेणी-समन्वय और कभी वर्ग-संघर्ष चलता है। खैर, अब हमें अपने असल विषय पर विचार करना है।

इतनी देर तक क्रान्ति के मुख्य-मुख्य भेदों को समझने के लिए प्रयत्न किया गया है। राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति, पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति तथा समाजवादी विप्लव में जो सैद्धान्तिक भिन्नता है उसका सारांश यहाँ वर्णन कर देना अच्छा होगा।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का सबसे पहला और प्रमुख कर्तव्य विदेशी सत्ता का नाश करना और विदेशी शासन द्वारा स्थापित कुप्रथा, करीति तथा बुरी व्यवस्था का अन्त करना होता है। साथ ही सामन्तशाही को नष्ट कर राजनीतिक प्रजातन्त्र स्थापित करना और आम जनता को शासन-संचालन के लिए अधिकार देना भी उसके कार्यक्रम में निहित होता है। राष्ट्रीय विप्लव का मतलब केवल विदेशी हुकूमत का अन्त करना और राजनीतिक अधिकार सम्बन्धी जनसाधारण की सत्ता स्वीकार करना ही नहीं है बल्कि देश के निवासियों को भोजन, वस्त्र, शिक्षा, दवा आदि आवश्यकीय बातों तथा राष्ट्र की उन्तति के साधन का प्रबन्ध करना भी होता है।

उस विप्लव से विदेशी शासन-व्यवस्था का अन्त होता है और राष्ट्रीय शासन-प्रणाली प्रारम्भ होती है। ऐसे सिद्धान्त के आधार पर हुकूमत चलती है, जिससे देश के प्रबन्ध का असली अधिकार जनसाधारण को ही मिलता है।

मतलब यह है कि राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के तीन कार्यक्रम होते हैं। विदेशी सत्ता एवं सामन्तशाही का अन्त करना उसका पहला विध्वंसात्मक कार्य होता है। उसके साथ राजनीतिक तथा आर्थिक प्रजातन्त्र कायम करना और आम जनता के जीवन-निर्वाह के लिए अच्छा प्रबन्ध करना उसका रचनात्मक कार्यक्रम होता है।

राष्ट्रीय विप्लव से समाजवादी व्यवस्था तो नहीं स्थापित हो सकती है किन्तु उससे पूँजीवाद की जड़ें हिलाकर पूँजीवादी प्रणाली के अवगुण काफी हद तक रोके जा सकते हैं। बैंकों, आवागमन के साधनों, खानों, बड़े-बड़े कल-कारखानों, राष्ट्र-रक्षा के लिए जरूरी सामान तैयार करने वाली फैक्टरियों, उद्योग-धन्धों इत्यादि का राष्ट्रीकरण राष्ट्रीय क्रान्ति से

जहाँ तक राजनीति का सम्बन्ध है वहाँ तक तो जरूर बहुत बड़ा उलटपुलट होती है। राजनीतिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो जाता है। सामाजिक संगठन भी बदल जाता है परन्तु समाज का आर्थिक ढाँचा पहले सा ही बना रहता है।

समाजवादी क्रान्ति का कर्त्तव्य राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके समाज में समाजवाद के अनुसार आर्थिक संगठन चलाना होता है। अर्थात् राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करना साधन होता है और समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था साध्य होती है। समाज में आर्थिक तथा राजनीतिक (दोनों प्रकार की) समानता उसका असल ध्येय होता है।

(२) पूँजीवादी क्रान्ति का कार्य राजनीतिक अधिकार पा जाने पर समाप्त हो जाता है। जिन लोगों के हाथों में पहले शासनाधिकार रहता है उन लोगों के शक्ति-हीन हो जाने पर तथा राजनीतिक शक्ति नये व्यक्ति या पार्टी के हाथ में आ जाने पर उसका कार्य लगभग पूर्ण होना समझा जाता है अर्थात् इस प्रकार के क्रान्ति का सम्बन्ध विशेष रूप से राजनीति ही से रहता है।

समाजवादी क्रान्ति में राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना केवल आरम्भ होता है। उसका कार्य तब तक चलता है जब तक नया सामाजिक तथा आर्थिक संगठन न हो जाय। इससे शासन-पद्धति के साथ ही आर्थिक व्यवस्था में भी पूर्ण परवर्तन होता है। नई शासन-व्यवस्था से शोषित प्रजा के हितों की रक्षा होती है। पूँजीवादी क्रान्ति से स्वार्थी व्यक्तियों के एक दल के प्रभुत्व का नाश होता है और उसके बदले दूसरा राजनीतिक दल अधिकार प्राप्त करता है।

(३) समाजवादी क्रान्ति से स्वार्थियों का दल अधिकार से वंचित हो जाता है। उसके बदले किसान तथा मजदूरों के प्रतिनिधियों के हाथ में अधिकार आता है। उससे गरीबों के हित के लिए कार्य होता है। अत्याचारी गवर्नमेण्ट की शासन-पद्धति नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। उसके बदले नवीन आधार पर नई शासन-प्रणाली का संगठन होता है जिसका असली अधिकार जनता के हाथों में रहता है।

(४) पूँजीवादी क्रान्ति का साथ गरीब मजदूर तथा किसान अधिक दिन तक नहीं दे सकते हैं, क्योंकि इससे उनके स्वार्थों की पूरी रक्षा नहीं हो सकती है। अतः उस क्रान्ति का सुफल स्थायी नहीं होता है। कुछ दिनों के बाद फिर असन्तोष उत्पन्न हो जाता है। जनता में आर्थिक कष्ट के कारण पुनः नया आन्दोलन आरम्भ होता है।

समाजवादी क्रान्ति तो मजदूर तथा किसानों की सहायता से होती है, क्योंकि यह तो उन्हीं के श्रम का प्रतिफल होती है। इससे यह सदा उनको अपने साथ रख सकती है। उन्हीं के हित के लिए तो यह क्रान्ति होती है। अतएव समाजवादी क्रान्ति का फल चिरस्थायी होता है।

अब हम लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के विप्लव के बारे में कुछ अनुमान कर सकते हैं। क्रान्ति स्वयं समाजवादी या पूँजीवादी नहीं होती है बल्कि उसके द्वारा प्राप्त अधिकार से क्रान्तिकारी समाज का संगठन जैसा करते हैं वैसा विप्लव का रूप होता है। यदि उनकी मनोवृत्ति पूँजीवादी होती है और वे अपने तथा अपने समूह ही का स्वार्थ देखते हैं तब तो प्रायः वे क्रान्ति के बाद समाज का संगठन पूँजीवाद के अनुसार करते हैं।

इस कमजोरी को समाजवादी क्रान्ति न होने पर भी रोका जा सकता है। राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव द्वारा बालिग मताधिकार पा जाने पर प्रजा अपने स्वार्थों की रक्षा कर सकती है और साथ ही पूँजीवाद की बुराइयों को भी दूर कर सकती है।

असल में पूँजीवाद, समाज की आर्थिक व्यवस्था चलानेवाली शक्तियों को, पूँजीपतियों के हाथ में रखता है। उससे पूंजीपति जिस तरह समाज के सदस्यों तथा साधनों का इस्तेमाल करना चाहते हैं उस प्रकार वे अपनी पूँजी से देश के आर्थिक मामलों को चलाते हैं। उनके हाथ में बैंक ऐसा साधन होता है जिससे वे मुल्क के उद्योग-धन्धों तथा उसके लिए जरूरी पूंजी पर अपना पूरा नियन्त्रण रखते हैं। यदि बैंक तथा मुख्य-मुख्य उद्योग-धन्धों को विप्लव होते समय पूँजीपतियों या उनके एजेण्टों के अधिकार में न जाने दिया जाय तो समाज की आर्थिक व्यवस्था पूँजीपतियों के संचालन में नहीं रह सकती है।

यह एक ऐसी बात है जो बीसवीं शताब्दी के अनुभव के बाद राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव द्वारा सम्भव हो सकती है । पूँजीवाद के पूर्ण विकास के पहले ऐसा होने में बहुत बड़ी कठिनाइयाँ थी । सच्ची बात यह है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में साधारण लोगों को पूँजीवाद की बुराइयों की पूरी जानकारी नहीं थी । इससे लोग विप्लव होते समय इस शताब्दी के आरम्भ में भी उतना सतर्क नहीं थे जितना होना चाहिए। चीन में प्रजातन्त्रात्मक विप्लव द्वारा एकतन्त्र का नाश होने और प्रजातन्त्र का आरम्भ होने पर क्रान्ति के नेता पूँजीवाद से उतना चौकन्ना नहीं थे जितना आज लोग भिन्न-भिन्न देशों में सतर्क हैं । इससे इस समय चतुर क्रान्तिकारी नेता विप्लव को पूंजीवादी क्रान्ति का रूप नहीं धारण करने देंगे । मतलब यह है कि वर्तमान शताब्दी के प्रथम दो-तीन दशक में कहीं-कहीं विप्लव पूँजीवाद के प्रभाव में चला गया । इस समय उसकी सम्भावना नहीं के बराबर है ।

आजकल चाहे राष्ट्रीय विप्लव हो या किसी स्वतन्त्र देश में प्रजा-तन्त्रात्मक क्रान्ति हो । दोनों जगह पूँजीवादी क्रान्ति होने की आशंका बहुत कम है । विप्लव द्वारा देश की बागडोर क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथ में आने पर वे पूँजीवाद को नहीं मजबूत कर सकते हैं, क्योंकि प्रगति-शील शक्तियाँ आज बहुत सतर्क हैं । इनसे हमें भविष्य में पूँजीवादी क्रान्ति नहीं कहना चाहिए । उसके बदले केवल प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति कहना चाहिए । अब राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव, प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति तथा समाजवादी विप्लव के नाम से इस विषय पर विचार विनिमय करना चाहिए ।

ऐसा कहने का मतलब यह है कि यदि आजकल कोई प्रजा-तन्त्रात्मक क्रान्ति किसी परतन्त्र या अर्थ पराधीन राष्ट्र में अथवा किसी ऐसे देश में जहाँ एकतन्त्र या सामन्तशाही अब भी हो तो उसका रूप न तो पूँजीवादी ही होगा और न एकाएक समाजवादी ही होगा। वह शुद्ध प्रजा-तन्त्रात्मक होगा । बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों तथा बैंकों पर या तो क्रान्ति द्वारा संगठित नई सरकार का पूरा नियन्त्रण होगा या उनका राष्ट्री-

करण होगा । परन्तु उनके राष्ट्रीयकरण को समाजवादी व्यवस्था नहीं कहा जा सकता है । प्रजातन्त्रात्मक विप्लव से आवागमन के साधन, उत्पादन तथा वितरण के साधन, बैंक, खान, देश-रक्षा की सामग्री पैदा करने वाली फैक्ट्रियों इत्यादि का राष्ट्रीयकरण हो जाने पर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति रहती है। इस प्रकार यही कहना ठीक होगा कि वैसी क्रान्ति न तो पूँजीवादी और न समाजवादी ही होती है। असल में वह सच्चा प्रजातन्त्रात्मक विप्लव होती है। अब तो प्रजातन्त्र की कमजोरियों को दूर करने का भी पूरा प्रयत्न हो रहा है ।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव हो, शुद्ध प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति हो या समाजवादी विप्लव हो—जब कोई भी क्रान्ति होती है तब पुराने अत्याचारों का नाश तो अवश्य होता है। जनता में आत्म-विश्वास का प्रादुर्भाव होता है । अन्याय के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने की प्रेरणा होती है। राष्ट्र का ज्ञान बढ़ता है । देश में ऐसा वायुमण्डल हो जाता है कि वहाँ के लोग समानता तथा स्वतन्त्रता का अनुभव करने लगते हैं। वह देश कितना ही पिछड़ा हुआ क्यों न हो किन्तु तब भी अशिक्षित जनता को भी यह मालूम होजाता है कि राष्ट्र-निर्माण में उसकी भी देन होती है। वह अपने अधिकार को काम में लाने का प्रयत्न करती है। मनुष्यों को अपनी शक्ति का ज्ञान होता है। परन्तु क्रान्ति के सब गुण पूर्ण रूप में तभी सफल होते हैं जब समाज या राष्ट्र का आर्थिक संगठन किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी के स्वार्थों की रक्षा के लिए होता है।

राष्ट्र है क्या ? वह एक प्राकृतिक सीमा के अन्दर जनसमुदाय है जिसकी जनता की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, जाति, आर्थिक स्वार्थ, सरकार आदि सामान्य होती हैं । उस जन-समूह में गरीब, धनी, छोटे एवं बड़े कहलाने वाले सभी सम्मिलित होते हैं। अवश्य हो, धनीमानी पुरुष थोड़े होते हैं। जब पूरे राष्ट्र के हित का प्रश्न उठता है तब उसमें गरीब और पीड़ित जनता के स्वार्थों की रक्षा सबसे आवश्यक होती है। उन गरीबों में अधिक मजदूर तथा किसान ही होते हैं । ऐसी परिस्थिति में क्रान्ति का ध्येय सदा मजदूर, किसान तथा निम्न मध्यम श्रेणी का

हित होता है । इस आदर्श की प्रेरणा से क्रान्तिकारी अपने ध्येय के लिए कभी कभी प्राणों तक की आहुति देता है और स्वयं मिटकर दूसरों को मातृभूमि तथा समाज की उन्नति के लिए मरना सिखलाता है।

विप्लव में उपरोक्त विशेषताएँ होने पर भी क्रान्ति के बदले कुछ लोग सुधारवाद ही की शरण लेना चाहते हैं । यहाँ क्रान्तिवाद तथा सुधारवाद की तुलनात्मक विवेचना के सम्बन्ध में दो-चार शब्द जरूरी जान पड़ते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के बाद संसार के सभी देशों की परिस्थिति बिलकुल बदल गई । मध्यकालीन युग की हालत आज कहीं नहीं है । वर्तमान समय में पुरानी सामाजिक व्यवस्था की नींव ही जीर्ण तथा जर्जर हो गई है । इससे जो दुर्बलता समाज में आज उत्पन्न हो गई है उसमें मामूली काट-छाँट से काम नहीं चल सकता है। फिर भी सुधारक यही कहता है कि सुधार से ही समाज का कल्याण हो सकता है । उसे यह नहीं सूझता है कि नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए नई-नई व्यवस्थाओं की आवश्यकता है । इसकी पूर्ति क्रान्ति से ही हो सकती है। परन्तु सुधारवादी के मस्तिष्क में तो यह बात आती नहीं है । बीसवीं सदी में भी इस समय जब दुनियां में पूँजी-वाद तथा साम्राज्यवाद के कारण मानव-समाज पीड़ित है, सुधारक यही प्रचार करता है कि सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था सुधार से ठीक हो सकती है।

इस नीति के अनुसार राजनीतिक क्षेत्र में जो साधारण परिवर्तन हो जाते हैं उनको देखने से यह जान पड़ता है कि जनता का दुःख कम होगा। किन्तु असली बात उसके उलट ही होती है। सुधार से ऊपरी बुराई का अन्त होजाता है। किन्तु उससे जनता में भ्रम पैदा होता है और असली अधिकारों को प्राप्त करने के प्रयास में शिथिलता आ जाती है। इससे समाज की बुराइयाँ जोर पकड़ती हैं । इसके साथ ही मानव-जाति की असली भलाई करने वाली शक्तियाँ निर्बल होती हैं । कभी कभी कुछ समय के लिए वे छिन्न-भिन्न भी हो जाती हैं । सुधार से

क्रान्तिकारी शक्तियाँ भी भ्रम में पड़ जाती हैं तथा अपने असली लक्ष्य से विचलित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि जन-साधारण मामूली लाभ के लोभ में पड़कर सुधारवादी कार्यक्रम के फेर में पड़ जाता है और अपने असल हित के लिए लड़ने वाली संस्थाओं या व्यक्तियों की उपेक्षा करने लगता है।

पहले लिखा जा चुका है कि मनुष्य-जाति का दुख दूर करके सुख के लिए स्थाई न्याय का राज्य स्थापित करना ही क्रान्ति का असली ध्येय होता है। क्षणिक सुख के लिए बहुत से लोग सुधार की शरण लेते हैं। वे यह कहते हैं कि विप्लव के बदले धीरे-धीरे सुधार से ही वह लक्ष्य प्राप्त हो जावेगा जो क्रान्ति से सम्भव होगा। वे लोग ऐसा कहते तो हैं किन्तु यह भूल जाते हैं कि सुधार से मौलिक परिवर्तन नहीं हो सकता है।

सुधारक के कोष में सुधार ही प्रथम और अन्तिम शब्द होता है। अर्थात् सुधार ही उनका आखिरी ध्येय है। किसी कष्ट या दुख में क्षणिक सुख पहुँचा देने से ही उनकी इच्छा की पूर्ति हो जाती है। परन्तु जिस कारण से वह दुख उत्पन्न होता है उसकी जड़ ज्यों की त्यों बनी रह जाती है। समय के परिवर्तन के कारण या समाज में बहुतेरी कुरीतियाँ पैदा होने से सामाजिक व्यवस्था में समयानुकूल थोड़ा हेर-फेर कर देने से बुराई निर्मूल नहीं हो सकती है। इसी से सुधार से कभी स्थाई सुख नहीं हो सकता है। तब भी सुधारक क्रान्तिकारी कार्य को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझता है जितना क्रान्तिकारी समझता है।

कभी-कभी विप्लवी यह सोचकर सुधार को स्वीकार कर लेता है कि सुधार उसके क्रान्तिकारी लक्ष्य तथा कार्यक्रम के लिए साधन का काम करेगा और वह स्वयं उसकी ओट में अपना क्रान्तिकारी संगठन करता रहेगा। उस संगठन का ध्येय साधारण जनता को राजनीतिक शिक्षा देता रहता है। वह चाहता है कि समाज की बुराई क्रान्ति द्वारा मिटाने की योग्यता लोगों में पैदा हो और वे विप्लव की शिक्षा पावें। इसका साफ मतलब यह है कि सुधार के द्वारा कभी-कभी क्रान्तिकारी

अपनी शक्तियों को सुसंगठित करते हैं ताकि उनसे क्रान्ति में सहायता मिले। परन्तु उनका अटल विश्वास होता है कि सुधार से किसी प्रकार भी असली दुख दूर नहीं हो सकता है।

सुधारक केवल सुधार चाहता है। कोई आन्दोलन कितना भी अच्छा क्यों न हो किन्तु यदि अवैधानिक हो तो वह उसका पक्ष नहीं लेता है। यदि उस आन्दोलन से जनता में जागृति पैदा होती है तथा क्रान्तिकारी वायुमण्डल बनने लगता है तो सुधारक उसका विरोधी हो जाता है। वह केवल मामूली उलट फेर चाहता है। प्रायः वह समाज में कोई बड़ा आमूल परिवर्तन नहीं चाहता है। उदाहरण से इस विषय पर अधिक प्रकाश पड़ेगा।

मान लिया जाय कि कोई पुरानी इमारत है। वह गिरने वाली है। वह ज्यादे दिन चल नहीं सकती है। उसे ठीक करने के लिए दो कारीगर बुलाये गये हैं। एक चाहता है कि उस मकान की कुछ मरम्मत कर दी जाय ताकि वह कुछ दिन काम दे सके, यद्यपि अब उसमें रहना सुरक्षित नहीं है। दूसरा कहता है नहीं, इसको नींव से गिरा देना चाहिए और बिलकुल नया भवन बनाना चाहिए अन्यथा पता नहीं कब वह गिर जाय और रहने वालों को भी साथ ही ले दाबे।

यही मतभेद सुधार और क्रान्ति में है। सुधार बुराई की जड़ को नहीं नष्ट कर सकता है। क्रान्ति उसकी जड़ ही खोदती है। सुधार से थोड़े समय के लिए बुराई कम हो जाती है परन्तु वह फिर बड़े भयानक रूप में उत्पन्न हो जाती है। विप्लव उसे सदा के लिए मिटाता है। क्रान्तिवाद का कार्य स्थाई होता है। अतः सुधारवाद से क्रान्तिवाद समाज की बुराइयाँ निर्मूल करने तथा कल्याणकारी परिवर्तन करने में सदा श्रेयस्कर सिद्ध होता है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्रान्ति सम्बन्धी चौथी विभिन्नता का प्रादुर्भाव हो रहा है। प्रजातन्त्रात्मक विप्लव सम्बन्धी विभेद की विवेचना आरम्भ करते समय उसमें दो भेद बतलाये गये थे—राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव तथा पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति। संसार में

पूँजीवाद का पूर्ण विकास हो जाने पर पूँजीवादी वर्ग का जो कार्य-क्रम फ्रांसीसी विप्लव के बाद किसी-किसी देश में क्रान्ति के पक्ष में था, वह समाप्त हो गया वह क्रान्ति का समर्थन करने के बदले विरोध करने लगा। इससे वह प्रतिक्रियावादी हो गया। इस प्रकार विश्व-क्रान्ति में पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के बदले शुद्ध जनतन्त्रात्मक विप्लव का विकास हुआ। वह पूँजीवाद की दुर्बलताओं को निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहा है।

राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव हो या शुद्ध जनतन्त्रात्मक विप्लव हो—दोनों जब समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना आरम्भ करते हैं तब वे समाजवादी विप्लव का रूप धारण करने लगते है। द्वितीय साम्राज्यवादी विश्व-युद्ध के बाद समाजवादी क्रान्ति में भी दो विभेदों का विकास हुआ। जनतंत्रात्मक समाजवादी विप्लव तथा तानाशाही समर्थक समाजवादी क्रान्ति। संसारव्यापी द्वितीय युद्ध के पहले रूसी क्रान्ति समाजवादी विप्लव का एक मात्र उदाहरण थी। वह तानाशाही की स्थापना समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अनिवार्य मानती थी। उसके पश्चात् चीनी समाजवादी विप्लव में रूसी विप्लव से कार्यक्रम तथा नीति सम्बन्धी बहुत अन्तर पड़ा। परन्तु मौलिक बातों में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी भी रूसी सिद्धान्तों का ही अनुसरण करने का दावा अब भी करती है।

भारत में १९४७ विशेषतः १९५४ के बाद राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक क्रान्ति द्वारा समाजवादी विप्लव में नवीन विभिन्नता का विकास हो रहा है। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के आवाड़ी अधिवेशन, १९५५ की समाजवादी व्यवस्था तथा भारतीय जनतन्त्र की आर्थिक नीति सम्बन्धी घोषणा के बाद भारतीय राष्ट्रीय जनतन्त्रात्मक विप्लव समाजवादी क्रान्ति का रूप धारण करने लगा है। यदि इसकी प्रगति होती रही तो समाजवादी विप्लव की सफलता तानाशाही के बिना प्रजातन्त्रात्मक वैधानिक उपायों से भी संसार के लिये नई ऐतिहासिक देन के रूप में प्रगट होगी। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस तथा नेहरू सरकार के तत्वावधान में विश्व विप्लव के इतिहास में नवीनता तथा मौलिकता के आधार पर शोषणविहीन मानव-समाज की स्थापना के लिये क्रान्ति में नई विभिन्नता का विकास प्रारम्भ हुआ है।

चौथा परिच्छेद

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव

राष्ट्रीय जनतन्त्रामक क्रान्ति की चर्चा तीसरे अध्याय में हुई है । उसके सम्बन्ध में यहाँ विस्तार से विचार होना चाहिए । इसके लिए एक पृथक् परिच्छेद आवश्यक है । सबसे पहले यह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का महत्व किसी अन्य प्रकार की क्रान्ति से कम नहीं होता है । उसके मौलिक सिद्धान्त एवं कार्यक्रम समाज के लिए वैसे ही लाभदायक होते हैं जैसे अन्य क्रान्तियों के होते हैं ।

जहाँ विदेशी साम्राज्यवाद किसी राष्ट्र का शोषण करता है वहाँ राष्ट्रीय क्रान्ति की महत्ता इतनी अधिक होती है कि शासक घबड़ाकर क्रूरतम दमन की शरण लेने पर भी अपने लिए संकट समझते हैं । जिस विप्लव के पहले ही अत्याचारी लोग इतना भयभीत होते हैं उसके सफल होने पर अन्यायी शासन एवं परतन्त्रता का विध्वंस किस प्रकार तथा कितना होगा इस बात का अनुमान बहुतेरे लोग ठीक-ठीक नहीं लगाते हैं। उसका महत्व साधारण जनता को साफ-साफ नहीं मालूम होता है । यद्यपि सब परतन्त्र, अर्ध स्वतन्त्र तथा उन देशों में जहाँ की जनता का विशेष शोषण पूँजीवाद द्वारा हो रहा है विप्लव अवश्य होने वाला है तब भी उसका मतलब सब लोगों को अच्छी तरह नहीं विदित होता है । पराधीन तथा अर्धपरतन्त्र राष्ट्रों में राष्ट्रीय क्रान्ति की बात हो या स्वतन्त्र पूँजीवादी देशों में सामाजिक विप्लव का प्रश्न हो सब जगह कभी-कभी लोगों में क्रान्ति के प्रति भ्रम फैल जाता है या स्वार्थी लोग या शासक उसके सम्बन्ध में भ्रमात्मक बातें प्रचारित कर देते हैं । इससे राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव पर विचार आरम्भ करने के पहले सर्वप्रथम उसका असली मतलब समझ लेना चाहिए ।

राष्ट्रीय विप्लव समाज में अराजकता या अव्यवस्था पैदा करने के लिए नहीं होता है बल्कि समाज की बाहरी तथा भीतरी बुराइयों का

आधार हिलाकर उन्हें निर्मूल करने के लिए होता है । जनता के जीवन में जो कटुता रहती है उसे मिटाने के लिए जब विप्लवी प्रयास होता है तब उसमें कभी-कभी कुछ समय के लिए ऐसी बातें भी हो जाती है जिन्हें रुचिकर नहीं कहा जा सकता है । परन्तु उससे स्वयं क्रान्ति का दोष नहीं साबित होता है ।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव महान् तथा मौलिक परिवर्तन होता है । वह पराधीनता, एकतन्त्र, समाज की कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा बुरी व्यवस्थाओं का नाश कर राष्ट्र या किसी देश की मानव-जाति का नया संगठन इस अभिप्राय से करता है कि जनता की भलाई अधिक से अधिक हो और साथ ही राजनीतिक सत्ता सब लोगों या समाज के हाथों में रहे। यह आमूल परिवर्तन होता है । अर्थात् किसी देश के निवासियों के कष्ट या शोषण के मुख्य कारण को मिटाकर राष्ट्रीय समाज का नया निर्माण इसका कार्य होता है । ऐसा बड़ा कार्यक्रम पूरा करने के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल आवश्यक होता है ।

जब एकतन्त्र, किसी अन्य बुरी व्यवस्था अथवा विदेशी शासन द्वारा मानव-शोषण भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है, किसी देश के स्वार्थी शासकों की कूटनीति से संसार में नरसंहार होता है अथवा किसी राष्ट्र की जनता अत्याचारी शासन द्वारा पीड़ित होती है तब लोगों का दुख दूर करने, युद्ध के लिए उन्मत्त शासकों को हटाने तथा नागरिकों के सुख एवं शान्ति के लिए राष्ट्रीय विप्लव होता है ।

उससे समाज में साधारण हेरफेर नहीं होता है बल्कि पूर्ण परिवर्तन होता है । भौतिक पदार्थों के उपभोग के लिए जन-साधारण को इसके द्वारा अच्छा अवसर मिलता है । इससे उसे पूर्ण मौलिक परिवर्तन समझना चाहिए । केवल मौलिक साधन के प्रयोग अर्थात् जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यकीय वस्तुओं के उपभोग के लिए सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन नहीं होता है बल्कि मनुष्य के पूर्ण गुण के प्रति भी लोगों का दृष्टिकोण बदल जाता है । प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति होने पर प्रायः उन्हीं विशेषताओं को पूर्ण गुण समझा जाता है जिनसे मानवता के उत्थान के लिए बल मिलता

है और सार्वजनिक हित के लिए सहायता मिलती है । इससे राष्ट्रीय विप्लव को ऐसा परिवर्तन नहीं समझना चाहिए जिससे केवल आमोद-प्रमोद, शारीरिक सुख या भोग-विलास के लिये लोगों के साधन बढ़ जायँ। सफल जनतन्त्रात्मक क्रान्ति उस नैतिक, भौतिक तथा मानसिक परिवर्तन को कहते हैं जो मनुष्य का दृष्टिकोण बदल देता है और उस की महत्ता, मानवता की पवित्रता एवं समाज की स्वतन्त्रता बढ़ा देता है । वह मानव-कल्याण के लिए लोगों की भावना जागृत कर देता है । इन्हीं बातों से राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव मानव-प्राणी के केवल बाह्य जीवन का बाहरी हेरफेर नहीं कहा जाता है बल्कि उसके साथ ही उसमें आन्तरिक जीवन के मौलिक तथा आमूल परिवर्तन भी निहित होते हैं ।

यह तो सर्वविदित है कि संसार में सृष्टि के साथ ही विनाश भी होता रहता है । विनाश के बिना किसी प्रकार की रचना सम्भव नहीं हो सकती है । विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में ध्वंस के साथ रचना तथा रचना के साथ विध्वंस होता रहता है । जब कोई पदार्थ रचनात्मक अवस्था में रहता है तब भी उसे विभिन्न प्रकार का आघात सहना पड़ता है । जीवन के लिए अथवा अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए बराबर संघर्ष करना पड़ता है । अशुभ का नाश करके अपना जीवन एवं शरीर सुरक्षित रखना जीना कहलाता है । संघर्ष से जीवनी शक्ति का विकास तो होता ही है साथ ही नवीन की रचना भी होती है ।

इसी प्रकार राष्ट्रीय क्रान्ति में भी विध्वंस के साथ तुरन्त उसका रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है । यदि पुरानी प्रथाएँ या संस्थाएँ विप्लवी तथा प्रगतिशील शक्तियों के मार्ग में रोड़ा अटकाने का प्रयत्न नहीं करती हैं या उन्हें विफल बना समाज की उन्नति रोकने की चेष्टा नहीं करती हैं तो उन्हें मिटाने की आवश्यकता कम पड़ती है । परन्तु जब प्राकृतिक अधिकार तथा नियम का उपयोग करने से जनता वंचित की जाती है तब प्रतिक्रियावादी शक्ति या प्रथा का अन्त करना आवश्यक हो जाता है । इसी से विध्वंसात्मक कार्यक्रम राष्ट्रीय विप्लव में भी आवश्यक होता है । किन्तु उससे रचना भी उसके साथ ही होने लगती है ।

वसा विध्वंसात्मक तथा रचनात्मक कार्यक्रम केवल राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों में ही नहीं चलता है बल्कि अन्य बातों में भी उसका प्रारम्भ हो जाता है। सामाजिक नियम, रीति तथा परम्परा सम्बन्धी परिवर्तन भी उसके साथ ही होता है। जब पीछे घसीटने बाली शक्तियों और कुरीतियों का नाश होने लगता है तब उनके स्थान पर क्रान्तिकारी शक्ति पैदा होने लगती है। पहले तो कुरीतियों तथा परम्परा के कारण बहुत सी ऐसी बातें होती रहती हैं जो लोगों को असमर्थता के कारण मान्य होती हैं। अर्थात् परम्परा स्वयं एक प्रकार का सामाजिक नियम बनी रहती है। वह देश के नागरिकों को बाँधे रहती है। जब जनता यह समझ जाती है कि वैसे सामाजिक नियम उनके लाभ के लिए नहीं हैं तब वह उन्हें मानना अस्वीकार करने लगती है। उससे परम्परा रूपी सामाजिक बन्धन टूटने लगते हैं और उनके बदले ऐसे नियम बनने लगते हैं जिनका समर्थन क्रान्तिकारी भावनाएँ करती हैं। परम्परा का अन्त होने पर उसके बदले जो सामाजिक या राजनीतिक नियम बनते हैं उनके लिए यह आवश्यक होता है कि जनता उन्हें स्वीकार करे।

परम्परा बुरी होने पर भी कभी-कभी लोग उसे सहर्ष अपनाये रहते हैं। इससे यह प्रकट होता है कि उसके पीछे उन लोगों का समर्थन जान-बूझकर है। जब वैसी परम्परा के बदले नये क्रान्तिकारी नियम बनते हैं तब उनकी सफलता के लिए यह अनिवार्य होता है कि जनता का बहुमत या कम से कम क्रान्तिकारी दल का समर्थन हो। तभी नई सामाजिक विप्लवी परम्परा का आरम्भ होता है और समाज कुछ दिनों में उसे मानने के लिए तैयार होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि क्रान्ति द्वारा जब परिवर्तन आरम्भ होता है, पुरानी निरर्थक प्रथाओं का अन्त होने लगता है तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न होने लगती हैं तब शीघ्र ही नई क्रान्तिकारी परम्परा, शक्ति तथा नियमों का संगठन प्रारम्भ हो जाता है। वैसी दशा में समाज का संचालन क्रान्तिकारी भाव से होता है। साथ ही जनता का नया अधिकार शक्तिशाली हो जाता है। ऐसा अधिकार असल में उस समय क्रान्तिकारी होता है जब विप्लवी शक्ति केवल किसी

सैनिक संगठन ही पर अवलम्बित नहीं होती है बल्कि उसका आधार नया लाभदायक कार्यक्रम, प्रगतिशील विचारधारा, नया सिद्धान्त, सार्वजनिक हित का लक्ष्य तथा समाज के कल्याण के लिए क्रान्तिकारी भावनाएँ होती हैं।

पुरानी परम्परा के बदले सच्चा क्रान्तिकारी अधिकार दो प्रकार से अपनी सत्ता समाज पर स्थापित करता है। जब रिवाज, रीति या परम्परा इतनी जीर्ण तथा निरर्थक हो जाती है कि लोग स्वयं उसकी उपयोगिता नहीं मानते हैं या उसके अस्तित्व को राष्ट्र के लिए व्यर्थ समझने लगते हैं तब जनता के मन पर प्रभाव रखने वाली परम्परा की शक्ति स्वतः मिटने लगती है। उसके अन्त का दूसरा ढंग यह होता है कि क्रान्तिकारी विचार-धारा, सार्वजनिक कल्याण के लिए नवीन निर्माण का उमंग तथा प्रगतिशील शक्तियाँ स्वयं संगठित होकर परम्परा को समाप्त करने के लिए जनता को जागृत करती हैं और लोगों को उनकी निरर्थकता अच्छी तरह समझाती हैं। जैसा भी हो जब क्रान्ति होती है तब राजनीतिक शासन बिलकुल बदल जाता है। उसके साथ कुरीतियों तथा निरर्थक परम्परा का अन्त भी होता है और उनके बदले सार्वजनिक भलाई के लिए नये राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक नियम बनते हैं उनकी प्राण-शक्ति क्रान्तिवादी सिद्धान्त तथा पूरे समाज का हित होती है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि किसी-किसी देश में विप्लव का रूप राष्ट्रीय तथा प्रजातन्त्रात्मक होना क्यों आवश्यक होता है? क्रान्ति सम्बन्धी इन दो विशेषणों का तात्पर्य क्या होता है? यह तो मालूम ही है कि क्रान्ति कई प्रकार की होती है। राजनीति, आर्थिक तथा सामाजिक विप्लव होते हैं। वे पूर्ण तब होते हैं जब समाज की समस्याएँ हल हो जाती हैं और उसका प्रत्येक अंग नये आधार पर संगठित हो जाता है। अर्थात् सफल क्रान्ति वही होती है जो राष्ट्र या समाज का पुनर्संगठन ऐसे ढंग से करती है कि राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक बुराइयों का अन्त होता है और जनता की भलाई के लिए अधिक से अधिक उपयोगी प्रयास होता है। विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न होते हैं। उनको हल

करने की बात रहती है। इस अभिप्राय से विभिन्न राष्ट्रों में विप्लव के कार्यक्रम में कुछ भिन्नता होती है। इससे उसके रूप में भी अन्तर होना स्वाभाविक हो जाता है।

संसार में आज भी बहुतेरे ऐसे देश हैं जो किसी अंश में परतन्त्र हैं या जिनका शोषण किसी दूसरे राष्ट्र द्वारा होता है। वैसी दशा में सबसे बड़ा प्रश्न यह रहता है कि विदेशी शासन से कैसे पिण्ड छुड़ाया जाय, अपने देशवासियों की भलाई के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त की जाय तथा दूसरे देश के शोषण से बचा जाय। वहाँ साम्राज्यवाद का नाश करना पहली और सबसे विकट समस्या होती है। वैसे पराधीन या अर्धपरतन्त्र राष्ट्रों के अतिरिक्त विश्व में कई कौम ऐसी भी हैं जो नाम के लिए राजनीतिक दृष्टिकोण से स्वाधीन तो समझी जाती हैं, परन्तु आर्थिक बातों पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि वे भी किसी दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति के अधिपत्य में हैं। उन्हें विवश होकर आर्थिक हानि सहनी पड़ती है। उनकी राजनीतिक (तथाकथित) स्वाधीनता होने पर भी वे आर्थिक दृष्टिकोण से स्वतन्त्र नहीं होती हैं। इससे उन्हें अर्धस्वाधीन कहना उपयुक्त होता है। वैसे राष्ट्रों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे विदेशी अधिपत्य समाप्त करें, अपने देशवासियों को प्रजातन्त्रात्मक ढंग से चलावें तथा अपने साधनों की उन्नति राष्ट्रीय हित के लिए करें। आर्थिक साम्राज्यवाद का नाश करना उनके लिए अनिवार्य होता है।

परतन्त्र, अर्धपराधीन या अर्धस्वतन्त्र राष्ट्रों के अतिरिक्त संसार में पूर्ण स्वाधीन देश भी हैं परन्तु उनमें भी कई ऐसे हैं जिनमें स्वाधीनता होने पर भी जनता का बहुमत अपने-अपने राष्ट्र के साधनों का उपयोग उतना नहीं कर पाता है जितना अल्पसंख्यक पूँजीपति, जमींदार, सामन्त अथवा शासक करते हैं। वहाँ ऐसी पूँजीवादी व्यवस्था रहती है कि स्वतन्त्रता होने पर भी अधिकतर लोग सुखी नहीं रहते हैं। इसका मुख्य कारण पूँजीवाद होता है। इस पूँजीवाद का अन्त करना समाज के हित के लिए जरूरी होता है। कहने का मतलब यह है कि केवल स्वाधीनता से ही सब लोगों को सुख नहीं मिल सकता है। स्वतन्त्र समाज में जनता के

लिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे लोगों की आर्थिक हालत अच्छी रहे। ऐसा तभी हो सकता है जब वहाँ राजनीतिक तथा आर्थिक प्रजातन्त्र हो।

जहाँ एकतन्त्र होता है वहाँ उसे मिटाकर जनता का राज्य स्थापित करना समाज की भलाई के लिए अनिवार्य होता है। कहीं-कहीं एकतन्त्र न रहने पर भी जमींदारी, ताल्लुकेदारी आदि प्रथा रूपी पुरानी सामन्तशाही के अवशेष रहते हैं। उन्हें मिटाना तथा जनता के प्रतिनिधियों द्वारा देश का शासन चलाना प्रजातन्त्र का कार्य होता है। कोई देश नाम मात्र के लिए स्वतन्त्र भी होवे परन्तु यदि उसमें एकतन्त्र, ताल्लुकेदारी इत्यादि कुप्रथा या सामन्तशाही के दुर्गुण हों तो उनका नाश करना भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि जिन देशों में विदेशी शासन होता है उन का सर्वप्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कर्तव्य यह होता है कि राष्ट्र को स्वतन्त्र किया जाय और प्रजातन्त्र की स्थापना हो। उसके लिए जो क्रान्ति आवश्यक होती है उसे सबसे पहले राष्ट्रीय तथा प्रजातन्त्रात्मक कार्यक्रम पूरा करना अनिवार्य होता है। अपने देश के उद्धार के लिए उस विप्लव द्वारा पराधीनता का विनाश पहला लक्ष्य होता है। इसी तरह जहाँ राजनीतिक स्वाधीनता होने पर भी आर्थिक परतन्त्रता होती है वहाँ भी विदेशी साम्राज्यवाद का नाश करके अपने राष्ट्र को आर्थिक दृष्टिकोण से बिलकुल स्वतन्त्र बनाना प्रथम कर्तव्य होता है। अर्थात् समाज की व्यवस्था राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों में भी प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर संगठित होनी चाहिए और विदेश की पूँजी द्वारा जो शोषण होता हो उसको मिटाना चाहिए। सारांश यह है कि पराधीन या अर्धपराधीन देश में अपने राष्ट्र के हित के लिए उसे राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों में पूर्ण स्वाधीन तथा स्वावलम्बी बनाना उस के निवासियों का प्रथम सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य होता है।

इसी से उस अभिप्राय से होने वाली क्रान्ति को राष्ट्रीय तथा प्रजातन्त्रात्मक कहा जाता है। राष्ट्रीय का मतलब यह है कि अपने राष्ट्र

से सम्बन्ध रखने वाली जितनी समस्याएँ हों उन्हें सबसे पहले हल किया जाय और विदेशी सत्ता का आधिपत्य न रहने दिया जाय। प्रजातन्त्रात्मक का अर्थ यह है कि राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ ही समाज का संगठन प्रजातन्त्र या जनतन्त्र के आधार पर हो। इसी से परतन्त्र तथा अर्धस्वतन्त्र राष्ट्रों में इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जो क्रान्ति होती है उसे राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव कहते हैं।

प्रजातन्त्रात्मक क्यों ?

यहाँ एक सवाल उठता है। तर्क के लिए कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि जब विदेशी शासन तथा साम्राज्यवाद को नष्ट किया जा सकता है तब उसी के साथ ही देश की छोटी मोटी या बड़ी अर्थात् सब सम्पति का राष्ट्रीयकरण क्यों न किया जाय ? क्यों प्रजातन्त्र कायम किया जाय और व्यक्तिगत सम्पत्ति रहने दी जाय ? क्यों न राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के अवसर पर ही व्यक्तिगत सम्पत्ति बिलकुल समाप्त कर दी जाय और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो जाय।

ऐसे प्रश्न तर्क के लिए उठाये जा सकते हैं। किन्तु उन पर गम्भीरता से विचार करने पर यह बात तुरन्त साफ-साफ मालूम हो सकती है कि उन सवालों को हल करना असम्भव सा रहता है। यह बात तो सब लोग जानते हैं कि जब कोई विदेशी राष्ट्र किसी दूसरे देश पर राज्य करता है तब वह कूटनीति के साथ ही अपनी सामरिक शक्ति अर्थात् फौज, पुलिस इत्यादि के सहारे शासित जनता पर शासन करता है। जब पराधीन राष्ट्र स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करता है तब विदेशी शक्ति अपनी सेना, पुलिस तथा कूटनीति से जनता को दबाती है। मतलब यह है कि अपने अस्त्र-शस्त्र के बल पर वह परतन्त्र देश को स्वाधीन नहीं होने देती है।

ऐसी स्थिति में पराधीन जनता के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह रहता है कि कैसे अपने राष्ट्र की सारी शक्ति इतनी संगठित कर ली जाय कि शासकों के संगठन को निर्बल कर उन्हें पराजित कर दिया जाय।

इस अभिप्राय से राष्ट्र के प्रत्येक अंग को इस प्रकार संगठित करने की आवश्यकता रहती है कि वह राष्ट्रीय क्रान्ति में अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। इसके लिए यह बात आवश्यक होती है कि किसान, मजदूर, मध्यम श्रेणी इत्यादि में जागृति पैदा की जाय और उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित करने के लिए ऐसा लाभदायक कार्यक्रम रखा जाय जिसमें उन्हें विशेष आकर्षण हो। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह समझ लेना चाहिए कि तात्कालिक कष्ट या कठिनाई मिटाकर विशेष लाभ शीघ्र होने की आशा साधारण जनता को राष्ट्रीय संघर्ष में सक्रिय भाग लेने के लिए अधिक प्रेरित करती है। यदि साधारण जनता के सामने भविष्य में बहुत उपयोगी होने वाले कार्यक्रम को रखा जाय किन्तु उसकी पूर्ति में बहुत दिन लगने की आशंका हो तो वह उससे प्रायः उदासीन हो सकती है। यदि जल्दी लाभ पहुँचाने वाला कार्यक्रम उसके समझ में आ जाता है तो वह उसे पूरा करने के लिए शीघ्र ही तैयार हो जाती है। इससे राष्ट्रीय शक्तियों को संगठित कर राष्ट्रीय आन्दोलन में अधिक से अधिक नागरिकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए जनता के सामने तात्कालिक लाभप्रद कार्यक्रम रखना अच्छा होता है।

अब यह देखना चाहिए कि परतन्त्र देशों में प्रायः किसकी संख्या सबसे अधिक होती है। शासित देश में जो शक्ति राज्य करती है वह वहाँ व्यवसाय, उद्योग-धन्धा आदि नहीं बढ़ाना चाहती है। बीसवीं शताब्दी में भी पराधीन राष्ट्र को खेतिहर बनाये रखने के अनेकों प्रमाण मिलते हैं। इससे वहाँ किसानों की संख्या सबसे बड़ी होती है। उनके बाद मध्यम श्रेणी तथा श्रमिक वर्ग की महत्ता होती है। यदि किसान को पूरा खेत मिल जाय तो वह अपने परिवार तथा जानवरों के साथ ग्रामीण जीवन बिताने तथा खेत में कृषि करने से बहुधा संतुष्ट रहता है। अगर उसे खेती द्वारा जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त आय हो जाता है तो वह अपने गाँव से ऊबता नहीं है, बल्कि अपना जीवन प्रायः वहाँ शान्तिपूर्वक बिताना चाहता है। यदि उससे यह कहा जाता है कि अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति छोड़ कर सामूहिक उत्पादन बढ़ाना चाहिए तथा सामूहिक जीवन अपनाना

चाहिए तो वह वैसे कार्यक्रम से तो उदासीन हो ही जाता है। साथ ही वह राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम से भी विशेष आकर्षित नहीं होता है । इससे साम्राज्यवाद को मिटाने और स्वाधीनता प्राप्त करने के अभिप्राय से राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के तात्कालिक् राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम में अधिक से अधिक किसानों को लगाने के लिए उनके सामने ऐसा प्रजातन्त्रात्मक कार्यक्रम रखना चाहिए जिसमें उनका मन खूब लगता हो ।

मध्यवर्ग तथा किसानों ही की ऐसी वात नहीं होती है । जिनमें राजनीतिक चेतना जितनी ही कम होती है प्रायः उनमें दूर की बातों या कार्यक्रम के प्रति उतना ही कम आकर्षण होता है । तात्कालिक कार्य जिनसे शीघ्र ही लाभ होने की आशा रहती है उन्हें आर्कषित करता है। इससे जनता जिसमें किसान, मध्य श्रेणी तथा मजदूर का बहुमत होता है तात्कालिक कार्यक्रम पूरा करने के लिए अधिक उत्साहित होती है।

ऐसी दशा में समाजवाद की स्थापना की बात कुछ समय के लिए छोड़ तात्कालिक लक्ष्य, स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा जनतन्त्र की स्थापना, के लिए राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम को ही पूरा करना अन्तिम ध्येय के विचार से भी राष्ट्र तथा जनता के लिए हितकर होता है।

भारत की समस्या के सम्बन्ध में राष्ट्रीय विप्लव पर इस दृष्टिकोण से ध्यान देने से उसका औचित्य बिलकुल साफ-साफ मालूम होता है । हिन्दुस्तान लगभग दो सौ वर्ष अंग्रेजों के शासन में था । विदेशियों ने यहाँ के उद्योग धन्धे को नष्ट कर जमींदारी प्रथा स्थापित किया। धीरे-धीरे भारतवर्ष पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का चंगुल अच्छी तरह जम गया। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति होने पर भी यहाँ उससे बहुत कम लाभ हुआ । अर्थात् भारत कृषि प्रधान देश ही रह गया।

यहाँ लगभग सत्तर प्रतिशत किसान और पच्चासी प्रतिशत लोग ग्रामीण रहे हैं । द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध के समय मजदूर करीब दो प्रतिशत थे। मध्यम श्रेणी के लोग मजदूरों से कुछ अधिक थे। जमींदारी प्रथा का अन्त होने पर भी कृषक की कई समस्यायें रह गईं।

अन्य कई प्रकार की कुप्रथाएँ तथा कुरीतियाँ अब भी हैं। भारतीय समाज टुकड़े-टुकड़े में बटा है। मिल-मालिकों और मजदूरों की समस्यायें सबको मालूम हैं। पराधीनता में तो केवल अंग्रेजी शासन ही भारत का गला नहीं घोंट रहा था बल्कि जमींदारी, ताल्लुकेदारी, सूदखोरी, छुआछूत, जाति-पाँति साम्प्रदायिकता इत्यादि विकट समस्याएँ भी समाज को निर्बल कर रही थीं।

फासिस्टवाद के जन्म, उत्थान तथा पतन का दृश्य तो वर्तमान मानव-समाज के सामने है। योरूप में नाज़ी पार्टी तथा फासिस्ट दल से जो भयंकर संकट उत्पन्न हुआ था वह द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के साथ ही नाज़ीवाद के विनाश से दूर हो गया, किन्तु उस राजनीतिक विचारधारा का अन्त नहीं हुआ। भारत में भी नाज़ीवादी मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। खाकसार, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आदि-ऐसे संगठन इस बात के प्रमाण हैं। आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ महा-पुरुष—मानवता के कल्याण-हेतु प्राण देने वाले महान् विश्व-नेता महात्मा गान्धी का बलिदान भारतीय समाज को फासिस्टवाद से सचेत होने के लिए ऐतिहासिक घटना के रूप में हो चुका है।

ऐसी दशा में भारतवर्ष में हम तीन प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ पाते हैं, जिनके द्वारा क्रान्ति को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास होता है। अब भी दुनिया में साम्राज्यवाद है। उसका राजनीतिक प्रभुत्व हिन्द से उठ जाने पर भी संसार में उसके आर्थिक शोषण से मानव-समाज सुरक्षित नहीं है। अर्थात् भारतीय क्रान्ति को ब्रिटिश तथा अमेरिकन साम्राज्य-वाद के आर्थिक आक्रमण का सामना करना पड़ता है। उसके साथ भारत में साम्प्रदायिक संस्थाओं के रूप में फासिस्टवाद मनोवृत्ति से भारतीय विप्लव को भारी भय रहता है। तीसरी क्रान्ति-विरोधी शक्ति सामन्त-शाही के भग्नावशेष के समर्थकों के रूप में है। वह क्षीण है किन्तु निर्मूल नहीं हुई है।

नाज़ीवादी मनोवृत्ति वाली साम्प्रदायिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता द्वारा चलाने वाले पूँजीपति, बड़े-बड़े रोजगारी, पुराने ताल्लुकेदार,

जागीरदार एवं। उनके वंशज इत्यादि हैं साम्राज्यवाद को मिटाने के लिए भारतीय राष्ट्र में जो लोग सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते थे या अब भी लेते हैं उनमें संख्या के विचार से सबसे अधिक किसान हैं। उनके बाद मध्यम श्रेणी तथा श्रमिक वर्ग हैं। भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष में मजदूरों की देन बहुत नहीं है। साम्राज्यवाद के प्रतिकूल लड़ने वाले भारतीयों में राजनीतिक नेतृत्व के दृष्टिकोण से मध्यम श्रेणी का विशेष महत्त्व है। विद्यार्थियों में भारतीय राष्ट्र के प्रत्येक अंग के युवक सम्मिलित हैं। किन्तु उनमें ऐसे नौजवान जो स्वतन्त्रता-संघर्ष में भाग लेते थे अधिकतर मध्यम श्रेणी के छात्र थे।

इन्हीं साम्राज्यवाद-विरोधिनी शक्तियों के सम्मिलित प्रयास से भारत में साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद का अन्त हुआ तथा जनतन्त्र की स्थापना हुई। प्रतिक्रियावादी शक्तियों के बल का ज्ञान लोगों को है। संसार में साम्राज्यवाद बहुत ही दृढ़ क्रान्ति विरोधिनी शक्ति है। उसका नाश करना है। ऐसी हालत में उसकी शक्ति और अपनी क्रान्तिकारी शक्ति का ठीक अन्दाज लगाना राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

इसके लिए यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिए कि भारतीय राष्ट्र अथवा ऐसी परिस्थिति वाले अन्य देशों की जनता के किस श्रेणी से क्रान्ति की सफलता के लिए कितनी आशा की जाती है। राष्ट्रीय विप्लव को सफल बनाने के लिए किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों का सक्रिय सहयोग अधिक से अधिक रहना चाहिए। इस अभिप्राय से ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें वे लोग उत्साह से लगे रहें। परतन्त्र, अर्धस्वतन्त्र तथा कृषिप्रधान देशों के मजदूरों में भी तो अधिकतर वैसे ही लोग रहते हैं जो ग्रामीण होते हैं। वे असल में किसान ही होते हैं। किसानों का पूर्ण विश्वास क्रान्ति में तभी हो सकता है जब उन्हें शीघ्र ही लाभ हो अर्थात् जब उन्हें यह विश्वास रहे कि वे ही अपने खेत और उसकी पैदावार के स्थाई मालिक हैं।

यह तभी हो सकता है जब जमींदारी, ताल्लुकेदारी इत्यादि समाप्त होने पर खेत व पैदावार का अधिकार उन्हीं को मिले। यदि इसके

बदले उनके खेत के राष्ट्रीयकरण का नारा लगाया जाय और यह कहा जाय कि किसान स्वराज्य सरकार के मजदूर होंगे तो किसानों तथा मध्यम श्रेणी वालों को भी राष्ट्रीय क्रान्ति से उदासीनता हो जायगी। सब लोग यह जानते हैं कि सैनिक प्रायः किसान परिवार के और वायुयानचालक तथा सेना के पदाधिकारी अधिकतर मध्यम श्रेणी के लोग होते हैं। ऐसी दशा में अपनी सीमित शक्तियों, साधनों, कठिनाइयों तथा प्रतिक्रियावादी संस्थाओं पर पूरा ध्यान देने से यह मानना पड़ता है कि अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भी तात्कालिक समस्याओं को पहले सुलझाना चाहिए और क्रान्तिसमर्थक शक्तियों को पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, फासिस्टवादी संस्थाओं और उन्हें सहायता देने वाली प्रथाओं के प्रतिकूल लगाना चाहिए। इससे उन राष्ट्रों में जिनमें पराधीनता हो अथवा जिनकी स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद संगठन मजबूत न हो पाया हो, जनतन्त्र की स्थापना तथा उसको सुदृढ़ बनाने से विशेष लाभ होने की बहुत आशा रहती है।

इस मतलब से भारतीय विप्लव में सर्वप्रथम राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक कार्यक्रम पूरा करना चाहिए और राष्ट्र में आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों प्रकार का प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब साम्राज्यवाद और उसे सहायता देने वाली शक्तियाँ नष्ट की जा सकती हैं तब उसी अवसर पर सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति का राष्ट्रीकरण क्यों न कर दिया जाय। इस शंका का समाधान तुरन्त हो जावेगा। यह समझ लेना चाहिये कि क्रान्ति केवल विद्रोह ही से सफल नहीं होती है बल्कि राजनीतिक सत्ता विप्लवी शक्तियों के हाथों में आ जाने पर उसे सुरक्षित रखने तथा सफलतापूर्वक प्रयोग जनहित के लिए करने से सफलता होती है।

फ्रांसीसी क्रान्ति द्वारा राजनीतिक अधिकार क्रान्तिकारियों के हाथ में आते ही विप्लवी आन्दोलन को प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने ऐसा धक्का दिया कि प्रजातन्त्र के बदले अधिनायकतंत्र स्थापित हो गया। स्पेन में वर्तमान शताब्दी में भी ऐसा हुआ। चीन में तो १९११ में क्रान्ति हुई थी किन्तु वह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अपना प्रजातन्त्रात्मक कार्यक्रम पूरा नहीं

कर सकी थी। मतलब यह है कि क्रान्ति के समय जो भयानक परिस्थिति होती है उसमें राजनीतिक सत्ता पर अधिकार जमाने के बाद भी उसे क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथों में सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन होता है। इससे क्रान्ति जब तक पूर्णतः सफल न हो जाय और क्रान्तिकारी सरकार जब तक खूब संगठित न हो जाय तब तक कोई ऐसा नारा नहीं लगाना चाहिए और ऐसा कार्य-क्रम नहीं आरम्भ करना चाहिए जिससे प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति को चलाने या सफल बनाने वाले लोग उससे उदासीन या प्रतिकूल हो जायँ।

इस बात पर ध्यान देने से यह कहना सर्वथा उचित होगा कि किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी को जिनकी संख्या अधिक होती है, प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति में साथ रख उसे सफल बनाना चाहिए। जब तक विप्लवी राष्ट्रीय सरकार खूब मजबूत तथा संगठित न हो जाय और जनतन्त्र सुरक्षित न हो जाय तब तक कोई ऐसा काम नहीं शुरू करना चाहिए जिससे ये लोग क्रान्ति के प्रति उदासीन हो जायँ। यदि यह कहा जाय कि वे अपनी पैदावार, खेत तथा अन्य छोटी-मोटी सम्पत्ति के मालिक नहीं रहने पावेंगे तो क्रान्ति के प्रति अवश्य ही उनकी सद्‌भावना कम हो जावेगी। सैनिक भी असन्तुष्ट हो सकते हैं। इससे उनका खेत तथा सम्पत्ति लेने की बात प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रीय क्रान्ति की सफलता के लिए कदापि नहीं करनी चाहिए। यदि कोई गलती से प्रथम क्रांति के समय ही इसके प्रतिकूल प्रचार करता हो तो वह राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा जनतन्त्र के लिए होने वाले विप्लव को असफल बनाने का प्रयत्न करता है। अतः राष्ट्रीय क्रांति के समय समाजवादी व्यवस्था लक्ष्य रखने पर भी प्रजातन्त्रात्मक कार्य-क्रम पर ही जोर देकर राष्ट्रीय विप्लवी सरकार को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित बनाना राष्ट्र के लिए लाभदायक होता है।

राष्ट्रीय विप्लव तथा विधान परिषद्

राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा राजनीतिक सत्ता राष्ट्र के हाथ में आने पर यह प्रश्न उठता है कि शासन-प्रणाली किस प्रकार की हो। शासन के लिये विधान की आवश्यकता सदा रहती है। वह विधान कैसा हो ?

उसे कौन बनाये ? उसका स्थाई संचालक कौन हो ? उसे किस तरह परिवर्तित किया जाय ? इत्यादि अनेकों सवाल क्रान्ति के पहले और विप्लव होने पर भी उठते हैं।

राष्ट्रीय क्रान्ति तथा विधान-परिषद् में कैसा सम्बन्ध होता है इस बात को स्पष्ट करना अच्छा होगा । यों तो विदेशी शासन रहने पर भी किसी-किसी देश में कभी-कभी शासक ही विधान बनाने वाली संस्था का प्रश्न छेड़ते हैं और परतन्त्र देश के नेता भी उसके लिए प्रयत्नशील होते हैं। किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम राष्ट्रों के इतिहास में मिलते हैं। फिर भी जब विदेशी चतुर शासक यह समझ जाते हैं कि वे शासित देश को बहुत दिनों तक पराधीन नहीं रख सकते हैं—तब वे अपनी प्रजा की सहानुभूति किसी अंश में अपने प्रति बनाये रखने के अभिप्राय से ऐसी बातें आरम्भ करते हैं।

किसी-किसी देश में इस अवस्था के पहले ही विदेशी शासक ऐसी साम्प्रदायिक समस्याएँ तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ खड़ा करा देते हैं कि जिनके कारण एक विधान-परिषद् में कोई एक विधान स्वीकार कराना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो जाता है। भारत में हिन्द तथा पाकिस्तान सरकार की स्थापना संसार के इतिहास में इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह कठिन हो या न हो। किन्तु इस बात की बहुत संभावना रहती है कि विदेशी शासन की छत्रछाया में संगठित हुआ विधान-परिषद तथा उसके द्वारा बना हुआ विधान साम्राज्यवाद से किसी न किसी अंश में प्रभावित हो । इसके अतिरिक्त सुधारवादी तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों को राष्ट्रीय उत्थान के कार्यक्रम में बाधा डालने का पूरा अवसर मिलता है। जैसी तेजी से राष्ट्र की प्रगति होनी चाहिए अथवा स्वाधीनता-संघर्ष चलना चाहिए वैसे वेग से वह नहीं चल सकता है । इन कारणों से क्रान्ति के पहले बनने वाले विधान-परिषद् और विधान में सुधारवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव रहता है। उसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्र की प्रगति रुकती है और स्वतन्त्रता आन्दोलन में फूट पड़ती है।

कोई विधान बन जाने पर भी साम्राज्यवादी शक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे शासित देश को स्वतः स्वतन्त्र कर देंगी। इसी से जन-आन्दोलन तथा अवैधानिक विप्लवी संघर्ष भी चलाना पड़ता है। उन के सफल होने पर उन आन्दोलनों को चलाने वाली शक्ति तथा प्रगतिशील दल अवश्य ही ऐसा विधान बनाने का कोशिश करते हैं जो क्रान्तिकारी कार्यक्रम को जल्दी पूरा करे और शोषण करने वाली प्रथाओं को समाप्त करे। विप्लव होने पर पहले से बनाये गये विधान को ऐसी शक्ति तथा पार्टी जो विप्लव चलाने में सक्रिय होती हैं प्रायः नहीं मानती हैं। वे अपने विचार के अनुसार विधान बनाने का पूरा प्रयत्न करती हैं। ऐसी दशा में पहले से बनाया गया विधान राष्ट्रीय क्रान्ति और विप्लवी पार्टियों के लिए बेकार होता है।

ऐसी परिस्थिति पर ध्यान देने से यह बात माननी पड़ती है कि असल में विधान-परिषद् उसी हालत में जनता के लिए सफल हो सकता है जब प्रगतिशील एवं विप्लवी शक्तियाँ इतनी दृढ़ हो गई हों कि वे साम्राज्यवाद को अपने देश में नष्ट कर सकें। अर्थात् जब विदेशी शासन विप्लव होने पर शक्तिहीन होता हो और क्रान्तिकारी सरकार स्थापित होती हो तब जो विधान बनता है वह देश के लिए पूरा लाभ-दायक होता है। जब राजनीतिक सत्ता विदेशी शासकों के हाथ से छिन जाती है और जब राष्ट्रीय आन्दोलन को चलाने वाली शक्तियाँ या दल उस राजसत्ता पर अधिकार जमा लेते हैं तब उनके प्रयत्न से जो विधान बनता है वह राष्ट्र की उन्नति क्रान्तिकारी ढंग से करने में सफल होता है। उसी से जनता की असली भलाई होती है।

यहाँ एक विवादग्रस्त बात की चर्चा जरूरी है। इससे राष्ट्रीय क्रान्ति और विधान-परिषद् का सम्बन्ध रहता है। राजनीतिक सत्ता पर अधिकार होने का सवाल भी होता है। जो लोग यह सोचते हैं कि विप्लव के पहले विधान-परिषद् द्वारा विधान बनाकर उसके अनुसार शासन चलाने में सफलता मिल सकती है वे लोग स्वभावतः यह भी मानते हैं कि विप्लव के बिना विदेशी शासक राजनीतिक सत्ता राष्ट्रीय शक्तियों के हाथों में दे

सकते हैं। इसके विरोध में जो लोग विप्लव में विश्वास करते हैं वे लोग यह कहते हैं कि विदेशी शासक स्वयं राजनीतिक सत्ता नहीं छोड़ते हैं बल्कि क्रान्तिकारी शक्तियाँ उन्हें वैसा करने के लिए विवश करती हैं। राजनीतिक सत्ता का हस्तान्तर हो सकता है अथवा उस सत्ता पर अधिकार जमाना अनिवार्य होता है ? यह एक आवश्यक प्रश्न होता है । यदि भारतवर्ष का उदाहरण सामने रखा जाय और शान्तिमय उपायों से राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने की बात कही जाय तब भी काँग्रेस-आन्दोलनों विशेषत: १९४२ के संघर्ष तथा उसके पहले के क्रान्तिकारियों के विप्लवी आन्दोलन को भूला नहीं जा सकता है ।

संसार के इतिहास में केवल भारत ऐसा देश है जहाँ का राष्ट्रीय दल अपनी शान्तिमय नीति से विदेशी शासन से राजसत्ता लेने तथा परतन्त्रता मिटाने में सफल हुआ है । किन्तु विश्व में ऐसा यही एक उदाहरण है ।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक कार्य-क्रम

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के मौलिक सिद्धान्त होते हैं । उसका व्यापक कार्यक्रम होता है । तीन मुख्य बातों के आधार पर वह अपना कार्य विशेष पूरा करने में सफल हो सकती है । उनमें पहला सिद्धान्त राष्ट्रीयता है। दूसरा जनतन्त्र हैं । तीसरा सब लोगों के जीवन-निर्वाह के लिए उचित साधन का अच्छा प्रबन्ध करने की नीति है ।

राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को अपना कर राष्ट्रीय विप्लव राष्ट्र को हर प्रकार से स्वतन्त्र तथा स्वावलम्बी बनाने में सफल हो सकता है । इसका अर्थ यह है कि किसी देश की भौगोलिक सीमा के अन्दर निवास करने वाली जनता, उसके प्राकृतिक साधन, उनके ऊपर का आकाश तथा उसके समुद्र तट के पास के सागर पर उसी समाज या राष्ट्र का बिलकुल स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता हो । उस राजसत्ता पर किसी अन्य देश का किसी प्रकार का दबाव--आर्थिक या राजनीतिक--न हो । इसके साथ ही जो नागरिक विदेश में हों उन पर उनके देश की नागरिकता का पूरा अधिकार हो ।

उपरोक्त बात उसी हालत में साफ-साफ समझ में आ सकती है

जब राष्ट्रीय राजसत्ता का मतलब पूर्णतः स्पष्ट हो । इसके अर्थ में दो-तीन बातें निहित हैं । पहला अर्थ जो बतलाया गया है यही है कि किसी अन्य राष्ट्र या सरकार का कोई आर्थिक या राजनीतिक प्रभाव किसी देश पर न हो । दूसरी बात यह है कि दूसरे देश के साथ कोई ऐसी राजनीतिक या व्यापारिक सन्धि न हो जिससे बराबरी की सुविधा न मिलती हो अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अन्य राष्ट्रों के साथ बिलकुल समानता होनी चाहिए । तीसरी बात यह है कि राष्ट्रीय राजसत्ता का मूल आधार अपना ही राष्ट्र या जनता हो—अर्थात् जनता ही राजसत्ता का श्रोत हो । सारे देश पर एक प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक नियम लागू हों ।

राष्ट्रीय क्रान्ति का दूसरा सिद्धान्त जनतन्त्र होता है । इसका मतलब यह है कि किसी राष्ट्र का संचालन, प्रबन्ध, नेतृत्व तथा शासन स्वयं जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए । अर्थात् जनता का शासन जनता के द्वारा तथा जनता की भलाई के लिए हो । जनता द्वारा शासन चलाने का अर्थ यह है कि अपना प्रबन्ध करने और राज्य का कार्य पूरा करने के लिए देशवासी अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करें और वे शासन चलावें । साथ ही जनता ही सर्वश्रेष्ठ अधिकारी रहे । राष्ट्रीय समाज ही अपने देश का मालिक हो ।

राष्ट्रीय क्रान्ति का तीसरा सिद्धान्त आर्थिक होता है । जनता के सुख के लिए जीवनोपार्जन के अच्छे-अच्छे साधन होने चाहिये । इसका तात्पर्य यह है कि सब लोगों के जीवन-निर्वाह के लिए कोई न कोई उचित उपाय हो । कृषि, उद्योग-धन्धा, व्यापार, नौकरी या अन्य उपाय से सब लोगों के जीवन सुख से बिताने के लिए प्रबन्ध हो । खाने पीने के साधन भी ऐसे होने चाहियें कि उनसे लोगों को अच्छा भोजन, दवा, वस्त्र आदि आवश्यकीय वस्तु भरपूर और अच्छे मिलें ।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के इन तीन मौलिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त उसके दो अन्य व्यापक कार्यक्रम होते हैं । उसके दो पहलू होते हैं । पहला विध्वंसात्मक तथा दूसरा रचनात्मक । इसका पहला कार्य

विशेष इस अभिप्राय से होता है कि बुराइयों का नाश हो जाय। परतन्त्रता में प्रायः तीन मुख्य शक्तियाँ या कुप्रथाएँ होती हैं जो अन्य कुरीतियों को सहारा देती हैं। साम्राज्यवाद के कारण सारे राष्ट्र का शोषण होता है। विदेशी शासन के अन्तर्गत कहीं-कहीं ऐसी देशी रियासतें होतीं हैं जिनमें उनके देशी नरेशों के विशेषाधिकार रहते हैं। उनसे वहाँ की प्रजा का बहुत शोषण होता है। शासन में प्रजा का हाथ नहीं रहता है। वैसी देशी रियासतों के अतिरिक्त जागीरदारी, जमींदारी तथा ताल्लुकेदारी प्रथा भी रहती है। उससे जनता का कष्ट बढ़ता है। इन तीनों कुप्रथाओं अर्थात् साम्राज्यवाद का आर्थिक शोषण, देशी रियासतों तथा जमींदारी वा ताल्लुकेदारी प्रथा को मिटाने के साथ ही अन्य हानिकर रूढ़ियों को नष्ट करना राष्ट्रीय क्रान्ति का विध्वंसात्मक कार्यक्रम होता है। उस से विदेशी प्रभाव को सहायता देने वाली प्रथायें तथा अन्य प्रतिक्रिया-वादी शक्तियाँ नष्ट होती हैं।

क्रान्ति के विध्वंसात्मक कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संघर्ष अनिवार्य होता है। जिन लोगों का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता (राजनीतिक तथा आर्थिक) और सारे देश में जनतन्त्र रहता है उन लोगों को बड़ा भीषण संघर्ष चलाना पड़ता है।

जितना ही राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र एवं क्रान्तिकारी होता है उतना ही विदेशी शासन अपने सहायकों (प्रतिक्रियावादी शक्तियों) से मेल-जोल बढ़ाने का प्रयत्न करता है। प्रायः दोनों अपनी अपनी रक्षा के लिए किसी न किसी रूप में पारस्परिक सहयोग बढ़ाना चाहते हैं।

अपने ही देश की बात ली जाय। जब अंग्रेजी शासकों ने देखा कि वे अंग्रेजी राज्य भारत में नहीं चला सकते हैं तब उन्होंने देशी नरेशों के विषय में यह घोषित किया कि वे स्वतन्त्र हैं और जैसा चाहें वैसा अपने लिए निर्णय करें। यह बात ब्रिटिश कूटनीति थी। उसका मतलब यह था कि हिन्दुस्तान के लगभग एक-तिहाई भाग में जहाँ देशी रियासतें थीं और जहाँ की जनता को राजनीतिक अधिकार नहीं मिले थे वहाँ किसी प्रकार साम्राज्यवाद अपना आर्थिक प्रभाव रख सकें। इसी से राष्ट्रीय

क्रान्ति के कार्यक्रम में यह बात निहित है कि भारत के हर भाग में जनता को वैसे ही राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त हों जैसे देश के दूसरे भागों के लोगों को मिले हों । इस सम्बन्ध में काँग्रेस के नेतृत्व में काँग्रेस सरकार ने इतनी बड़ी सफलता प्राप्त किया कि जितनी विश्व में इतने कम समय में किसी राजनीतिक दल ने नहीं किया। जमींदारी प्रथा निर्मूल सी हो ही गई । ये सब भारतीय राष्ट्रीय विप्लव के विध्वंसात्मक कार्य हैं।

राष्ट्रीय क्रान्ति के विध्वंसात्मक कार्यक्रम से उसका रचनात्मक कार्यक्रम आरम्भ होता है । साम्राज्यवाद तथा उसे सहायता देने वाली शक्तियों के विनाश की प्रारम्भिक अवस्था में ही विप्लव का रचनात्मक कार्य प्रारम्भ होता है । राजनीतिक सत्ता पर अधिकार होने के साथ ही आर्थिक तथा सामाजिक मामलों में भी रचना शुरू होती है । उसके रचनात्मक कार्य में निम्नलिखित बातें सम्मिलित होती हैं।

(१) सबसे पहले वही काम पूरा होने की सम्भावना अधिक होती है जो सबसे आसान होता है । पूर्ण स्वाधीनता के बाद जमींदारी, जागीरदारी, और ताल्लुकेदारी प्रथा का नाश करना सबसे सरल होता है। जिन कृषकों के परिवार के लिए खेत नहीं हों उन्हें या तो खेत मिलने चाहिये या उद्योग-धन्धा, व्यापार अथवा नौकरियों में काम देकर उनकी जीविका के लिए प्रबन्ध होना चाहिये ।

(२) क्रान्ति द्वारा साम्राज्यवाद का अन्त होने पर क्रान्तिकारी शक्तियों द्वारा ही नई सरकार का संचालन होना चाहिए । राष्ट्रीय विप्लव में जब रचनात्मक कार्य आरम्भ होता है तब विदेशी सरकार के बदले नई राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सरकार स्थापित होती है । उसको उलटने के लिए विदेशी सरकार के एजेन्ट तथा प्रतिक्रियावदी शक्तियाँ पूरा प्रयत्न करती हैं । विप्लव के परिवर्तन काल में राजसत्ता राष्ट्रीय सरकार के हाथों में आने पर जनता की लोकप्रिय सरकार को भी बड़े भारी संकट का सामना करना पड़ता है। वैसी दशा में नई गवर्नमैण्ट की क्रान्तिकारी योजना सफल बनाने के लिए यह जरूरी होता है कि उस सरकार के संचालक विप्लवी

शक्तियाँ हों और सुधारवादी या प्रतिक्रियावादी शक्तियों का प्रभाव उस पर न हो। उदाहरण के लिए अपने ही देश को लिया जाय। भारत में काँग्रेस के नेतृत्व में कांग्रेसी सरकार ने देश में क्रान्तिकारी कार्यक्रम चलाया। उसे असफल बनाने के लिए प्रतिक्रियावादी संस्थायें पूरा प्रयत्न करती रहीं। इससे सार्वजनिक हित सम्बन्धी कार्यों की प्रगति में कई प्रकार की बाधायें उत्पन्न हुईं।

(३) खेती, व्यापार, उद्योग-धन्धा इत्यादि राष्ट्रीय उन्नति सम्बन्धी कामों के लिए अन्न या माल पैदा करने वालों तथा माल खपाने वाले लोगों की सहयोग-समितियाँ संगठित होनी चाहिएँ। यह आवश्यक नहीं है कि इसका रूप वैसा ही हो जैसा विश्व के किसी अन्य देश में इस समय है। वे इस अभिप्राय से संगठित होनी चाहिए कि जनता के खाने-पीने, पहनने की चीजों या अन्य आवश्यकीय वस्तुओं की पैदावार अधिक से अधिक हो। साथ ही उन से जो लाभ हो वह ऐसे कार्यों में लगाया जाय जिन से जनसाधारण की भलाई होती हो। भारत में काँग्रेसी सरकार ने इस योजना को कार्यान्वित करने का विशेष प्रयत्न स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद शीघ्र ही प्रारम्भ किया।

(४) विप्लव में जिस ससय परिवर्तन-काल होता है उस समय कई प्रकार के नये नये झंझट तथा कठिनाइयां पैदा होती रहती हैं। वैसे अवसर पर बेकारी की समस्या हल करनी अत्यन्त कठिन होती है। इससे राष्ट्रीय क्रान्ति में जो लोग बेकार होते हैं उन्हें काम दिलाने का प्रयत्न करने पर भी राष्ट्रीय सरकार सब लोगों के लिए जीविका नहीं दे सकती है। ऐसी अवस्था में गरीबी तथा बेकारी दूर करने का उपाय यही रहता है कि उत्पादन जहाँ तक हो सके वहाँ तक बढ़ाया जाय। पैदावार बढ़ने से जीवन के लिए आवश्यकीय वस्तुओं की महँगाई दूर होती है। इससे जीवन-निर्वाह सरल हो जाता है।

(५) ऐसी विशेष परिस्थिति में जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक मजदूरों की उचित माँगें पूरी होनी चाहिएँ। उस समय काम करने के घण्टे कम किये जाने की बात भी पैदा हो सकती है। किन्तु उत्पादन

बढ़ाने के अभिप्राय से उन्हें राष्ट्रीय हित पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। मजदूरों के जीवन बीमा, यदि वेतन कम हो तो उसे बढ़ाने, उनके लिए दवा इत्यादि के प्रबन्ध संबन्धी बातें राष्ट्रीय क्रान्ति के रचनात्मक कार्यक्रम में निहित होती हैं। धर्म, जाति एवं रंग का भेदभाव मिटाकर जनतन्त्र में श्रमिकों का उचित स्थान राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से होना चाहिए। साथ ही उनका उचित प्रतिनिधित्व क्रान्तिकारी सरकार में होना चाहिए। उनको विभिन्न प्रकार की विशेष शिक्षा तथा ट्रेनिंग देकर शिक्षित बनाना चाहिए ताकि वे राष्ट्र के उत्थान के लिए होने वाले राष्ट्रीय प्रयास को अच्छी तरह समझें और उसमें उत्साहपूर्वक भाग लें। पेशा सम्बन्धी योग्यता से जिम्मेदारी निबाहने के लिए उनकी परीक्षा होनी चाहिए।

भारत में काँग्रेस सरकार उपरोक्त बातें पूरी करने के लिए संकट-काल में भी प्रयत्नशील रही। वेतन बढ़ाये गये। औषधि के लिए नये नये अस्पताल एवं औषधालय खुल गये। शिक्षा के लिए हजारों स्कूल खोले गये मिल-मजदूरों के प्रतिनिधियों को मिल-मालिक एवं मजदूर सम्बन्धी झगड़ा तय करने के लिए सरकार के सामने उचित प्रतिनिधित्व का अवसर दिया गया। राष्ट्र का उत्पादन बढ़े और मजदूर सुखी रहें। इन पर ध्यान रखते हुए श्रमिकों की उचित माँगों को पूरा कराने के लिए राष्ट्रीय क्रान्ति की समर्थक काँग्रेसी सरकार सदा तत्पर रही।

(६) ऐसे कार्यों के अतिरिक्त किसानों, मजदूरों, मध्यम श्रेणी तथा अन्य लोगों की समस्याएँ हल करने के साथ ही पूरे राष्ट्र के प्राकृतिक तथा अन्य साधनों के विकास का काम शीघ्र होना चाहिए। नये नये उद्योग-धन्धे चलाने और नये आविष्कार तथा अन्वेषण का अच्छा प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास होना चाहिए। राष्ट्रीय साधनों की उत्पादन-शक्ति और भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने से ही लोगों के लिए भरपूर अन्न तथा अन्य वस्तुएँ पैदा हो सकती हैं। मतलब यह है कि राष्ट्र के जीवन—माप को ऊँचा तथा अच्छा बनाने के लिये उत्पादन बढ़ने से ही सफलता मिल सकती है। हिन्दुस्तान में स्वाधीनता

प्राप्त होने के बाद शीघ्र ही राष्ट्रीय सरकार ऐसे व्यापक कार्यक्रम के लिए प्रयत्नशील हुई।

(७) यह शंका पैदा हो सकती है कि क्रान्ति के बाद विप्लवी राष्ट्रीय सरकार की हालत शीघ्र ही इतनी अच्छी नहीं हो सकती है कि वह सब कार्यों को जल्दी ही पूरा कर ले। ऐसी दशा में व्यक्तिगत रूप में कुछ लोगों को निजी उद्योग-धन्धे-बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। वैसी स्थिति में पूँजीवाद के बढ़ने की सम्भावना हो सकती है और मिल-मालिक अपनी शक्ति संगठित कर सकते हैं। ऐसी आशंका हो सकती है।

ऐसी परिस्थिति पैदा न हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसानों, मजदूरों, मध्यम श्रेणी तथा सेना को सन्तुष्ट तथा क्रान्ति के पक्ष में रखा जाय। यदि किसान अपने खेत और उसकी पैदावार के मालिक रहें, मजदूरों को अपने हित की बात करने तथा उचित वेतन पाने की सुविधा हो, मध्यमश्रेणी के जीवन-निर्वाह के लिए काम मिले, सैनिकों को विप्लवी राष्ट्रीयता से प्रभावित कर राष्ट्र की उन्नति के लिए जागृत किया जाय, उनकी आर्थिक समस्याएँ हल की जायँ और उनकी बातें क्रान्तिकारी सरकार के सामने रखने की सुविधा मिले तो वे लोग पूँजीपतियों तथा प्रतिक्रियावादियों की शक्ति नहीं बढ़ने देंगे।

इसके अतिरिक्त पूँजीवाद को निर्बल बनाने के लिए दूसरा उपाय भी हो सकता है। बैंक उद्योग-धन्धों का नियन्त्रण किसी न किसी रूप में करते हैं। पूँजीपतियों द्वारा संचालित बैंक पूँजीवाद का एक मुख्य केन्द्र होता है। उसके राष्ट्रीयकरण से देश का सारा उद्योगधंधा क्रान्तिकारी सरकार के पूर्ण नियन्त्रण में आ सकता है और पूँजीपतियों की शक्ति बढ़ नहीं सकती है। इस अभिप्राय से राष्ट्रीय क्रान्ति में देश के ऐसे नेताओं तथा राजनीतिक संगठन (या दल) विशेष के हाथों में राजनीतिक सत्ता आ जाने पर जिन्होंने स्वतन्त्रता संघर्ष का नेतृत्व किया हो, और क्रान्तिकारी राष्ट्रीय सरकार सुव्यवस्थित हो जाने पर देश के सब बैंकों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। विप्लवी सरकार की नीति ऐसी होनी चाहिए कि बैंकों की पूँजी ठीक अवसर आते ही क्रान्तिकारी सरकार की

सम्पत्ति हो जाय और उनका सारा प्रबन्ध विप्लवी सरकार करने लगे। इस उपाय से पूँजीवाद को बल नहीं मिल सकता है। देश के उद्योग-धन्धों की उन्नति के साथ पूँजीवाद निर्बल हो सकता है। विप्लवी सरकार स्वयं जिन उद्योग-धन्धों को अपने प्रबन्ध में नहीं रख सकती हो उन्हें दूसरे के हाथों में छोड़ा जा सकता है। बैंकों के अतिरिक्त देश के मुख्य मुख्य उद्योग-धन्धों, यातायात के साधनों, खानों तथा नागरिकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान के उत्पादन के व्यापारों का राष्ट्रीयकरण जहाँ तक शीघ्र हो सके हो जाना चाहिए। अर्थात् मुख्य उद्योग-धन्धे और उत्पादन तथा वितरण के सब साधन क्रान्तिकारी सरकार के प्रबन्ध में रहने चाहिये। उनका स्वामित्व राष्ट्रीय सरकार के अधिकार में होना चाहिए।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का ध्यान इन बातों की तरफ है। बैंकों के नियन्त्रण एवं राष्ट्रीयकरण के लिए काँग्रेस सचेत है। इंपीरियल बैंक आफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण शुभ लक्षण है।

(८) राष्ट्रीय विप्लव में उथल-पुथल के समय दूसरे देशों की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ कभी-कभी अपने साधनों द्वारा और कभी-कभी दूसरों को सहायता देकर क्रान्ति को असफल बनाने का प्रयत्न करती हैं। इससे गृह-युद्ध या बाहरी आक्रमण से विप्लवी सरकार और देश को बचाने के लिए सामरिक शक्ति संगठित रखने की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। ऐसी दशा में राष्ट्रीय रक्षा के लिए जो साधन जरूरी होते हैं उनको किसी व्यवसायी के हाथों में नहीं छोड़ना चाहिए। इस मतलब से राष्ट्रीय क्रान्ति का एक कार्यक्रम यह भी होना चाहिए कि राष्ट्रीय रक्षा के लिए आवश्यकीय सब फैक्टरियों तथा साधनों का राष्ट्रीयकरण हो।

(९) प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम में उपरोक्त बातों के अतिरिक्त सारे राष्ट्र के नागरिकों की बौद्धिक, नैतिक तथा शारीरिक उन्नति भी निहित होती है। लोगों का स्वास्थ्य सुधारने तथा उनकी शारिरिक शक्ति बढ़ाने के लिए जगह-जगह विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य-वर्धिनी एवं सामरिक शिक्षा होनी चाहिए। उससे राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। देशवासियों का बौद्धिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार का विकास

अत्यन्त आवश्यक होता है।

(१०) राष्ट्र में जो दुर्बलतायें हों उन्हें दूर करने के लिए जनता में ऐसी शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में आत्म-रक्षा के लिए आवश्यक होती है। संसार में साम्राज्यवाद जल्दी नहीं मिट सकता है। जब तक पूँजीवाद रहेगा तब तक उसका समर्थन करने वाली सरकारों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता रहेगी। उससे युद्ध की सम्भावना बार बार पैदा होगी। ऐसी हालत में स्वाधीन देशों पर फिर संकट आ सकता है। विशेषतः राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा प्राप्त हुई नई स्वाधीनता पुनः विपत्ति में पड़ सकती है। इससे भारतीय राष्ट्र को इस योग्य होना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के अवसर पर यदि संकट हो तो वह अपनी तथा शान्ति-प्रिय देशों की रक्षा सफलतापूर्वक कर सके। इसके लिए उसमें क्षात्र-भाव उत्पन्न करना चाहिए ताकि वह स्वाधीनता के लिए अधिक से अधिक बलिदान कर सके।

मानव-प्राणी के अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष सम्बन्धी जिस भाव की आवश्यकता होती है उसे भारतीय राष्ट्र में उत्पन्न करना चाहिए। भारतीय जनता में ऐसी शक्ति होनी चाहिए जिससे संसार में उसका उचित स्थान सुरक्षित रहे तथा मानव-जाति की उन्नति में सदा उसकी देन रहे।

(११) परतन्त्र देश में शिक्षा का अभाव प्रायः रहता है। इससे स्वाधीनता मिलते ही देश के लोगों के बौद्धिक विकास के लिए सब साधन जैसे साहित्यिक; वैज्ञानिक, कलात्मक तथा रचनात्मक शिक्षा इत्यादि जनता को सरलतापूर्वक उपलब्ध होने चाहिये।

(१२) बौद्धिक विकास के साथ ही नैतिक उत्थान राष्ट्र के लिए अनिवार्य होता है। पराधीनता के कारण परतन्त्र राष्ट्र में प्रायः आत्मविश्वास तथा नैतिकता का ह्रास होता है। किन्तु दोनों गुण राष्ट्रीय उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं। इससे नैतिक विकास के लिए समाज के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य होना चाहिए। यह काम जल्दी जल्दी नहीं हो सकता है। राष्ट्र के प्रत्येक अंग में नया भाव संचारित करने के अभिप्राय से

काफी समय चाहिए । यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि इसका संचार किया कैसे जाय। लोगों की मनोवृत्ति, दृष्टिकोण तथा भाव में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इसके लिए शिक्षा तथा उच्च आदर्श का प्रचार व्यापक रूप में होना चाहिए। साथ ही देश में लोगों का एक ऐसा समुदाय होना चाहिए जिनका सारा समय समाज सेवा में लगे तथा जो स्वयं त्यागी रहें।

उपरोक्त कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह प्रश्न हो सकता है कि जब उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी सरकार मुख्य-मुख्य व्यवसायों, उत्पादन तथा वितरण के साधनों, बैंकों और राष्ट्रीय रक्षा के लिए आवश्यकीय फैक्टरियों को अपने प्रबन्ध में ले सकती है तब अन्य सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण क्यों नहीं हो सकता है। इसका सीधा उत्तर यही है कि जब क्रान्तिकारी सरकार स्वतन्त्रता तथा नव स्थापित जनतन्त्र को सुरक्षित समझे और क्रान्ति-विरोधिनी शक्तियों को निर्मूल करने में सफल हो जाय तब उसे अन्य सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का आरम्भ करना चाहिए । यदि नवीन जनतन्त्र या राष्ट्रीय क्रान्ति के प्रतिकूल देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ कुछ भी सक्रिय रहें तो समाज के किसानों, श्रमिकों, सैनिकों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों को सन्तुष्ट तथा प्रोत्साहित कर उन्हें क्रान्ति की रक्षा तथा उसकी सफलता के लिए सदा उद्यत रखने का प्रयत्न होना चाहिए। इसके लिए जनतन्त्र के सब समर्थकों को सचेत रहना चाहिए।

ऐसे प्रश्न चीन में भी कई बार उठे। वहाँ की वर्गवादी पार्टी तथा तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कमुनिस्ट संगठन में मतभेद हो गया। कुछ दिनों के लिए सम्बन्ध विच्छेद भी हो गया था। चीनी विप्लवियों को अपने देश की पूरी जानकारी थी। उनकी बुद्धि एवं युक्ति ठीक सिद्ध हुई। उनका यह कहना था कि १९११ में चीनी क्रान्ति हुई थी। तब भी उसका प्रजातन्त्रात्मक कार्यक्रम अभी पूरा नहीं हुआ। इससे चीन में सर्वप्रथम राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम को पूरा करके चीनी जनतन्त्र को सफल बनाना है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अन्त तक वे यह कहते थे कि सामन्तशाही के भग्नावशेष के विनाश के लिये तथा साम्राज्यवाद के प्रतिकूल संयुक्त

शक्ति लगाने के लिए यह जरूरी है कि जो लोग घरेलू उद्योग-धन्धे चलाते हैं, जो कारीगर हैं, जो छोटे-मोटे व्यापारी या मजदूर हैं, जिन लोगों ने अपनी सम्पत्ति अपनी मजदूरी की कमाई से खरीदा है तथा जो लोग अपना जीवन देश-सेवा में लगाते हैं वे लोग यदि स्वयं जमीन न जोतते हों तब भी उनके खेत या अन्य सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण उनकी इच्छा के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए । दूसरी बात यह है कि जो सैनिक राष्ट्रीय रक्षा तथा देश के उत्थान के लिए लड़ते हों उनकी भूमि कदापि नहीं छीननी चाहिए ।

वर्तमान शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आरम्भ में भी उनका यह कहना था कि केवल सहयोग समितियाँ और राष्ट्रीय उद्योग-धन्धे ही नहीं बढ़ाने चाहिये बल्कि आद्यौगिक तथा व्यवसायिक उन्नति के लिए निजी (व्यक्तिगत) पूँजी को भी प्रोत्साहन देना चाहिए । उन्होंने यह बात भी कहा कि जिस निजी व्यवसाय से क्रान्तिकारी सरकार कमजोर न हो बल्कि मजबूत हो तो उसे प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति की सफलता के लिए चलने देना चाहिए।

उनकी यह बात ठीक साबित हो रही है जो निजी पूँजी क्रान्तिकारी कार्यक्रम को पूरा करने में सहायता देती हो उसे व्यक्तियों के अधिकार में रहने देना चाहिए ताकि विप्लवी सरकार अपने को मजबूत करे और क्रांति-विरोधी शक्तियों को निर्बल या निर्मूल करे ।

उपरोक्त बातें १९३५ में चीन के वर्गवादी दल तथा चीनी सोवियत सरकार के संयुक्त घोषणा-पत्र में प्रकाशित हुई थी ।

यहाँ इस बात की चर्चा करने का मतलब यह स्पष्ट करना है कि प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के विकास या उन्नति में कई अवस्थाएँ होती हैं । समाजवादी जनतन्त्र की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है जब प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था अच्छी तरह सफल हो गई हो अर्थात् सबसे पहले जनतन्त्र खूब संगठित हो जाने के बाद समाजवादी जनतन्त्र की सम्भावना हो सकती है । सारांश यह है कि राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव की सारी अवस्थाएँ व्यतीत हो जाने पर समाजवादी क्रान्ति का कार्यक्रम आरम्भ

हो सकता है।

चीन के विप्लवी नेता इस बात को मानते हैं। भारतीय क्रान्तिकारी भी यह बात हमेशा कहते थे।

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि चीन भारत की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ था। हिन्दुस्तान में कल-कारखाने बहुत उन्नति कर चुके हैं। इससे समाजवादी विप्लव के लिए सुविधा है। किन्तु साथ ही यहाँ एक ऐसी विरोधी शक्ति थी जिसके साधन अब भी यहाँ हैं जैसी चीन में नहीं थी। यहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद इतना शक्तिशाली था कि इसका उदाहरण चीन में नहीं मिल सकता है। हिन्दुस्तान में देशी नरेश भी चीन के ताल्लुकेदारों की अपेक्षा अधिक संगठित थे। विदेशी साम्राज्यवाद उनकी सहायता करता था। अब उसका दूसरा मोर्चा पाकिस्तान के रूप में संगठित है। यह देखते हुए वास्तविकता को भूल नहीं जाना चाहिए।

असल कठिनाइयों को देखते हुए यही ठीक तथा व्यवहारिक साबित होता है कि भारत ऐसे देशों में जहाँ स्वतन्त्रता थोड़े ही दिनों पहले प्राप्त हुई हो, पहले राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति का कार्यक्रम पूरा किया जाय और उसके सफल हो जाने पर राष्ट्रीय विप्लव को सामाजिक क्रान्ति के रूप में परिणत किया जाय। तभी स्थाई सफलता मिल सकती है।

एक प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार जमाने के पहले पराधीन या अर्द्ध परतन्त्र देशों में कौन कार्य-क्रम चलना चाहिए जिससे प्रजातन्त्रात्मक विप्लव पूरा हो। इस के लिए जनता में सबसे पहले ठोस संगठन तथा प्रचार होना जरूरी होता है। केवल प्रचार से भी काम नहीं चल सकता है। हर देश में जनता की शक्ति का संचालन करने वाली राजनीतिक पार्टियाँ या व्यक्ति विशेष (नेता) होते हैं। लोगों की जागृति एवं चेतना उस अवस्था में अच्छी तरह लाभ-दायक होती है जिसमें उनका संगठन अच्छा हो और उनका नेतृत्व दृढ़ एवं क्रान्तिकारी हो। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह कहना बिलकुल ठीक है कि क्रान्ति के लिए जैसा संगठन तथा नेतृत्व आवश्यक होता है वैसे

संगठन तथा नेताओं का अभाव भारत में नहीं था ।

संगठन के लिए प्रत्येक देश में राजनीतिक दल अनिवार्य होता है । हिन्दुस्तान में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ऐसी शक्तिशालिनी संस्था है जो वैसी राजनीतिक पार्टी का कार्यक्रम पूरा करती है । उसका आदर्श तथा ध्येय केवल भारत ही के लिए नहीं बल्कि सारे संसार के लिए कल्याणकारी है । वैसे राजनीतिक दल के अतिरिक्त विद्यार्थियों में विप्लवी राष्ट्रीयता जागृत करनी आवश्यक होती है । युवक तथा छात्र नये विचारों को अपनाने राष्ट्र, के लिए बलिदान होने तथा आदर्श के लिए कष्ट सहन में प्राय: सब देशों में सबसे आगे रहते हैं । उनके साथ ही आर्थिक समस्या सम्बन्धी दिन प्रति दिन की कठिनायाँ दूर करने के लिए किसानों तथा मजदूरों के संगठन की भी आवश्यकता कभी कभी होती है ।

भारत की बात हो या किसी अन्य पराधीन या अर्ध-परतन्त्र देश की बात हो । ऐसे राजनीतिक दल तथा संगठन की उपयोगिता होती है । उन्हें अच्छी तरह चलाने के लिए विभिन्न कार्य करने पड़ते हैं । पराधीन देशों में राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए आवश्यकीय कार्यक्रम को सक्रिय बनाने के लिए नीचे लिखी बातों पर विशेष ध्यान देना उपयोगी होता है ।

राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति की चर्चा हो रही है । यहाँ राष्ट्रीय का मतलब यह है कि उस क्रान्ति का सर्व प्रधान कार्यक्रम राष्ट्र के सम्बन्ध में रहता है । राष्ट्रीयता से उसे प्रेरणा मिलती है । जिस आदर्श से क्रान्तिकारी को प्रेरणा मिले उसका देशव्यापी प्रचार होना चाहिये ।

(१) देश की स्वाधीनता तथा साम्राज्यवाद के विनाश के लिए राष्ट्र की इच्छा राष्ट्रीयता से प्रबल होती है उससे संकल्प दृढ़ होता है । राष्ट्रीयता गतिशील शक्ति होती है । वह प्रगतिशील होती है । विशेषत: परतन्त्र देश में राष्ट्रीयता विप्लवी शक्ति होती है । साम्राज्यवाद, एकतन्त्र, सामन्तशाही, विदेशी प्रभाव, फासिस्टवाद (या नाजीवाद) विदेशी शोषण इत्यादि के विनाश के लिए राष्ट्रीयता सदा क्रान्तिकारी आदर्श तथा शक्ति होती है । यदि राष्ट्र में राष्ट्रीयता अच्छी तरह व्याप्त हो जाय तो धार्मिक वैमनस्व तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ निर्बल हो सकती हैं । अत:

विप्लव की प्रगति में बाधा डालते हैं।

(५) यदि समाज के लोगों में तानाशाही की मनोवृत्ति हो तो उसे आरम्भ में ही कुचल देना चाहिए । इस केलिए बालिग मताधिकार का सिद्धान्त बहुत उपयोगी होता है।

(६) जो लोग धार्मिक वैमनस्व फैलाकर अपना स्वार्थ साधते हैं साम्प्रदायिकता के उन समर्थकों की देशद्रोही नीति का भण्डाफोड़ करना चाहिए। धार्मिक झगड़ों को प्रोत्साहन देने वाले लोगों का प्रभाव केवल प्रचार से नहीं मिट सकता है राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के लिए जो कार्यक्रम लाभदायक हो उन्हें चालू करने से वह नष्ट हो सकता है। जमींदारी, जागीरदारी एवं सामन्तवाद की प्रथा के विनाश से सब धर्मों के किसान उस संस्था के पक्ष में हो सकते हैं जो जमींदारी या सामन्तशाही का नाश करने के लिए प्रयत्न करती है । धार्मिक अन्ध-विश्वास सदा नहीं रह सकता है।

(७) जिन लोगों के स्थिर स्वार्थ होते हैं उन लोगों को छोड़ बाकी श्रेणियों (जैसे किसान, मजदूर) के श्रेणी-संगठन दिन प्रतिदिन की उनकी कठिनाइयाँ दूर कराने और दैनिक माँगें पूरी कराने के लिए संगठित होने चाहिये। किन्तु राष्ट्रव्यापी समस्याएँ श्रेणी संगठन द्वारा नहीं हल की जा सकती हैं। देशव्यापी कार्यक्रम के लिए क्रान्ति का समर्थन करने वाली विभिन्न श्रेणियों का सम्मिलित दल ही उपयोगी हो सकता है। इससे भिन्न-भिन्न वर्गों के संयुक्त संगठन को सुदृश एवं व्यापक बनाना चाहिये।

(८) उपरोक्त बातें साधारण मामलों को सुलझाने के लिए हैं। जब देश परतन्त्र होता है तब राष्ट्रीय संघर्ष को अच्छी तरह सफल बनाने के लिए ऐसे संगठन की जरूरत होती है जो विदेशी सरकार के संगठन का सामना कर सकता हो और सरकारी शासन के विरोध में आवश्यकता पड़ने पर स्वयं जनता का नियन्त्रण एवं नेतृत्व कर सकता हो। स्वाधीनता के लिए होने वाले आन्दोलन को सफल बनाने के लिए वैसा संगठन अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है । साथ ही क्रान्ति के समय जब विदेशी सरकार के हाथों से राजसत्ता निकलकर राष्ट्र के अधिकार में आती है तब वैसे संगठन बहुत ही

उपयोगी होते हैं। भारत में कांग्रेस ने वैसे ही संगठन तथा राजनीतिक दल की आवश्यकता की पूर्ति की है।

(९) उपरोक्त बातें उसी स्थिति में जल्दी-जल्दी सफलता प्राप्त कर सकती हैं जब राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं में क्रान्तिकारी भावनाएँ जागृत हों। उसके बिना विप्लव सफल नहीं हो सकता है। इससे क्रान्तिकारी भाव, त्याग तथा बलिदान की भावना जनता तथा विशेषतः कार्यकर्त्ताओं में जागृत करने की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। जन-सेवा का भाव बढ़ाने के लिए देशवासियों को विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

(१०) मानसिक बल तथा बौद्धिक विकास से राष्ट्र का उत्थान तब तक अच्छी तरह नहीं होता है जब तक शारीरिक शक्ति नहीं बढ़ती है। जिस राष्ट्र के लोग दुर्बल होते हैं उसके लिए कभी न कभी भारी संकट पैदा हो सकता है। इससे राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के अभिप्राय से यह अवश्यक होता है कि नागरिकों का शारीरिक बल बढ़े। उसके लिए जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक प्रयत्न होना चाहिये। गाँव, कस्बा तथा शहर में व्यायाम के लिए अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये। बच्चों, बालकों एवं बालिकाओं के प्रति बालिग लोगों का विशेष ध्यान रहना चाहिये। इस केलिए सरकार तथा सार्वजनिक संस्थाओं को पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

(११) मानसिक, बौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति पर्याप्त होने पर भी यदि कठिनाई, विपत्ति या संघर्ष का सामना उत्साह-पूर्वक करने की मनोवृत्ति न हो तो संसार के संघर्ष में व्यक्ति या राष्ट्र पूरी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। यह बात सबको विदित है कि विश्व में भिन्न भिन्न शक्तियाँ रहती हैं। उनमें अनेकों का पारस्परिक सहयोग होता है और बहुतेरी आपस में विरोधी होती हैं। प्राकृतिक शक्तियों में भी ऐसा हुआ करता है। इससे सहयोग और संघर्ष दोनों संसार तथा प्रकृति में अनिवार्य होते हैं।

डार्विन ने तो जीव विज्ञान के सम्बन्ध में यहाँ तक साबित कर दिया है कि जीवों में बराबर संघर्ष चला करता है और वे ही इसमें अपनी

रक्षा कर पाते हैं जिनमें संघर्ष में सफल होने की शक्ति होती है । उनके सिद्धान्त के अनुसार जीवधारी प्राणी की जिस जाति में संघर्ष की योग्यता नहीं या वहुत कम होती है वह नष्ट हो जाती है। उनके इस विचार के प्रतिकूल भी अनेकों प्रमाण मिलते हैं जीव-विज्ञान के कई विद्वानों ने इस बात को उस सीमा तक मानना अस्वीकार कर दिया है जहाँ तक डार्विन मानते थे। तो भी डार्विन की मौलिक बातें ही जीव-विज्ञान में अब तक प्रमाण मानी जाती हैं । सारांश यह है कि प्राकृतिक नियमानुसार संसार में संघर्ष अनिवार्य होता है। विश्व में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए दुर्बल होना या उसके लिए आवश्यकीय योग्यता का अभाव होना घातक होता है।

ऐसी दशा में राष्ट्र में ऐसी शक्ति एवं योग्यता पैदा करनी चाहिये जो उसके अस्तित्व तथा उत्थान के लिए आवश्यक होती है । भारतवर्ष में शताब्दियों की विचारधारा तथा परम्परा से यह ज्ञात होता है कि दर्शन में उन्नति के साथ राष्ट्र में एक ऐसी मनोवृत्ति पैदा हो गई जिससे भारतीय अनिवार्य संघर्ष से भी किसी अंश में उदासीन होते गये । शिक्षित तथा अशिक्षित प्रायः सब युवावस्था में ही वर्तमान जीवन की बात के साथ ही दूसरे जीवन की बात करते हैं। वर्तमान जीवन के अतिरिक्त दूसरा जीवन होता है या नहीं। यह कोई नहीं जानता है । फिर भी दूसरे जीवन की बात उनके मन में रहती है । इससे उनमें वर्तमान जीवन के प्रति कुछ उदासीनता पैदा होती है और संसार के वर्तमान संघर्ष से दूर भागने की मनोवृत्ति पैदा होती है । राष्ट्र की अवनति का यह मानसिक कारण होता है।

उदासीनता वाली ऐसी मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिये । भारतीय राष्ट्र में ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये जिससे संसार में होने वाले अनिवार्य संघर्ष में वह अपना अस्तित्व सुरक्षित बना सके तथा अपना विकास कर सके। संघर्ष सम्बन्धी ऐसा भाव तथा शक्ति उसमें पैदा करनी चाहिये जिनसे दूसरे राष्ट्र उस पर उंगली न उठा सकें और भारतवासी संघर्ष में किसी से न दबें।

इस परिच्छेद में उल्लिखित कार्यक्रम सम्बन्धी कई बातें ऐसी हैं जिन्हें सफल बनाने के लिए राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति तथा जनतन्त्र की स्थापना के बाद भी सदा प्रयत्नशील रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। उनके प्रति उदासीनता रहने से स्वतन्त्रता तथा जनतन्त्र दोनों पर संकट आ सकता है।

पाँचवां परिच्छेद

क्रान्ति कला

अब यह जानने की उत्सुकता होती है कि संसार की क्रान्तियों में कोन कौन-सी बातें थीं जिनसे उन्हें सफलता मिली और उनके द्वारा बहुतेरे राष्ट्रों का पुनर्जन्म-सा ही हो गया। किस तरह विप्लव की तैयारियाँ होती हैं? कैसे उनका प्रचार होता है? फिर उनका आरम्भ कैसे होता है? कौन-सी युक्तियाँ ऐसी होती हैं जो प्राय: सब विप्लवों में उपयोगी सिद्ध होती हैं? इस विषय में लोगों के हृदय में ऐसे प्रश्न उठते हैं। जब तक इन बातों पर भी विचार न किया जाय तब तक क्रान्तिवाद का अध्ययन अधूरा ही रहेगा।

इनका उत्तर देने से पहले एक बार फिर यह लिखना अच्छा जान पड़ता हैं कि क्रान्ति शब्द से कोई यह न समझे कि इसका मतलब लहूलुहान, हत्या या अग्निकाण्ड इत्यादि बातें हैं। इससे इस पुस्तक में जहाँ कहीं क्रान्ति या विप्लव शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ इसका मतलब जनता के हित के लिये व्यापक तथा महान् आमूल परिवर्तन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि क्रान्ति में हिंसात्मक कार्य ही होता है।

अब असल विषय पर आना है। इस बात की चर्चा पहले हो चुकी है कि क्रान्ति प्राय: तीन प्रकार का रूप धारण करती है। शान्त प्रतिरोध, गुप्त प्रतिरोध तथा प्रकट विद्रोही प्रतिरोध। सब क्रान्तिकारी आन्दोलनों के आरम्भ में पहले पढ़े लिखे व्यक्तियों के हृदय में (जिनमें प्राय: शिक्षित युवक या छात्र होते हैं) तत्कालीत परिस्थिति, व्यवस्था या शासन-प्रणाली के विरुद्ध विप्लववादी भाव उत्पन्न होता है। उस समय की जीर्ण तथा हानिकर रुढ़ियों की जानकारी उनको रहती ही है। इसके प्रतिकूल वे अपने विश्वासपात्र साथियों या सहयोगियों में प्रचार आरम्भ करते हैं। यदि उन्हीं के भाव उनके मित्रों में भी होते हैं तो शीघ्र ही

संगठन की बात चल पड़ती है।

पहले सभी संगठन कुछ इने-गिने मित्रों या व्यक्तियों की छोटी समिति या कमेटी के रूप में प्रारम्भ होते हैं। वहीं संगठन का बीजारोपण होता है। यदि इसका कार्यक्रम शान्त प्रतिरोध के रूप में रहता है तो शीघ्र ही प्रचार द्वारा उस छोटी समिति या संगठन के बहुतेरे सदस्य बन जाते हैं। धीरे धीरे वही समिति एक वृहद् संस्था बन जाती है। वही संस्था अन्याय तथा अत्याचार के प्रतिकूल संगठित रूप में जनता में प्रचार आरम्भ करती है। इससे लोग जागृत होते हैं। धीरे धीरे वे हानिकर रुढ़ियों का अन्त करने पर तुल जाते हैं। यदि परिस्थिति अनुकूल रहती है तथा शासक चतुर एवं प्रजा के शुभचिन्तक रहते हैं तो वे जनता की मांगों के अनुसार व्यापक सुधार आरम्भ कर देते हैं। कभी कभी वही सुधारवादी आन्दोलन बढ़ते बढ़ते विप्लवी रूप धारण कर लेता है।

यदि शासक जनता के हित के लिए शासन प्रणाली में हेरफेर नहीं करना चाहते हैं तो वे दमन आरम्भ करते हैं। ऐसी दशा में शासन के विरुद्ध आन्दोलन करने वाली संस्थाओं को कभी कभी विवश हो गुप्त रुप से काम करना पड़ता है।

प्रायः परतन्त्र देशों में जहाँ सार्वजनिक संगठनों का चलना कठिन होता है वहाँ गुप्त प्रतिरोध का कार्य-संचालन गुप्त संस्थाओं द्वारा होता है। ऐसी संस्थायें अपना कार्य गुप्त ही रखती हैं। वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन सदा खुले-तौर पर नहीं करती हैं। गुप्त रहने ही से उनके कार्यकर्ता अत्याचारी शासकों की दृष्टि से बचे रहते हैं और विप्लवी काम करते रहते हैं। गुप्त प्रतिरोध के लिये गुप्त संस्थाओं का जन्म पहले इने-गिने व्यक्तियों की समिति के रूप में होता है। प्रायः देखा जाता है कि ऐसी समितियाँ अपने योग्य कार्यकर्ताओं को किसी बहाने देश के भिन्न-भिन्न भागों में भेजती हैं और उन प्रान्तों में अपनी शाखायें स्थापित करती हैं। कुछ दिनों में वही छोटी समिति देश के विभिन्न भागो में क्रान्तिकारी दल के रूप में विकसित हो जाती है। फिर वही विप्लवी पार्टी सारे देश में अन्याय, अत्याचार तथा परतन्त्रता के विरुद्ध संगठित संघर्ष आरम्भ

करती है।

गुप्त प्रतिरोध के लिए जो गुप्त संस्थायें होती हैं उनके संगठन में खुली संस्थाओं से बहुत भिन्नता होती है । गुप्त राजनीतिक पार्टियों के संगठन में कई विशेषताएँ होती हैं। जिन देशों में विदेशी शासन होता है या जहाँ राष्ट्रीयता के भाव अंकुरित नहीं होने पाते हैं अथवा ऐसे स्वतन्त्र देशों में जहाँ शासन-पद्धति इतनी अन्याय-पूर्ण होती है कि जनता के स्वार्थों की पुकार उठने ही नहीं देती है उन राष्ट्रों में भी प्रायः गुप्त विप्लवी दल गुप्त प्रतिरोध तथा क्रान्तिकारी कार्यक्रम का बीड़ा उठाता है। फिर तो सरकार का दमन-चक्र जोरों से चलता है। गवर्नमेण्ट जनता को आतंकित कर यह चाहती है कि विप्लवी दल की बात न तो लोगों में फैलने पावे और न नागरिक विप्लवियों का समर्थन करें । ऐसी दशा में गुप्त क्रान्तिकारी दलों को अपनी बात जनता तक पहुंचाने में बड़ी कठिनाई होती है । वैसी परिस्थिति में लोगों को उन गुप्त पार्टियों की बातें, नीति, कार्यक्रम इत्यादि अच्छी तरह मालूम होने की बात तो दूर रही स्वयं उन विप्लवी पार्टियों को अपना संगठन चलाने में भी अनेकों प्रकार की कठिनाइयाँ होती हैं । भयंकर परिस्थिति का सामना करने के लिए वे अपने संगठन को बहुत ठोस बनाना आवश्यक समझती हैं । इस अभिप्राय से वे अपने संचालन के लिये बहुत कठोर नियम बनाते हैं। ऐसे दल की गुप्त कार्यवाही जितनी छिपी रहती है उतनी ही उसके बचाव की सम्भावना अधिक रहती है । गुप्त विप्लवी दल के सदस्यों की संख्या वहुत वड़ी न होने पर भी वे शासकों से टक्कर लेते हैं। छिपे ढंग से कार्य करने की विशेषता से ही वे अत्याचारी शासन के दमन से अपनी रक्षा करने में सफल होते हैं।

सरकारी गुप्तचरों की कड़ी दृष्टि से बचकर दल की कार्यवाही को गुप्त रखना उसके संगठनकर्ता की चतुराई पर निर्भर करता है । प्रायः सभी आन्दोलनों की सफलता या विफलता उनके नेताओं के गुण या अवगुण से भी सम्बन्धित होती है। गुप्त प्रतिरोध के लिए तो गुप्त पार्टियों की सफलता में उनका विशेष हाथ रहता है । जिस गुप्त दल के

संगठनकर्ता तथा नेता जितना ही चरित्रवान, बुद्धिमान, परिश्रमी एवं वीर होते हैं उस दल की शक्ति उतनी ही अधिक होती है । उसका काम जल्दी जल्दी बढ़ता है । ऐसा तभी होता है जब संगठनकर्ता या नेता संकट का सामना करने में भयभीत नहीं होते हैं तथा ऐसे ऐसे कार्य कर दिखाते हैं कि सभी उनके त्याग तथा वीरता से प्रभावित हो जाते हैं। साहसी एवं त्यागी नेता के अनुयायी उनका आदेश मानने केलिये प्रायः तत्पर रहते हैं । जो स्वयं प्राण न्यौछावर कर सकता है वही दूसरों को इसके लिए प्रेरित कर सकता है। भारत में हिन्दुस्तान समाजवादो जनतंत्र सेना (तथा संघ) नामक गुप्त विप्लवी दल के नेता इस बात के अच्छे उदाहरण थे।

जिस पराधीन देश में गुप्त राजनीतिक संस्थाओं की शाखायें संगठित हो जातीं हैं उसके शासक प्रायः अपने जासूसों को ऐसे संगठनों में घुसाना चाहते हैं और फिर भंडा फोड़कर उन्हें बिल्कुल नष्ट ही करने का प्रयत्न करते हैं । ऐसी परिस्थिति का सामना करने के लिए वैसे देशों में ऐसे संगठनों का एक सदस्य बहुधा दो ही चार अन्य सदस्यों की कार्यवाही ज़ानता है। दल की नीति या कार्यक्रम की जानकारी तो सभी मेंबरों को होती है किन्तु इस बात की सूचना सबको नहीं रहती है कि किसकी जिम्मेदारी पर कौन काम है या किस व्यक्ति का असली परिचय क्या है। कभी कभी वर्षों साथ रहने वाले जीवन-मरण के साथी तक यह नहीं जानते हैं कि सहयोगी कार्यकर्ता कौन और कहाँ का निवासी है । परन्तु संस्था के नेताओं के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं रहती है । उन्हें तो दल की असली शक्ति जानने के लिये यह आवश्यक होता है कि वे भिन्न भिन्न सदस्यों की असली योग्यता को अच्छी तरह जानते रहें।

यहां यह प्रश्न उठता है कि गुप्त क्रान्तिकारी संगठन इतना गुप्त रहने पर भी उसका भंडा-फोड़ कैसे होता है । इस सम्बन्ध में लोगों को यह मालूम होना चाहिये कि विदेशी सरकार के गुप्तचरों में कोई ऐसी विशेष योग्यता नहीं होती है जिससे वे अनायास ही गुप्त बातों का पता लगा लेते हैं । वे साधारण, चालाक आदमियों की तरह काम करते हैं।

यह बात जरूर है कि उनके लिये हर प्रकार के साधन उपलब्ध रहते हैं। सरकार सब बातों का प्रबन्ध करती है। उनको काफी धन मिलता है। वे जगह जगह नागरिकों ही में किसी किसी को पैसे के लोभ से उनके पड़ोसी संदिग्ध व्यक्ति पर ध्यान रखनें के लिए नियुक्त कर देते हैं। वैसे लोभी लोगों द्वारा जासूस पता लगाते हैं कि विप्लवी के पास कौन कौन किस किस समय आता जाता है। फिर वे उन मित्रों के भी पीछे पड़ते हैं और उन की असावधानी से कुछ बातों का पता लगा लेते हैं। कभी कभी पत्र व्यवहार से भी गुप्तचरों को रहस्य का पता चल जाता है। धन एवं विभिन्न सरकारी साधनों की सहायता से उन्हें हर प्रकार का काम करने की सुविधा रहती है। इससे खुफिया विभाग सफल होता है।

ऐसा होने पर भी गुप्त प्रतिरोध के लिये गुप्त संगठन की आवश्यकता क्यों रहती है। यह सवाल प्रायः उठता है। पहले ही कहा गया है कि कभी कभी क्रूर दमन के कारण प्रारम्भ से ही गुप्त संगठन आरम्भ होता है। जब अत्याचारी शासन के प्रतिकूल क्रान्तिकारी कार्य का आरम्भ जनता में नहीं हो सकता है तब वैसी हालत में विप्लवी यह प्रयत्न करते हैं कि गुप्त रूप से साहित्य तथा प्रचार से देश में क्रान्तिकारी वातावरण पैदा किया जाए। वे यह चाहते हैं कि नौजवानों, विद्यार्थियों, सेना तथा सरकारी कर्मचारियों में संगठन बढ़ाकर सुअवसर मिलते ही विद्रोह किया जाय ताकि विप्लव द्वारा राजनीतिक सत्ता पर उनका अधिकार हो जाय। बीच बीच में वे छोटे मोटे संघर्ष भी छेड़ते रहते हैं। किसी किसी देश में इसी प्रकार के गुप्त विप्लवी दल द्वारा क्रान्तिकारी आन्दोलनों का संचालन होता है और क्रान्ति सफल होती है। चीन तथा आयर्लैंड के प्रथम विप्लवी प्रयास इसके उदाहरण हैं। भारत में भी पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए गुप्त संगठन द्वारा विप्लवी आन्दोलन आरम्भ करने का श्रेय गदर पार्टी, हिन्दुस्तान समाजमादी जनतंत्र संघ (व सेना) ऐसे गुप्त क्रान्तिकारी पार्टियों को है।

किसी किसी देश में यह देखा जाता है कि क्रान्तिकारी गुप्त प्रतिरोध के लिए विप्लवी संगठन के दो विभाग होते हैं। एक गुप्त और दूसरा प्रकट

खुले प्रचार से गुप्त कार्यों के लिये सहायता मिलती है । इससे दोनों की शक्ति साथ साथ बढ़ती है । क्रान्ति के ध्येय की प्राप्ति के लिये साधारण जनता में राजनीतिक प्रचार होना आवश्यक होता है । वैसा प्रचार खुले आन्दोलन द्वारा अधिक होता है । किन्तु ऐसा तभी सम्भव होता है जब प्रगतिशील संगठन उस जन-आन्दोलन का नेतृत्व करता है । गुप्त विप्लवी कार्यों की अपेक्षा जनता में राजनीतिक जागृति होनी अधिक आवश्यक होती है । क्रान्ति आरम्भ हो जाने पर वही जागृति उसके ध्येय को सफल बनाती है । जागृति के बिना विप्लव के बाद भी यह भय सदा रहता है कि कहीं क्रान्तिवादी समाज का संगठन नष्ट भ्रष्ट न हो जाय ।

इसी से अनुभवी क्रान्तिकारी नेतागण अपनी पार्टी को दो शाखाओं में संगठित रखते हैं । एक गुप्त दूसरा प्रगट । गुप्त संगठन द्वारा राजनीतिक पार्टी के वैसे कार्यक्रम चलाये जाते हैं जो अवैधानिक होते हैं । दल का प्रचार जन-साधारण में खुले आन्दोलन द्वारा किया जाता है । साधारण जनता में राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने तथा अपना स्वतन्त्र मत कायम करने की योग्यता पैदा की जाती है । इस प्रकार जब गुप्त प्रतिरोध के संचालक अपनी खुली संस्था द्वारा पूरा प्रचार कर लेते हैं तथा अच्छी तरह जागृति हो जाती है तब वे आगे पग उठाते हैं और गुप्त प्रतिरोध को प्रकट विद्रोही प्रतिरोध के रूप में परिणत करने का प्रयास करते हैं ।

गुप्त प्रतिरोध का प्रारम्भ असाधारण परिस्थिति में होता है । विदेशी स्वेच्छाचारी शासक या अत्याचारी नौकरशाही उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं को मिटाने का पूरा प्रयत्न करती हैं जो शासन तथा समाज में आमूल परिवर्तन करना चाहती हैं । वैसी दशा में उन्हें अपना संगठन गुप्त रूप से करना पढ़ता है । विश्वासघात होने की आशंका से तथा विदेशी सरकार के पाशविक बल का सामना करने के लिए उनकी संस्था या दल का बड़ा कटु अनुभव रहता है । वे अपने दैनिक जीवन के लिए भी कड़े नियम बनाते हैं और उनके अनुसार वे अपना रहन सहन भी बना लेते हैं । आदर्श की प्रेरणा, उसके लिए कष्ट सहन का उत्साह, भविष्य में किसी समय विप्लव सफल बनाने की आशा और उसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर

करने वाले त्याग की भावना से वे ओतप्रोत होते हैं। ऐसे सहयोगी कार्य-कर्ताओं में बहुत घनिष्ट बन्धुत्व उत्पन्न हो जाता है । उनकी भावनाओं, त्याग, बलिदान तथा वीरता से, साहसी तथा योग्य लोग प्रभावित हो जाते हैं । इस प्रकार गुप्त विप्लवी दल के संपर्क में आने वाले वीर पुरुषों की सहानुभूति अनुशासित गुप्त क्रान्तिकारी पार्टी के प्रति बढ़ती है ।

उधर शक्तिशाली शासन-प्रणाली अपने दलबल सहित यह प्रयत्न करती है कि जन-साधारण में जागृति के बीज अंकुरित होने ही न पावें और विप्लवी दल के प्रति लोगों की सद्भावना बढ़ने न पावे । परन्तु मानव जाति की स्वाभाविक चेतना से उस निरंकुश स्वेच्छाचारी राज्य के विरुद्ध असंतोष बढ़ता जाता है । दोनों का संघर्ष अनिवार्य हो जाता है । क्रान्ति की आरम्भिक अवस्था से विकासावस्था तक (गुप्त प्रतिरोध समाप्त होने पर) स्वाधीनता के दिवाने तथा न्याय के पुजारी अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं । वे निरंकुश सरकार को दमन नीति का उत्तर अपने त्याग तथा बलिदान से देते हैं । क्रान्तिकारियों के बलिदान तथा त्याग जनता के हृदय में स्वतन्त्रता की लुप्त भावना को जागृत करते हैं । साधारण लोग भी क्रान्ति की तरफ अग्रसर होते हैं । समय की प्रगति के साथ विप्लवी संस्थाओं के प्रति लोगों की साहानुभूति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है । इससे गुप्त प्रतिरोध का कार्य सरल होता जाता है । फिर तो कुछ दिनों में राष्ट्र में क्रान्तिकारी वायुमण्डल ही उत्पन्न हो जाता है । उधर शासन द्वारा दमन भी होता रहता है ।

ऐसी ही परिस्थिति में विप्लवी आन्दोलन में कभी-कभी आतंक-वादी संघर्ष चलाना अनिवार्य हो जाता है । बहुतेरे लोग आतंकवाद पर आक्षेप करते हैं । विशेषतः अहिंसा के प्रचारक इसे सर्वथा अनुचित ही नहीं बल्कि मानवता के लिए अहितकर सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । परन्तु ऐसे विप्लवी जो क्रान्ति को मानव कल्याण के लिए अनिवार्य समझते हैं यह कहते हैं कि समाज को परतन्त्रता, शोषण दरिद्रता तथा कष्ट से बचाने के लिए अत्याचार के साधनों के नाश से विप्लव के लिए वायुमण्डल उत्पन्न होता है । आतंकवाद विप्लव का अग्रदूत होता

है। उनका विचार यह है कि यदि पूरे समाज के शोषण के दिन घट सकते हों और स्वाधीनता प्राप्ति के लिए वातावरण बनता हो तो साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सामन्तशाही, शोषण तथा प्रतिक्रियावाद के क्रूर कुटिल एजेण्टों का दमन या नाश मानवता के लिए हितकर होता है।

जब दमन-चक्र असन्तोष एवं जागृति मिटाने में असफल होने लगता है तथा उसके प्रति लोगों की घृणा बहुत बढ़ जाती है तब क्रान्तिकारी विप्लव के लिए अच्छा समय देख क्रान्ति के गुप्त प्रतिरोध को प्रगट प्रतिरोध के रूप में परिणत कर देते हैं। साधारण जनता भी विप्लव में खुल्लम-खुल्ला भाग लेने लगती है। ऐसा उस अवस्था में होता है जब क्रान्तिकारी दल का संगठन अच्छी तरह दृढ़ हो जाता है उनकी शक्ति खूब बढ़ जाती है, विरोधियों के प्रति लोगों में सहानुभूति नहीं रहती है तथा जन-साधारण में भी राज्य पद्धति को बदलने के लिए बहुत उत्सुकता हो जाती है।

उपरोक्त गुप्त संगठन, दल या प्रतिरोध प्रायः ऐसे देशों में होता है जहाँ विदेशी शासन होता है या स्वतन्त्र राष्ट्र होने पर भी एकतन्त्र, सामन्तशाही या निरंकुश नौकरशाही होती है। जिन राष्ट्रों में प्रजातन्त्र रहता है और जनता को अपनी भावनाओं को शान्तिमय ढंग से प्रकट करने की सुविधा रहती है वहाँ गुप्त दल या संगठन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। भारत ही को ले लीजिए। जब तक देश परतन्त्र था और साम्राजवाद को नष्ट करना था तब तक गुप्त विप्लवी दल जैसे हिन्दुस्तान सामाजवादी जनतन्त्र सेना (संघ) आदि अपने आदर्श तथा नीति को कार्यन्वित करने के अभिप्राय से अपना संगठन गुप्त रूप में चलाने के लिए विवश थे। भारत की स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाने पर उन्हें गुप्त रहने की आवश्यकता नहीं रह गई और वे अपने विचार प्रजातन्त्रात्मक ढंग से खुले-तौर पर प्रकट करने लगे।

परतन्त्र, निरंकुश या स्वेच्छाचारी शासन प्रणाली में गुप्त प्रतिरोध द्वारा जनता में राजनीतिक चेतना तथा असन्तोष बहुत बढ़ जाने पर जब खुल्लमखुल्ला विद्रोह का समय आ जाता है तब प्रकट विप्लवी प्रतिरोध

आरम्भ करते समय यह समस्या अवश्य रहती है कि राज्याधिकार किस प्रकार प्राप्त किया जाय अथवा राजनीतिक सत्ता पर किस तरह अधिकार हो । विप्लवियों को यह ख्याल रहता है कि जनता द्वारा राजसत्ता तथा विप्लवी दल द्वारा राजनीतिक अधिकार प्राप्त किये जाने पर ही उनके लक्ष्य पूर्ति की सम्भावना होती है । उसी के द्वारा सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन होता है । इससे राजनीतिक सत्ता जनता तथा राजनीतिक अधिकार क्रान्तिकारी दल के हाथों में आना सबसे महत्वपूर्ण एवं आवश्यक होता है । इसी से सारे कार्यों का संचालन होता है ।

प्रायः यह देखा जाता है कि इसके लिए भीषण क्रान्तियों का आरम्भ शहरों में होता है । ऐसा इस कारण होता है कि सरकार के शासन के केन्द्र शहर में ही होते हैं । सफल विप्लवों के अनुभव से यह मालूम होता है कि क्रान्तिकारी पहले अधिक से अधिक शहरों पर एक साथ अधिकार जमाने का प्रयास करते हैं। केवल शहरों में ही नहीं बल्कि कस्बों तथा गाँवों में भी इसका प्रारम्भ शीघ्र ही होता है। इससे अत्याचारी सरकार की शक्ति बिखर जाती है और देश भर को एक ही समय रोकना अत्यन्त कठिन हो जाता है । इसी से यह देखा जाता है कि जिस क्रान्ति में राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने का कार्य शहरों तथा दिहातों में एक साथ आरम्भ होता है वह विप्लव प्रायः सफल होता है । १९४२ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में हिन्दुस्तान में ऐसा ही क्रान्तिकारी संघर्ष आरम्भ हुआ था ।

वैसी परिस्थिति उत्पन्न होने से पहले ही जब इस बात की चेतना जन-साधारण में रहती है कि राज्याधिकार या शासनाधिकार किसके हाथों में जाने से समाज को लाभ होगा तब सफलता की बहुत आशा रहती है । यदि इसका प्रचार साधारण जनता में नहीं रहता है तो नागरिक प्रायः क्रान्ति से उदासीन हो जाते हैं । वे ही क्रान्तिकारी अपने आन्दोलन को सफल बना सकते हैं जो जनता की रुचि क्रान्ति के प्रति उत्पन्न कर देते हैं । यदि नागरिकों को यह मालूम रहता है कि क्रान्ति के बाद शासन में उनका भी अधिकार रहेगा तो वे क्रान्तिकारी समुदाय का पूरा साथ देते हैं।

विप्लव सम्बन्धी क्रान्तिकारी कला के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिये। साथ ही यह देखना चाहिये कि संसार की क्रान्तियों में किस समय कौन-कौन सी विशेषतायें थीं तथा वर्तमान युग में कौन-कौन सी भिन्नतायें उत्पन्न हो गई हैं। इस अभिप्राय से विश्व की सारी क्रान्तियों को दो युग के विप्लवों में विभाजित करना चाहिये। औद्योगिक क्रान्ति के पहले के विप्लव तथा इसके बाद के विप्लव।

औद्योगिक क्रान्ति के पहले संसार में आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थिति वर्तमान समय से बिलकुल भिन्न थी। धनी तथा गरीब में इतना अन्तर नहीं था जितना आजकल है। उस समय शोषण के साधन भी ऐसे नहीं थे जैसे अब हैं। उत्पादन तथा वितरण के साधन आजकल की तरह उस समय नहीं थे। इन बातों के कारण उस युग की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था अधिकांश देशों में वर्तमान काल से बिलकुल भिन्न थी। आधुनिक युग के पहले विभिन्न राष्ट्रों की क्रान्तियों में राजनीतिक बातों की प्रधानता थी। उनमें आर्थिक बातों पर उतना ध्यान नहीं था जितना इस समय है। उस समय अधिकतर विप्लवों में राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना क्रान्ति का ध्येय रहता था। यह अधिकार पहले व्यक्ति विशेष या किसी परिवार विशेष के हाथों में रहा करता था। उस दिनों संसार में एकतन्त्र का बोलबाला था। इसलिए यह देखा जाता है कि प्राचीन कालीन तथा मध्यम कालीन क्रान्तियाँ राजाओं, बादशाहों या किसी वंश के विरुद्ध हुआ करती थीं। क्रान्तिकारी समुदाय भी कुछ विप्लवी व्यक्तियों या उनके अनुयायियों के दल के रूप में काम करता था। साधारण जनता का हाथ उनमें कम रहता था अर्थात् अधिकतर किसी राजनीतिक दल द्वारा क्रान्ति होती थी—किसी वर्ग द्वारा नहीं। इसका फल यह होता था कि राज्याधिकार एक व्यक्ति या वंश के हाथों से निकलकर दूसरे वंश, परिवार, या पार्टी के हाथों चला जाता था। अठारहवीं शताब्दी के पहले राज्याधिकार में परिवर्तन ही से क्रान्ति के लक्ष्य की पूर्ति समझी जाती थी। अवश्य ही वैसी क्रान्तियों से भी शासन-प्रणाली में परिवर्तन होता था। उससे जनता को भी लाभ होता था।

भारतीय इतिहास में ऐसी क्रान्ति का उदाहरण प्रचीन काल में मिलता है । नन्द वंश के विरुद्ध कौटिल्य (चाणक्य) की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा क्रान्ति हुई थी । वह विप्लव एक राजा के वंश के विरुद्ध हुआ था। उसके बदले दूसरे परिवार का राज्य आरम्भ हुआ था। समाजिक या आर्थिक व्यवस्था में तो बहुत कम किन्तु शासन-पद्धति में बड़े-बड़े परिवर्तन अवश्य हुए । शासनाधिकार नन्द वंश के हाथों से निकल कर चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों में चला गया। इससे केवल राजनीतिक परिवर्तन हुआ । उसके बाद भी कई बार राजनीतिक मामलों में ऐसा हुआ, किन्तु सामाजिक या आर्थिक परिस्थिति में उनसे बहुत कम अन्तर पड़ा ।

पुर्नजीवन (Renassiance) के बाद योरोप की विचार-धारा में विप्लव हुआ। इससे क्रान्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इसका प्रभाव अमेरिका पर भी पड़ा । अमेरिका में पहले छोटी मोटी मागों को लेकर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हुआ । आगे चलकर उसी आन्दोलन ने राजनीतिक संघर्ष का रूप धारण कर लिया। इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट के राजनीतिक अधिकार को मानने या न मानने का सवाल पैदा हो गया । फिर तो क्रान्ति हुई और अमेरिका ने अपने को एक स्वतन्त्र संयुक्त राज्य घोषित कर दिया । उसमें भी राजनीतिक प्रश्न ही की प्रधानता थी। मुख्य बात यह थी कि इंग्लैण्ड को अमेरिका पर राज्य करने या कर लगाने का अधिकार था या नहीं ।

अमेरिका के विप्लव का सबसे अधिक असर फ्रांस पर पड़ा । वहाँ राजतन्त्र के विरुद्ध क्रान्ति हुई और प्रजातन्त्र की घोषणा हुई । इन दोनों विप्लवों में जनता का भी हाथ था। उनका प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ा और कई क्रान्तियाँ हुईं । फ्राँसीसी क्रान्ति से सामन्तशाही का अन्त हुआ । राजनीति में जनता के अधिकार बढ़े । उससे राजनीतिक प्रजातन्त्र स्थापित हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति का काम पूरा होने के बाद यूरोप की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में महान परिवर्तन हो गया । दुनिया में पूँजीवाद की उन्नति के साथ साथ उसकी बुराइयाँ भी बढ़ती गईं । जनता का शोषण

होने से उसका कष्ट बहुत बढ़ गया । इससे राजनीतिक बातों के साथ ही आर्थिक प्रश्न सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने लगे। इसी से संसार में केवल राजनीतिक प्रजातन्त्र स्थापित करने से लोगों का कष्ट दूर होने का भ्रम नहीं रह गया।

यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वर्तमान युग में राजनीतिक प्रश्नों के समान और कभी कभी अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक समस्यायें भी हैं। इससे विप्लव में राजनीतिक बातों की तरह आर्थिक प्रश्नों का महत्व होना स्वाभाविक है । आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण में मौलिक भिन्नता होने के कारण प्रजातन्त्रात्मक पूँजीवादी क्रान्ति तथा समाजवादी विप्लव के विकास में काफी अन्तर होता है। पूँजीवादी क्रान्ति राजनीतिक दल के प्रयास से हो सकती है किन्तु समाजवादी क्रान्ति के लिए किसी न किसी प्रकार किसान, मजदूर आदि वर्गों की सहायता अनिवार्य होती है। जर्मनी में कैसर तथा स्पेन में एल्फेंजों के विरुद्ध जो क्रान्तियाँ हुई थीं वे पूँजीवादी विप्लव के उदाहरण हैं। उन क्रान्तियों में किसी शोषित वर्ग का नेतृत्व नहीं था। उनमें राजनीतिक दल का संचालन था । सामाजवादी विप्लव किसान मजदूर की सक्रिय सहायता के बिना नहीं हो सकता है। यह केवल किसी राजनीतिक दल के प्रयत्न या नेतृत्व से सफल नहीं हो सकता है। इसके लिए किसानों, मजदूरों तथा निम्न मध्यम श्रेणी आदि शोषित वर्गों का संगठन जरूरी होता है। यदि केवल मजदूर ही इसमें भाग लें और किसान इससे अलग रहें तो यह असफल हो जाता है।

मतलब यह है कि पूंजीवादी क्रान्ति सामन्तशाही को मिटाकर पूँजीवाद के आधार पर समाज का संगठन किसी राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में करती है। उसके लिये किसानों तथा मजदूरों का सक्रिय सहयोग अनिवार्य नहीं होता है । अर्थात वैसी क्रान्ति केवल राजनीतिक पार्टी के प्रयास से हो सकती है।

प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का संचालन ऐसे दल के द्वारा सफल होता है जिसमें किसान, मजदूर, मध्यम श्रेणी और सामन्तवाद-विरोधी वर्ग सम्मिलित होते हैं । उनका सम्मिलित संगठन राजनीतिक दल के रूप में

कार्य करता है । वैसे विप्लव में सर्वसाधारण जनता के अधिकार बढ़ते हैं और जनता उसमें सक्रिय भाग लेती है । समाजवादी विप्लव की सफलता के लिए किसान, मजदूर तथा निम्न मध्यम श्रेणी ऐसे शोषित वर्गों का सक्रिय सहयोग के साथ ही उसका नेतृत्व भी उन वर्गों के प्रतिनिधियों के हाथ में होना आवश्यक होता है ।

किसी प्रकार की क्रान्ति क्यों न हो किन्तु उसमें राजनीतिक अधिकार प्राप्ति के लिये जो संघर्ष चलता है उसमें तीन अवस्था में अवश्य ही उत्पन्न होती हैं। पहली अवस्था में क्रान्तिकारी दल पुरानी शासन-प्रणाली को जनता के सामने निकम्मा साबित कर उसे शिथिल बनाता है । जब उस शासन-पद्धति का प्रभाव राष्ट्र पर नहीं रह जाता है और समाज को यह मालूम हो जाता है कि वह शक्तिहीन हो गई है तब क्रान्तिकारी पार्टी के हाथ में राजनीतिक अधिकार आसानी से आ जाता है। राजसत्ता पर क्रान्तिकारियों के अधिकार हो जाने पर सरकार के सब साधन उस दल के आधीन हो जाते हैं। तब विप्लवियों का शासन आरम्भ होता है। कुछ दिनों तक तो जनता में यह प्रश्न उठता है कि पुरानी शासन-पद्धति के अनुसार सरकार बने या क्रान्तिकारी दल द्वारा स्वीकृत नई शासन-प्रणाली के आधार पर राष्ट्र की गर्वनमेण्ट बने । क्रान्तिकारी सरकार संगठित हो जाने पर भी प्रतिक्रियावादी लोग यह प्रयत्न करते हैं कि नागरिक नई गर्वनमेण्ट की आज्ञा न माने और उसके काम में अड़ंगा बाधा डालें ताकि विप्लव असफल हो जाय ।

राजसत्ता जनता तथा उसके हित का प्रतिनिधित्व करने वाले राजनीतिक दल के हाथों में आने के पहले या आ जाने पर कृषि-प्रधान देश में विप्लवी दल के सामने बहुत बड़ा कार्य क्रम कृषकों के सम्बन्ध में रहता है । उसकी सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि किसान उस दल के पक्ष में हों। सारी प्रतिक्रियावादी शक्तियां इस बात के लिये प्रयत्नशील रहती हैं कि किसान क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन न करें । ऐसी परिस्थिति में चाहे प्रजातन्त्रात्मक विप्लव हो या सहकारी सिद्धान्तों के आधार पर किसी अन्य प्रकार का विप्लव हो, प्रत्येक क्रान्ति

में विप्लवी दल को इस बात के लिए सचेत रहना चाहिये कि किसान क्रान्ति-विरोधी शक्तियों से बिलकुल अलग रहकर क्रान्तिकारी दल या संगठन से मिल जायें। भारत के राष्ट्रीय काँग्रेस ने प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति में किसानों का विश्वास तथा समर्थन पूर्णतः प्राप्त किया। इससे उसे विशेष सफलता मिली।

जैसा भी हो। राजसत्ता विप्लवी दल के हाथों में आ जाने पर भी कभी कभी दूसरे देशों की सरकारें जो प्रतिक्रियावादी प्रथाओं को सुरक्षित रखना चाहती हैं, नई विप्लवी गर्वनमेण्ट को नहीं मानती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में क्रान्तिकारी सरकार को अन्य राष्ट्रों की मान्यता आवश्यक होती है। यह न मिलने पर उसे कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विप्लव के बाद सोवियत सरकार तथा चीनी क्रान्ति के पश्चात् चीन की कम्युनिस्ट सरकार को कुछ दिनों ऐसी कठिनाई पड़ी थी।

दूसरे राष्ट्रों की सरकार प्रायः पहले पुरानी शासन पद्धति के अनुसार चलने वाली सरकार को ही उस देश की असली गवर्नमेण्ट मानती हैं। ऐसी परिस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में यह बात पैदा हो जाती है कि पुरानी सरकार उस राज्य की गर्वनमेण्ट है या विप्लवी सरकार। इस प्रकार विप्लवी दल के सामने केवल राष्ट्रीय समस्या ही नहीं रहती है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पैदा हो जाता है। उपरोक्त झंझट प्रायः उस हालत में पैदा होता है जब गैरकानूनी या अवैधानिक उपायों से राजसत्ता क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथों में आती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सारे चीन पर वहाँ के विप्लवी दल (कम्युनिस्ट पार्टी) का आधिपत्य हो जाने पर मी अमेरिका का संयुक्त राष्ट्र, इंग्लैंड की सरकार, फ्रांस की गर्वनमेंट आदि उसे बहुत दिनों तक मान्यता नहीं दे रही थीं। इससे चीन की क्रान्तिकारी सरकार की प्रगति में वाधा पड़ती थी।

वैसी दशा में विप्लवी सरकार की योग्यता तथा शक्ति की परीक्षा होती है। कानूनी अधिकार या वास्तविक अधिकार का विवाद पैदा होता है। किन्तु देश के क्रान्तिकारी दल का अधिकार रहने से दूसरे देश

वालों की बात का प्रभाव कम पड़ता है। यदि कुछ दिनों तक नई सरकार अपना काम और देश का शासन चलाती रहती है तो अन्य राष्ट्र भी कुछ दिनों में उसी को असली सरकार मान लेते हैं।

असल बात यह है कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दूसरी सरकारें कभी-कभी युद्ध के समान परिस्थिति पैदा कर देती हैं। तब भी यदि क्रान्तिकारी सरकार सत्ता नहीं छोड़ती है तो वही कुछ दिनों में देश की वास्तविक सरकार स्वीकार कर ली जाती है।

विप्लवी संघर्ष की दूसरी अवस्था में नई सरकार राजनीतिक अधिकार द्वारा पुराने हानिकर नियमों या कानूनों को रद्द कर ऐसे कानून तथा नियम बनाना आरम्भ करती है जिनसे उस दल तथा समाज का हित हो। इस के लिये पहले के राजनीतिक संगठन में आमूल परिवर्तन कर नई राजनीतिक व्यवस्था बनानी पड़ती है। वह राजनीतिक अवस्था होती है।

उसके बाद तीसरी अवस्था आरम्भ होती है। वह आर्थिक या सामाजिक अवस्था कही जा सकती है। सामाजिक संगठन में भी बहुत हेरफेर करना पड़ता है। इससे सामाजिक कुरीतियों तथा बुराइयों को निर्मूल किया जाता है। पहले यदि राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं रहती है तो इस अवस्था में आर्थिक क्रान्ति आरम्भ होती हैं। जिन हानिकर नियमों के कारण आर्थिक दशा असन्तोषजनक रहती है उन्हें बदल कर नये नियम बनाये जाते हैं। उनका लक्ष्य जनसाधारण की भलाई होती है। यह बात साफ-साफ समझ लेनी चाहिये कि राजनीतिक अवस्था तथा सामाजिक अवस्था में वर्षों का अन्तर नहीं पढ़ता है बल्कि दोनों अवस्थाओं के कार्य लगभग साथ ही साथ या थोड़े आगे पीछे होते हैं।

विश्व की क्रान्तियों के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि वही क्रान्तियाँ सफल होती हैं जिनके नेता ध्वंसात्मक कार्य के साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम शीघ्रतातिशीघ्र आरम्भ करते हैं। यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि विप्लव के दो पहलू होते हैं। विनाशात्मक तथा रचनात्मक।

अर्थात् पुराने संगठन का विगठन प्रारंभ होने पर उसके बदले राष्ट्र का नया लाभदायक संगठन शीघ्र ही होना आवश्यक है होता । अराजकता फैलाने से क्रान्ति के लिये संकट उत्पन्न हो जाता है। क्रान्ति के ध्येय की पूर्ति तभी होती है जब हानिकारक प्राचीनता का ध्वंस होने के साथ ही लाभप्रद नवीनता की रचना होती है ।

जहाँ इस नीति का अवलम्बन होता है वहाँ भी विप्लवी विद्रोह के समय का पुर्नसंगठन जल्दी में ही होता है । शीघ्रता के कारण नये नियमों में भी दुर्बलता की सम्भावना रहती है। फिर भी इसकी चिंता छोड़ जनता की माँगों तथा मानव-जाति की स्वाभाविक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले नियम तथा कानून जल्दी से जल्दी बनने चाहिए । अन्न, वस्त्र, दवा इत्यादि की समस्या हल करने का प्रयत्न राजसत्ता हाथ में आते ही आरम्भ हो जाना चाहिये ।

विप्लव में राजसत्ता पर अधिकार जमाने के समय या उसके बाद जो संघर्ष चलता है उसके बारे में यह कहना ठीक है कि औद्योगिक क्रान्ति के पहले तथा बाद की क्रान्तियों में भी जब कभी अधिकार प्राप्ति के लिये विद्रोही संघर्ष का अवसर आया, तब सदा यह पाया गया कि वही क्रान्तियाँ सफल हुईं जो सदैव आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील रहीं और कटिबद्ध होकर वीरता के साथ विरोधी दल को दबाती गईं । वे विपक्षियों को थोड़ी देर के लिये भी चैन नहीं लेने देती थीं । जब जब सफल विप्लवी विद्रोह आरम्भ हुआ तब तब क्रान्तिकारी इस बात की प्रतीक्षा नहीं करते थे कि पहले विपक्षी दल हा उन पर आक्रमण करें । वे स्वयं ही पहले आक्रमण एकाएक करते थे । विद्रोही प्रतिरोध आरम्भ होने पर वे समय नहीं खोते थे । क्रान्तिकारी लगातार आक्रमणकारी नीति जारी रखते थे । वे विपक्षियों को संगठित होने या सुस्ताने का अवसर नहीं देते थे ।

इसके साथ ही क्रान्ति का कोई खास केन्द्र नहीं मानते थे । जब एक स्थान पर विप्लवी विद्रोह आरम्भ हो जाता था तो वे सदा इस बात का प्रयत्न करते थे कि सब जगहों पर वह शुरु हो जाय । यदि

विरोधियों की शक्ति किसी स्थान पर बढ़ी-चढ़ी होती थी तो वे अपनी सारी शक्ति उसी जगह नहीं नष्ट करते थे बल्कि जहां सफलता की आशा होती थी वे वहां जुट जाते थे । पूरे देश को कार्य-क्षेत्र मानकर वे पूरी शक्ति लगाकर संघर्ष में लग जाने थे । किसी विशेष स्थान की विजय या पराजय से वे सारे आन्दोलनों की सफलता या असफलता नहीं मान लेते थे ।

ऐसे विद्रोही संघर्ष के लिए अंग्रेजी में इंजरेक्शन (Insurrection) शब्द का प्रयोग होता है । हिन्दी में इसे सशस्त्र विद्रोह या विप्लवी विद्रोह कहना ठीक है ।

सशस्त्र विद्रोह के सम्बन्ध में इटली के स्वर्गीय नेता मैज़िनी की प्रेरणा से "यंग इटली" नामक क्रान्तिकारी दल सक्रिय था । वह अपने विचारों को बहुत सूक्ष्म दृष्टिकोण से प्रकट करता था । उस पार्टी का यह विचार था कि "सशस्त्र विद्रोह" तथा विप्लव में अन्तर होता है । विद्रोह तभी सफल हो जाता है जब क्रान्ति की सफलता का आरम्भ होता है। उसकी विचारधारा के अनुसार विदेशी शासन से छुटकारा पाने की प्रबल इच्छा जिन राष्ट्रों में होती है उनकी स्वतन्त्रता युद्ध की सफलता के लिये छापेमार जत्थों द्वारा "सशस्त्र विद्रोह" अच्छा उपाय होता है । विद्रोह के आरम्भ में जिन बातों की जरूरत होती है उनमें सेना की आवश्यकता की पूर्ति इसी उपाय से हो सकती है । विरोधी शक्ति या शासन के सैनिकों की संख्या जब बहुत बड़ी होती है तब भी इस प्रकार के छापे मारने वाले उपाय से, विद्रोहियों का काम थोड़ी संस्था से भी चल सकता है । इससे जनता में सैनिक-भावना उत्पन्न होती है और राष्ट्रीय भूमि के विभिन्न भागों में सैनिक कार्यों की स्मृति बहुत दिनों तक बनी रहती है ।

छापेमार लड़ाई से स्थानीय शक्ति के अनुसार लोगों में सक्रियता आती है । विदेशी सरकार को युद्धकाल की कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं । किसी खास क्षेत्र या मोरचे पर डटकर लड़ने से राष्ट्रीय विद्रोही बचे रहते हैं । छापेमार विद्रोह न तो जल्दी हराया ही जा सकता है और

न कुचला ही जा सकता है।

यंग इटली के सशस्त्र विद्रोह संबन्धी विचार उसी समय सफल हो सकते थे जब शासन के युद्ध सम्बन्धी साधन का विकास आजकल की तरह नहीं हुआ था। उन दिनों वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र एवं विध्वंसकारी साधन इतनी उन्नति नहीं कर पाये थे जितनी इस अणु-युग में। वर्तमान शताब्दी में सशस्त्र विद्रोह तभी सफल हो सकता है जब जनता तथा सेना का पूरा सहयोग हो। उसके इन विचारों में दूसरी कमजोरी भी है। उनके दृष्टिकोण से सशस्त्र विद्रोह सफल होने पर विप्लव आरम्भ होता है। यह गलत है। क्रान्ति तो उसी समय आरम्भ हो जाती है जब लोगों में मानसिक या बौद्धिक मौलिक परिवर्तन होने लगता है। बौद्धिक विद्रोह के ही फल-स्वरूप अवैधानिक कार्य शुरू होते हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ते बढ़ते विद्रोह का रूप धारण करता है। सशस्त्र विद्रोह तो विप्लव में एक महत्वपूर्ण संघर्ष होता है।

इस विषय में ७ नबम्वर सन् १९१७ के प्रवदा नामक समाचार पत्र में लेनिन ने अपना विचार प्रकट किया था। उसका मतलब इस प्रकार है—"सशस्त्र-विद्रोह एक खास तरह का राजनीतिक संघर्ष होता है। उसके खास खास कायदे तथा नियम होते हैं। इस पर विशेष ध्यान देना जरूरी होता है। कार्लमार्क्स ने अपनी धारणा को साफ साफ शब्दों में लिखा है। 'सशस्त्र विद्रोह भी वैसी ही कला है जैसा युद्ध'। मार्क्स ने इस कला के मुख्य मुख्य नियमों को इस प्रकार लिखा है—किसी को विप्लवी विद्रोह के साथ खेल नहीं करना चाहिये। इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि यदि यह एक बार आरम्भ होवे तो अन्त तक निबाहा जाय"।

२. किसी खास समय किसी खास स्थान पर क्रान्तिकारियों को अधिक संख्या में इकट्ठा होना चाहिए, अन्यथा अधिक तैयार तथा संगठित विपक्षी द्वारा संघर्ष में विप्लवियों को दबा दिये जाने का भय सदा बना रहता है।

३. विद्रोह एक बार आरम्भ हो जाने पर अधिक से अधिक वीरता के साथ संघर्ष को आगे बढ़ाना चाहिए। बिना शर्त तथा हिचकिचाहट के

आगे ही बढ़ना चाहिए ।

४. प्रत्येक विप्लवी को शत्रु पर एकाएक आक्रमण ऐसे समय पर करना चाहिए जब विपक्षी का दल अलग अलग बट गया हो ।

५. विप्लवियों को प्रतिदिन कुछ सफलता प्राप्त करनी चाहिए । यदि एक शहर की बात हो तो प्रत्येक घंटे में कुछ विजय होनी चाहिए । विप्लवी दल में जिस तरह भी हो अनुशासन अवश्य कायम रखना चाहिए ।

सशस्त्र विद्रोह के सम्बन्ध में मार्क्स तथा लेनिन के पहले ही फ्राँसीसी क्रान्ति के नेता दांते ने जो विप्लवी विद्रोह सम्बन्धी कला के सर्वश्रेष्ठ विद्वान समझे जाते थे, यह बतलाया था कि वैसे विद्रोह के अवसर पर वीरता, साहस, वहादुरी का भाव तथा नीति ही सफल होती है । मार्क्स ने भी इसी सिद्धान्त "साहस," "वीरता," "बहादुरी" को दुहराया ।

इस दृष्टिकोण से विचार करने पर आयरलैंड के डब्लिन विद्रोह में डिवेलरा, माइकेल कालिंस आदि आयरिश जनतन्त्र सेना के नेताओं का साहस तथा कौशल यूरोप की क्रान्ति सम्बन्धी इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा । ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उस विद्रोह को उस समय तो दबा दिया परन्तु वहाँ के लोगों को उसकी सफलता दो ही चार वर्ष बाद मिली ।

भारत में हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्र सेना (तथा संघ) और बंगाल में "बंगाल वालेन्टियर" अनुशीलन युगान्तर नामक गैर कानूनी गुप्त विप्लवी पार्टियों के अनेकों प्रयास संसार के विप्लवी संघर्ष के इतिहास में साहस, वीरता तथा अनुशासन के दृष्टिकोण से अमर रहेंगे ।

रूसी क्रान्ति के समय अक्टूबर सन् १९१७ में इन उपायों से विप्लवियों ने काम लिया । उन्होंने एक ही साथ अचानक और तेजी के साथ पेट्रोग्रेड पर अन्दर तथा बाहर से आक्रमण किया । केन्द्रीय टेलीफोन आफिस, टेलीग्राफ कार्यालय, रेलवे स्टेशन तथा पुलों पर एक ही बार सहसा आक्रमण हुआ ।

विद्रोह सम्बंन्धी वैसे नियमों के विषय में लेनिन ने सितम्बर सन् १९१७ में अपनी पार्टी के केन्द्रीय कमेटी को निम्नलिखित आदेश एक पत्र के रूप में भेजा था । जहां मार्क्स ने सशस्त्र विद्रोह को एक कला

बतलाया है, वहीं साफ साफ शब्दों में उन्होंने यह लिख दिया है कि विजय संघर्ष द्वारा होनी चाहिए और फिर हम लोगों को विपक्षी पर एक क्षण के लिए भी आक्रमण बन्द न करते हुए तथा उनकी भूल चूक से लाभ उठाते हुए विजय के बाद विजय प्राप्त करनी चाहिए।

१. सशस्त्र विद्रोह को सचमुच सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी षड़यन्त्र या एक पार्टी पर आश्रित न हो बल्कि किसी क्रान्तिकारी वर्ग पर अवलम्बित हो।

२. सशस्त्र प्रतिरोध को जनता के क्रान्तिकारी भाव तथा उसके उद्-गार पर भरोसा रखना चाहिए। अर्थात् जब जनता में क्रान्तिकारी मनोवृत्ति अच्छी तरह जागृत होती है तब उसकी सफलता की बहुत आशा रहती है।

३. बढ़ती हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को ऐसी अवस्था में विद्रोह शुरू करना चाहिए जब जनता के नेताओं का कार्य खूब बढ़ा चढ़ा हो, जब शत्रु के दल में गड़बड़ी तथा कमजोरी हो और जब क्रान्ति के कमजोर तथा हिचकिचाने वाले शुभचिन्तकों में भी पूरी शक्ति तथा उत्साह हो। यदि तीनों बातें हों, तो सशस्त्र विद्रोह को कला न मानना क्रान्ति के विषय में भूल करना है।

उक्त बातें ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध सशस्त्र विद्रोह से रहता है। सभी विप्लवों में इसका अवसर नहीं आता है। ऐसी भी क्रान्तियाँ होती हैं जिनमें सशस्त्र विद्रोह नहीं होता है।

सशस्त्र क्रान्ति में विद्रोही-प्रतिरोध आरम्भ हो जाने पर जब असल अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न होने लगता है, तब सदा गवर्नमेंट उसे हर प्रकार से कुचल देने का प्रयत्न करती है। ऐसी दशा में क्रान्तिकारियों की तरफ से भी किसी किसी क्रान्ति में शारीरिक शक्ति का प्रयोग होता है। परन्तु पहले रक्तपात प्रायः सरकार ही की तरफ से आरम्भ होता है। उसके बाद क्रान्तिकारी दल कभी कभी उसी तरह से उत्तर देता है। सशस्त्र क्रान्तियों का इतिहास देखने से पता चलता है कि उनकी सफलता के लिए प्रायः नीचे लिखी बातें अनिवार्य होती हैं। (१) राजनीति में पारंगत

नेता तथा विप्लवी दल (२) युद्ध पारंगत नेतृत्व (३) गुप्तचर विभाग (४) क्रान्ति-विरोधी सरकार के प्रति पूरा असन्तोष।

विप्लव के लिए राजनीतिक पांडित्य की आवश्यकता विप्लवी अच्छी तरह समझते हैं। इसका प्रमाण कई देशों में मिलता है। चीन के उत्तरी भाग में विप्लवियों ने अपने दल की शिक्षा के लिए जो पाठ्यक्रम बनाया उसमें सैनिक ज्ञान के साथ साथ उन्होंने अन्य विषयों पर भी विशेष ध्यान दिया। राजनीतिक ज्ञान, चीनी क्रान्ति की समस्यायें, राजनीतिक अर्थशास्त्र, दल-संगठन, चीनी जनतन्त्र की समस्या, प्रजातन्त्र का ऐतिहासिक आधार, सैनिक शिक्षा आदि मुख्य विषय थे। जब उनके कार्य सशस्त्र विद्रोह से बढ़कर गृह युद्ध का रूप धारण करने लगे तब उन्होंने इन बौद्धिक बातों के अतिरिक्त व्यवहार सम्बन्धी कार्यों पर भी बहुत जोर दिया। साधारण कृषकों से कोई सामान न छीना जाय, और जो वस्तु राजे, ताल्लुकेदारों, मिलमालिकों, पूँजीपतियों आदि से छीने जायँ, वे तुरन्त विप्लवी सरकार के सुपुर्द कर दिये जायँ अर्थात् कोई सदस्य या सैनिक मनमाने ढंग से अथवा अपने मन से उन चीजों को इस्तेमाल न करे। दल के सदस्यों तथा सैनिकों के लिये यह आदेश था कि १. यदि किसी के घर में ठहरना पड़े तो घर छोड़ते समय दरवाजे बन्द कर दिये जायँ ताकि घर के मालिक को हानि न हो। २. यदि किसी की चटाई पर भी कोई सोया हो तो उस चटाई को लपेटकर उसके मालिक को वापस कर देना चाहिए। ३. जनता की सहायता प्रेमपर्वक करनी चाहिए। ४. उधार लिया हुआ पदार्थ वापस होना चाहिए। ५. यदि कोई वस्तु टूट या नष्ट हो जाय तो उसके बदले वैसी ही दूसरी चीज देनी चाहिए। ६. कृषकों तथा साधारण लोगों के प्रति पूरी ईमानदारी होनी चाहिए। ७. जो पदार्थ खरीदा जाय, उसका मूल्य चुकाना चाहिए। ८. सब लोगों को साफ रहना चाहिए।

उपरोक्त बातों के बारे में भारतीय विप्लवी भी बहुत सतर्क थे। उनकी ईमानदारी के प्रमाण अनेकों बार लोगों को मिले हैं। हजारों रुपये उधार लेकर ठीक समय पर वापस कर दिये जाते थे। किन्तु विप्लवी दल के नाम पर कभी कभी धूर्त और गैर-जिम्मेदार व्यक्ति उसके उल्टा

ही करते थे जिससे निर्दोष गुप्त विप्लवी दल बदनाम होते थे। कहने का मतलब यह है कि भारत, चीन या आयरलेंड में, विप्लवी दल जनता के साथ ईमानदारी के साथ व्यवहार करते थे, किन्तु साम्राज्यवादी या पूँजीवादी शक्तियों के साथ उनका व्यवहार दूसरे प्रकार से होता था।

प्रत्येक क्रान्ति में नेताओं को बुद्धिमान तथा अनुभवी होना आवश्यक होता है। किसी भी आन्दोलन का नेतृत्व यदि ठीक न हो तो सफलता नहीं हो सकती है। उच्च कोटि के नेता ही यह निश्चय कर सकते हैं कि किस परिस्थिति में विपक्षी के साथ किस नीति से काम लेना चाहिए। कैसी हालत में बल, कैसी दशा में कल तथा किस समय भेद नीति से काम चल सकता है। यदि नेता राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन को समझकर अपनी नीति समयानुकूल निश्चित करते हैं, समय के परिवर्तन को समझते हैं तथा उसके अनुसार उपयुक्त या अनुपयुक्त समय का निर्णय करते हैं तो वे अपने अनुयायियों को सफलतापूर्वक क्रान्ति के ध्येय की तरफ ले जा सकते हैं अन्यथा उनके आन्दोलन में दुर्बलता उत्पन्न हो जाती हैं। इससे संघर्ष विफल हो जाता है।

जिस प्रकार राजनीति-पारंगत तथा व्यवहार-कुशल होना आवश्यक है उसी तरह सशस्त्र विप्लव के नेता या सेनापति को युद्ध पारंगत होना भी जरूरी होता है। उसमें तो सैनिक कर्यों की भी सम्भावना होती है। अतः उन्हें युद्धकला से परिचित होना अनिवार्य होता है। इस दृष्टि से संसार के क्रान्तिकारियों में राजनीति के ज्ञान के साथ ही युद्ध विद्या की जानकारी में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का सर्वश्रेष्ट स्थान है। उन्हों ने तो एक सेना ही सैनिक साधनों के साथ खड़ी कर लिया था।

विप्लवियों के साधन सीमित होने पर भी सशस्त्र विद्रोह में विप्लवी प्रायः निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखते थे—

१. जब शत्रु आगे बढ़ता था तब वे पीछे हटते थे। २. जब शत्रु रुकते या विश्राम करते थे, तब उन्हें परेशान किया जाता था। ३. जब शत्रु लड़ना नहीं चाहते थे तो उस पर हमला होता था।

इन सब बातों के साथ ही गुप्तचर विभाग की बहुत आवश्यकता

रहती है। अपनी गति को विपक्षी से छिपा कर विपक्षी की चाल का पूरा तथा ठीक-ठीक पता रखना उस विभाग का मुख्य कार्य होता है। इस के साथ ही अपने पक्ष के कमजोर या संदिग्ध व्यक्तियों की देख-रेख रखने की जिम्मेदारी होती है, ताकि विश्वासघात के लिए मौका न मिले विपक्षी का बल उतना घातक नहीं सिद्ध होता है जितना अपने पक्ष का विश्वासघात हानिकारक होता है। अतः विप्लवी संगठन में योग्य गुप्तचर विभाग का दृढ़ संगठन बहुत आवश्यक होता है।

विश्व विख्यात क्रान्तियों के सफल विद्रोह से प्रायः नीचे लिखी बातों का ज्ञान होता है।

१. क्रान्तिकारियों को जहाँ तक सम्भव था वहाँ तक वे विरोधी शक्तियों की संगठित सेना या दल से आमने सामने की लड़ाई नहीं लड़ते थे। जब तक उन्हें सफलता की आशा नहीं हो जाती थी तब तक वे डट कर सामना नहीं करते थे।

(२) यदि क्रान्ति की रक्षा के लिये विद्रोही संघर्ष अनिवार्य होता था तो वे एकाएक आक्रमण करते थे। वे एक जगह पर मोर्चा बनाकर लड़ना विप्लवी संगठन के लिये घातक समझते थे क्योंकि उनके पास न तो कोई बड़ी संगठित सेना होती थी और न पीछे से सामान तथा अन्य आवश्यकीय पदार्थ पहुँचाने के लिए सुसंगठित साधन रहते थे। मोर्चा वाली लड़ाई में सरकारी सेना को लाभ होता है क्योंकि उसके पास हर प्रकार के साधन रहते हैं। इसी से विप्लवी मोर्चा नहीं बनाते थे।

(३) जहाँ कहीं आक्रमण करना पड़ता था वहाँ वे पीछे हटने और अपनी रक्षा की योजना पहले बना लेते थे। इस संघर्ष में जहाँ लापरवाही हुई वहाँ उनकी घातक पराजय हुई।

(४) यदि संयोगवश कहीं विद्रोहियों को डटकर लड़ना अनिवार्य हो जाता था तो वे अपनी संख्या शत्रु की अपेक्षा बढ़ाकर लड़ने का प्रयत्न करते थे। यदि कहीं उनके शत्रु विश्राम करते थे या उनमें आलस्य रहता था तो विद्रोही मामूली संख्या होने पर भी आक्रमण करते थे। किन्तु वे सफल तभी होते थे जब उनका हमला बहुत तेजी से अनुशासन में होता

था । कभी कभी तो विप्लवियों की संख्या चार पाँच सौ ही रहने पर भी वे हजारों शत्रु-सैनिकों को हरा देते थे । ऐसी सफलता उस हालत में मिलती थी जब वे अकस्मात तेजी, साहस, दृढ़ संकल्प तथा पूर्व निश्चित योजना के साथ शत्रु के कमजोर स्थान पर आक्रमण करते थे। शत्रु की अपेक्षा कम संख्या होने पर विजय के लिए उपरोक्त बातें अनिवार्य होती थीं ।

(५) विद्रोही सैनिकों में जल्दी जल्दी शीघ्रतापूर्वक आगे-पीछे, दायें-बाँयें, बढ़ने-हटने या भागने की योग्यता से वे किसी जगह विवश हो फंस जाने पर भी अपना बचाव प्रायः कर लेते थे । शत्रु की शक्ति का ठीक ठीक ज्ञान न होने पर वे कभी कभी बुरी तरह घिर जाते थे परन्तु उपरोक्त गुण रहने पर वे अपनी रक्षा किसी प्रकार कर लेते थे ।

(६) पूरब आक्रमण करने का भ्रम विरोधियों में पैदा कर पश्चिम आक्रमण करने वाली नीति प्रायः विप्लवियों को सफल बनाती थी ।

(७) जैसे फरार विप्लवी प्रायः दिन रात में कई जगह अपना स्थान बदलते हैं उसी तरह क्रान्तिकारी सैनिक अपना स्थान जल्दी-जल्दी बदलते थे । इससे विरोधी शक्तियों को उन्हें कुचलने के लिये जल्दी अवसर नहीं मिलता था ।

(८) विप्लवी अपनी सैनिक शक्ति तथा गुप्तचर विभाग खूब सक्रिय तथा संगठित रखते थे ।

(९) सब से विशेष बात विप्लवी विद्रोह के लिये यह होती थी कि जनता की सहानुभूति उनके साथ रहती थी ।

विप्लवी विद्रोह सम्बन्धी उपरोक्त बातें युद्ध-कला समान जान पड़ती हैं । यह बिलकुल ठीक है । यह तो इस पिषय पर विचार आरम्भ करते समय ही साफ-साफ लिखा गया था कि जैसे युद्ध कला तथा विज्ञान दोनों होता है वैसे ही विप्लवी सशस्त्र विद्रोह सम्बन्धी कला भी होतो है । इसके बारे में ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देने से और राजनीतिक तथा सैनिक ज्ञान के दृष्टिकोण से विचार करने पर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस संसार के विप्लवियों के इतिहास में अमर रहेंगे । अमेरिकी, फ्रांसीसी, चीनी

तथा रूसी विप्लव के संचालकों के कार्य नेताजी और आजाद हिन्द फौज की वीरता तथा कार्य क्षमता के सामने फीके पड़ जाते हैं।

यहाँ यह चर्चा कर देनी ठीक होगी कि नेताजी कांग्रेस नेता होने के पहले गुप्त विप्लवी दल के संपर्क में थे। उनके मस्तिष्क में भारतीय विप्लवियों के सिद्धान्त तथा कार्य-प्रणाली की छाप अन्त तक थी। भले ही कांग्रेस की शान्तिमय नीति को अपनाने के बाद वह विप्लवी दल के सक्रिय सदस्य न हों, किन्तु उनकी सहानुभूति वैसी पार्टियों के प्रति थी। उन पर बंगाल वालेन्टियर तथा हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्र संघ नामक गुप्त विप्लवी दलों की विचारधारा का प्रभाव अन्तिम समय तक था। उसी के फल-स्वरूप द्वितीय साम्राज्यवादी महायुद्ध के अवसर पर उनके सिद्धान्तों का जो विस्फोट हुआ उससे संसार तथा भारत अच्छी तरह परिचित है।

विप्लवी सशस्त्र विद्रोह कला होता है। यहां एक और प्रश्न उठता है। यदि यह कला है तो विप्लव तथा उसके विद्रोह में आतंकवाद का स्थान क्यों रहता है। जो अहिंसा का पुजारी होता है उसके लिये विप्लवी हिंसात्मक या सशस्त्र विद्रोह तथा आतंकवाद दोनों अत्यन्त अनुचित होते हैं। किन्तु संसार में ऐसे भी सिद्धान्तवादी हैं जो यह कहते हैं कि मानव जाति को परतन्त्रता से मुक्त कर उसे शोषण, दरिद्रता तथा कष्ट से बचाने के अभिप्राय से शोषण तथा परतन्त्रता कायम रखने वाले कुछ कुटिल एजेन्टों या दलालों के विनाश से पूरे समाज के शोषण का अन्त जल्दी होने की बहुत सम्भावना रहती है। यदि इससे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये वातावरण तैयार होता हो तो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामन्तशाही ऐसे शोषण तथा प्रति-क्रियावाद के आततताई एजेन्टों का नाश मानव समाज के लिये लाभप्रद हो सकता है।

द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय (इन्टरनेशनल) के एक लेख के उत्तर में ट्राटस्की ने अपने लेख द्वारा आतंकवाद का समर्थन इस प्रकार किया था—"यदि जनता का दुख और शोषण किसी अत्यन्त कठोर उपाय से कम होता हो तो वैसा उपाय भी बहुत ही दयालु समझना चाहिये।"

वैसे विप्लवियों का यह विचार है कि परतन्त्र देश में विदेशी

शासन के प्रतिकूल आतंकवाद का एक युग अवश्य आता है । उस समय आतंकवाद से विदेशी शासकों में आत्मविश्वास तो घटता ही है साथ ही विदेशी शासन की कड़ी जंजीरें कुछ ढीली होती हैं। शासकों में भय होने से उनकी नैतिकता गिरती है । स्वाधीनता-आन्दोलन के कार्यकर्ताओं तथा जन-साधारण में आत्मविश्वास, साहस, बलिदान तथा मातृभूमि के लिये सर्वस्व न्योछावर करने का भाव बढ़ता है । क्रान्ति तथा स्वाधीनता संघर्ष की सफलता के लिये वातावरण तैयार होता है । एक प्रकार से विप्लव की प्रारम्भिक अवस्था आतंकवाद का रूप धारण करती है ।

जिन जिन देशों में विप्लव हुए उनमें लगभग सब जगह क्रान्ति सफल होने के पहले आतंकवाद का युग आया । यदि बीसवीं शताब्दी के चीन, रूस तथा आयरलैण्ड के उदाहरण छोड़ भी दिये जायँ तब भी भारत में भी यहाँ के विप्लवी कार्यों से उपरोक्त बातों की पुष्टि होती है । भारतीय क्रान्तिकारियों का विश्वास था कि आतंकवाद स्वयं कोई ऐसा साधन नहीं होता है जिससे क्रान्ति हो जाय । फिर भी अपने बलिदान तथा साम्राज्यवाद या पूँजीवाद के अत्याचारी एजेन्टों को न्याय का पाठ जब तक उसी ढंग से पढ़ाने से जिस प्रकार वे क्रान्तिकारी या प्रगतिशील राष्ट्रीय शक्तियों को निर्मम हत्या द्वारा कुचलने का प्रयत्न करते हैं, पराधीन राष्ट्र में आत्मविश्वास बढ़ता है तथा स्वतन्त्रता के लिये सर्वस्व न्योछावर के लिये प्रेरणा मिलती है । विप्लव के लिये अनुकूल वातावरण तैयार होता है । इससे यही प्रकट होता है कि वे स्वयं तो क्रान्तिकारी थे किन्तु उनकी यह धारणा थी कि विप्लव सफल बनाने के लिये आतंकवाद कभी कभी अनिवार्य होता है ।

महात्मा गांधी तथा काँग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय क्रान्ति हुई है और भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ है । किन्तु १९४२ के पहले अखिल भारतीय गुप्त विप्लवी दल (हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्र संघ तथा उसका सैनिक संगठन हिन्दुस्तान सामाजवादी जनतन्त्र सेना) और बंगाल की प्रान्तीय गुप्त पार्टियों द्वारा चलाये गये विप्लवी आन्दोलनों की उल्लेखनीय देन भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष में है । १९४२ के क्रान्तिकारी आन्दोलन

में भी हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारियों का कुछ हाथ था। काँग्रेस के अनुशासन में एक तरफ गांधीवाद के समर्थक अहिंसात्मक उपायों से विदेशी सरकार को मिटाने में लगे थे तो दूसरी तरफ उनके साथ या पीछे उपरोक्त विप्लवी दल तथा उसके नेताओं रामप्रसाद विस्मिल, रोशन सिंह, अशफाकउल्ला, सरदार भगतसिंह, सेनापति चन्द्रशेखर आज़ाद आदि शहीदों की प्रेरणा से उसके सदस्य तथा अन्य युवक विदेशी सरकार तथा साम्राज्यवाद की सत्ता दूसरे प्रकार के उपाय से मिटाने में संलग्न थे। उस दल की चर्चा इतिहास लेखक श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भारत के इतिहास में किया है। सारांश यह है कि भारतीय क्रान्ति सफल होने के पहले वैसा आन्दोलन चला और १९४२ के विद्रोह में भी उसका हाथ था।

अब यह देखना है कि क्रान्ति में विद्रोह के बाद राजनीतिक सत्ता क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथ में आने पर विप्लव द्वारा उस अधिकार का प्रयोग पूरे राष्ट्र की भलाई के लिये कैसे होना चाहिए। अधिकार बड़ा अच्छा तथा कभी कभी बुरा भी होता है। स्वयं यह बुरा नहीं है। वह तो एक साधन होता है। उसका प्रयोग करने वाले व्यक्ति या संगठन यदि लोकतन्त्र से प्रेरित होते हैं तथा समाज के हित के लिये प्रयत्नशील होते हैं, तो कभी कभी भूल होने पर भी अधिकार मानव समाज के लिए लाभदायक रहता है। अगर वही स्वार्थी व्यक्तियों या प्रगतिविरोधी संगठन के हाथ में रहता है तो जनता को बड़ी हानि होती है। इससे अधिकार तथा अधिकार की इच्छा के बारे में सतर्क रहने से ही प्रजातन्त्र या जनतन्त्र द्वारा मानव समाज की भलाई अधिक हो सकती है।

इसके सम्बन्ध में इस वात को साफ साफ समझ लेना चाहिये कि यदि किसी एक दल के हाथ से राजनीतिक अधिकार निकलकर दूसरे के हाथों में जाय तो यह निश्चित नहीं होगा कि उससे जनता का अधिकार बढ़ेगा ही। कभी-कभी तो इसके उलटा होता है। जैसे जर्मनी में प्रजातन्त्रात्मक पार्टियों के हाथ से अधिकार निकला और नाजी पार्टी के अधिकार वढ़े। उससे केवल राजनीतिक परिवर्तन हुआ। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा सैनिक मनोवृत्ति अधिक प्रबल हुई। इससे क्रान्ति-

विरोधी शक्तियाँ दृढ़ हुईं । जनता के अधिकार छिन जाने के साथ ही उसका अहित भी हुआ। इससे उसे प्रति-क्रान्ति (Counter Revolution) कहना चाहिए ।

इसके उलटा यदि सब लोगों के अधिकार बढ़ें और राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था में कोई मौलिक आमूल परिवर्तन हो तो उसे क्रान्ति समझना चाहिये । यदि सामाजिक संगठन में साधारण परिवर्तन हो परन्तु एकतन्त्र या परतन्त्रता को नाश कर उसके बदले जनतन्त्र स्थापित हो तो उसे भी क्रान्ति ही मानना चाहिये। उससे जनता के अधिकार बढ़ते हैं तथा उसकी भलाई होती है ।

इससे यह प्रकट होता है कि यदि समाज के अधिक से अधिक सदस्यों के लिए अधिकार बढ़ता है तो वह क्रान्तिकारी होता है । कोई भी दल, परिवर्तन अथवा अधिकार तभी क्रान्तिकारी हो सकता है जब वह प्रगतिशील होगा और उससे जनसाधरण की भलाई तथा अधिकार बढ़ेगा । इससे विद्रोह द्वारा विप्लव में क्रान्तिकारी संगठन के हाथ में अधिकार आने पर भी यह देखना चाहिए कि उसका प्रयोग कैसे हो रहा है । वहाँ ऐसा तो नहीं हो रहा है कि सर्वसाधारण जनता का अधिकार या हित कम होता है और उसका नाम लेने वाला कोई व्यक्ति, गुट या दल अधिकार-लिप्सा में मानव गुणों की अवहेलना करता है ।

कुछ भी हो । चाहे कोई व्यक्ति, संगठन, दल या समूह क्रान्तिकारी हो, अथवा कोई प्रतिक्रियावादी हो—दोनों को ही अधिकार की आवश्यकता या इच्छा स्वाभाविक ही होती है । अधिकार की इच्छा प्राकृतिक होने का मुख्य कारण यह होता है कि समाज या व्यक्ति द्वारा जिस कार्यक्रम को पूरा कराने की आकांक्षा किसी मनुष्य में होती है उसे चलाने के लिए अधिकार से विशेष सुविधा मिलती है । मानव प्रकृति में ऐसी इच्छा अवश्य होती है । जो मनुष्य जितना ही सक्रिय होता है उसमें प्रायः इसकी इच्छा उतनी ही अधिक होती है । यदि किसी बात की भी इच्छा हो और उसकी पूर्ति न हो तो स्वभावतः उसे पूरा कराने के अभिप्राय से अधिकार के लिए किसी न किसी प्रकार की आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है ।

यदि किसी अदमी को अपने पड़ोसी या किसी जीव के प्रति स्नेह रहता है तो उसे सुखी देखने या रखने के लिए प्रायः स्नेह करने वाले व्यक्ति में अधिकार की लालसा पैदा होती है। ऐसे ही सब अच्छे कार्यों को पूरा कराने के लिये अधिकार की आकांक्षा मनुष्य में हो सकती है। बुरे कामों के लिए भी आदमी अधिकार चाहता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि स्वयं इसकी इच्छा ही बुरी है। यदि लक्ष्य उत्तम हों तो अधिकार की इच्छा होनी अच्छी ही है।

विप्लवी विद्रोह सफल होने पर अथवा किसी प्रकार के अन्य आन्दोलन द्वारा क्रान्तिकारी शक्तियों के हाथों में राजसत्ता आने के पहले या बाद अधिकार की आकांक्षा दो प्रकार की होती है। एक प्रकार की आकांक्षा किसी ध्येय की प्राप्ति के लिए अधिकार की इच्छा होती है। अर्थात् लक्ष्य पूर्ति उद्देश्य होता है और अधिकार साधन होता है। दूसरे प्रकार की इच्छा स्वयं अधिकार प्राप्त करने ही के लिए होती है। ऐसी दशा में अधिकार की आकांक्षा स्वयं लक्ष्य या साध्य होती है। जिस किसी में ऐसी मनोवृति होती है वह अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अनुचित उपाय भी अपनाता है। जिस मनुष्य में उत्तम ध्येय की प्रेरणा होती है वह अधिकार के लिए अनुचित या स्वार्थी उपाय का प्रयोग नहीं करता है वह जनहित तथा उचित मार्ग ही के लिए प्रयत्नशील रहता है।

उत्तम लक्ष्य तथा उचित साधन अथवा उसके लिए अधिकार की आकांक्षा प्रायः उस व्यक्ति या दल में होती है जो सचमुच समाज के अवगुणों को दूर कर उसमें तथा मनुष्य रूपी समाज के सदस्यों में मानव गुण के उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील होता है। इससे विप्लव में विद्रोह सफल होने पर जब समाज के पुनर्संगठन का कार्यक्रम आरम्भ होता है तब सामाजिक गुणों में आमूल परिवर्तन के साथ ही मानव गुणों का विकास अनिवार्य होना चाहिए। असल में मानवगुण ही सामाजिक गुण का आधार होता है। इससे व्यक्ति या मानवगुण का उत्कर्ष समाज के गुण के मौलिक परिवर्तन के लिए आवश्यक होता है।

इसके साथ ही मानव जीवन की महत्ता जिन सिद्धान्तों तथा परि-

वर्तनों से बढ़े वही क्रान्ति के असल आधार हो सकते हैं । जीवधारी प्राणियों के हित, विकास एवं उत्थान के लिए सब अच्छे काम किये जाते हैं । इस संसार में मानव प्राणी उनमें सबसे अधिक उपयोगी तथा बुद्धिमान है । इससे मनुष्य तथा मानवता का उत्थान सर्वश्रेष्ट लक्ष्य होना चाहिए । केवल भौतिक पदार्थों को पूरा कर देने ही से मानवता का कल्याण नहीं हो सकता है। उसके लिए तो मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास भी अनिवार्य होता है । मानवता के उत्थान के लिए भौतिक सामग्री की प्रचुरता ठीक वैसी ही होती है जैसी मनुष्य के लिये उसका हृष्ट पुष्ट शरीर होता है । किन्तु केवल अच्छे शरीर ही से मानव प्राणी का उत्थान नहीं होता है ।

मानवीय उद्भव के लिये तो शरीर के साथ ही मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक उत्कर्ष भी आवश्यक होता है। जैसे यह बात है वैसे ही मानव समाज की उन्नति तथा सच्ची भलाई के लिए आवश्यकीय भौतिक पदार्थों के साथ ही समाज तथा उसके सदस्यों में मानसिक शक्ति, बुद्धि तथा नैतिकता की प्रचुरता होनी चाहिए ।

इससे उसी मौलिक परिवर्तन को सफल विप्लव मानना चाहिए जिसके द्वारा उपरोक्त विशेषतायें मनुष्य तथा समाज में पर्याप्त मात्रा में बढ़ें । जब क्रान्ति से मानव-गुण की वृद्धि हो तथा मानवता के उत्थान के लिए वातावरण एवं परिस्थिति तैयार हो तभी उसकी सफलता समझनी चाहिए ।

इस दृष्टिकोण से विचार करने पर सफल विप्लवी विद्रोह के बाद यह समस्या सामने आती है कि समाज के लोगों को कैसे नियन्त्रित रखा जाय ताकि दोनों प्रकार से मनुष्य का उत्थान हो । जिस क्रान्ति का लक्ष्य केवल भौतिक पदार्थों की प्रचुरता द्वारा मानव प्राणी का केवल शारीरिक सुख होता है उस विप्लव के संचालक कभी कभी तानाशाही को भी अपना लेते हैं । किन्तु जिस क्रान्ति का लक्ष्य शारीरिक तथा मानसिक (दोनों प्रकार के) सुख तथा विकास होते हैं उस विप्लव में तानाशाही के लिए अवसर नहीं मिलता है ।

वैसे विप्लव में केवल कानून से ही काम नहीं लिया जाता है बल्कि सार्वजनिक भावना जागृत कर लोगों का मत क्रान्तिकारी दल तथा कार्यक्रम के अनुकूल बनाया जाता है। कानून की सफलता तब अधिक होती है जब उसके पक्ष में सर्वसाधारण जनता का मत तथा भावना रहती है। वैसी क्रांन्ति में राजसत्ता विप्लवी दल के हाथों में आने पर कानून पास करने के अतिरिक्त सार्वजनिक सहानुभूति उसके पक्ष में होने या पैदा करने से विप्लव का असल लक्ष्य पूरा होता है।

सार्वजनिक सहानुभूति या भावना उत्पन्न करने के लिये बड़ी डवांडोल परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा परम्परा के आधार पर अवलंबित बुरी रीति-रिवाजों का अन्त विप्लव द्वारा होता है। उनके बदले थोड़े ही समय या वर्षों में बिलकुल नई प्रथायें, रीति तथा सामाजिक नियम इत्यादि बनाने का आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में न तो समाज की पुरानी कुप्रथाओं का समर्थन विप्लवी सरकार के लिए रहता है और न परम्परा की शरण लेकर वह अपने पक्ष में साधारण लोगों को कर सकता है। इससे परिस्थिति असाधारण रहती है।

फिर भी यदि विप्लव के नेतृत्व में योग्यता रहती है तो परम्परा संबन्धी रीति-रिवाजों का अन्त होने पर भी निरंकुश शक्ति का प्रयोग नहीं होता है। क्रान्तिकारी नेता सार्वजनिक सहानुभूति अपने पक्ष में करने में सफल हो जाते हैं। यदि नेतृत्व में अधिनायकतंत्र की मनोवृत्ति रहती है तो बहुमत की साहनुभूति की चिन्ता छोड़ वह पाशविक शक्ति से शासन चलाने लगता है।

विश्व में ऐसा दल भी है जो समाज की उन्नति के लिये विप्लव के बाद सन्धिकाल में दल विशेष या उसके समर्थकों की तानाशाही आवश्यक समझता है। संसार में ऐसे विचार का प्रयोग कार्यरूप में होने पर यह सिद्ध हुआ है कि एक बार तानाशाही स्थापित हो जाने पर शासनारूढ़ दल उसे जारी रखने के लिए कोई न कोई बहाना ढूंढ़ता है तथा तानाशाही के सहारे देश का शासन अपनी स्वेच्छानुसार अपने हाथों में रखता है।

इससे न तो जनतन्त्र को पनपने का अवसर मिलता है और न समाज के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप में अपने नैतिक तथा मानसिक उत्थान के लिए सुविधा मिलती है । किसी सिद्धान्त के नाम पर आर्थिक सुख के लिए तानाशाही द्वारा साधन मिल जाने पर भी लोगों को मानसिक आनन्द प्रायः नहीं रहता है । यदि कुछ रहता भी है तो नाम मात्र लिए होता है । समाज के स्थाई सुख के साथ ही मानसिक आनन्द तथा नैतिक उत्थान भी होना चाहिए । इन तीनों प्रकार के सुख के लिये जन-तन्त्र ही उपयुक्त है। इससे राजनीतिक समानता के साथ आर्थिक बराबरी होनी चाहिए । संसार में जो लोग मानव आनन्द के अभिप्राय से आध्यात्म-वाद को भी समाज के लिए कल्याणकारी समझते हैं उन लोगों के लिए तो तानाशाही अभिशाप होती है ।

ऐसे विप्लव में जिसका लक्ष्य सहकारी या समाजवादी जनतंत्र होता है जब राजसत्ता क्रान्तिकारी दल के हाथ में आती है और वह दल प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्तों के ही आधार पर समाज की उन्नति करना चाहता है तब उसके लिये परिस्थिति विकट रहती है । न तो वह ताना-शाही द्वारा विरोधी लोगों को दबा ही सकता है और न एकाएक थोड़े समय में सारी समस्याओं को हल ही कर सकता है । इससे इस बात की सम्भावना अधिक रहती है कि भ्रमवश या जल्दी में जनता क्रान्तिकारी दल के प्रति असन्तुष्ट हो जाय । ऐसी हालत में उस दल की कार्य कुशलता, दूरदर्शिता, सहनशीलता, योग्यता तथा दृढ़ता की परीक्षा होती है । उसे भी क्रान्तिकारी राज्य की रक्षा के लिये उन शक्तियों को दबाना जरूरी होता है जो विप्लव को असफल बनाना चाहती हैं या जो क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले दल के बदले अपने स्वार्थ के लिये शासन अपने हाथ में लेना चाहती हैं ।

ऐसी दशा में विप्लवी दल उन्हें दबाने के लिये जिस बल का प्रयोग करता है वह नग्न निरंकुश शासनाधिकार नहीं कहा जा सकता है। वैसा अधिकार या शक्ति न तो परम्परा के आधार पर अवलंबित रहती है और न अनियंत्रित रहती है । वैसी शक्ति क्रान्तिकारी बल, उमंग

सद्भावना एवं प्रेरणा होती है । परम्परा के आधार पर रहने वाली शक्ति, अनियंत्रित राज्याधिकार तथा क्रान्तिकारी बल में जो अन्तर होता है वह मनोवैज्ञानिक होता है । यदि परम्परा संबन्धी शक्ति केवल प्राचीन रूढ़ियों के सहारे चलती है तो वह उपयोगी परंपरा का समर्थन नहीं प्राप्त कर सकती है। उसके लिए पुरानी प्रथा से उत्पन्न होने वाला सार्वजनिक आदर भी होना चाहिए।

क्रान्तिकारी बल या शक्ति उसी अवस्था में क्रान्तिकारी अथवा प्रगतिशील होने का दावा कर सकती है जब वह ऐसे समुदाय पर अवलंबित होती है जिसकी एकता प्रगतिशील सामान्य सिद्धान्त, कार्यक्रम तथा लक्ष्य से उत्पन्न होती है। उसके प्रति ऐसी भावना रहनी चाहिये जो किसी सार्वजनिक इच्छा जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता, जनतन्त्र, सहकारी राज्य अथवा समाजवादी जनतन्त्र से पैदा होती है । परम्परा संबन्धी प्रथा की शक्ति तथा क्रान्तिकारी बल में जब संघर्ष हो जाता है तब क्रान्तिकारी शक्ति को विजय के लिए विशेष कठिनाई पड़ती है। फिर भी यह सफल होती है। परन्तु यदि संघर्ष बहुत समय तक चलता है तब विप्लवी शक्ति कभी कभी अनियंत्रित नग्न शक्ति बन जाती है । उससे समाज के सदस्यों या व्यक्तियों को हानी होती है । यदि पुरानी निरर्थक परम्परा जल्दी ही मिट जाती है, तो क्रान्तिकारी शक्ति का अनियंत्रित होने की संभावना नहीं रहती है। निरंकुश होने की आशंका उसी अवस्था में होती है जब विप्लवी दल के सिद्धान्त जनतन्त्रात्मक नहीं रहते हैं।

जिस क्रान्तिकारी दल का सैद्धान्तिक आधार प्रजातन्त्र, सहकारी जनतन्त्र अथवा समाजवादी जनतन्त्र होता है उसके द्वारा अनियंत्रित शक्ति का प्रयोग नहीं हो सकता है। विप्लवी संघर्ष बहुत दिनों तक चलता रहने पर भी प्रजातन्त्रात्मक लक्ष्य रखने वाले दल द्वारा नग्न बल का प्रयोग जनता को दबाने के लिये नहीं किया जा सकता है । जिस दल को तानाशाही क्रान्ति की सफलता के लिए कुछ वर्षों तक आवश्यक जान पड़ती है, वही नग्न शक्ति का प्रयोग प्रायः करता है। उस से जनता को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ भले ही हो जाए, किन्तु राजनीतिक

सफल समझना चाहिये जब उससे केवल राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति न हो, वल्कि मनुष्य सम्बन्धी विचारों में ही मानवीय विशेषताओं की उन्नति के लिये क्रान्ति हो । संगठन, संस्था या राजनीतिक पार्टियों का मौलिक आधार सिद्धांन्त, विचार या आदर्श ही होता है। यदि मौलिक आधार में उन्नति या क्रान्ति न हो और सरकार, संगठन, संस्थायें या प्रथायें बदल जायँ तो उससे सामाजिक नींव में आमूल परिवर्तन नहीं हो सकता है—केवल बाह्य परिवर्तन हो सकता है। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विप्लव तभी सफल तथा स्थायी हो सकता है जब मानव गुणों के सम्बन्ध में दृष्टिकोण ही क्रान्तिकारी हो, मानव विशेषताओं या गुणों का उत्कर्ष हो और उससे संसार के जीवधारी प्राणियों का कल्याण हो । जिस मौलिक परिवर्तन से मानवता की महत्ता बढ़े, मनुष्य की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो तथा उसका हित अधिक हो वही वास्तविक विप्लव होता है ।

इस दृष्टिकोण से विचार करने पर भारतीय कांग्रेस तथा उसके सिद्धान्त, "गांधीवाद" की महत्ता प्रकट होती है । राजनीतिक विचार से भी काँग्रेस का नया लक्ष्य "सहकारी राज्य, समाजवादी व्यवस्था तथा विश्व शान्ति", और उसे प्राप्त करने के साधन, साम्यवाद की अपेक्षा, मानवता के लिए अधिक क्रान्तिकारी है। संसार की क्रान्ति-कला में भारतीय काँग्रेस द्वारा सफलता प्राप्त करने वाली कार्य-प्रणाली से नवीन कला का जन्म हुआ है। विप्लव-कला में भारतीय देन से विश्व लाभान्वित हो रहा है।

भारतीय विप्लव से संसार के विभिन्न राष्ट्रों की क्रान्तिकारी नीति एवं कार्यक्रम पर प्रभाव पड़ता है । यों तो वर्तमान शताब्दी में कई देशों में विप्लव हुए किन्तु सब महत्वपूर्ण नहीं हैं । यहाँ उन्हीं क्रान्तियों की नीति सम्बन्धी विचार-विनिमय कुछ शब्दों में होना चाहिए जिनका विशेष प्रभाव विश्व की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक विचारधारा पर पड़ रहा है । साथ ही भारतीय विप्लव से उनकी तुलनात्मक विवेचना होनी चाहिये । इस अभिप्राय से रूस, चीन तथा भारत के विप्लव उल्लेखनीय हैं ।

रूस में मार्क्सवाद के आधार पर लेनिन के नेतृत्व में विप्लव हुआ। साथ ही मार्क्स के विचारों की नई नई व्याख्या वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी तथा उसके सर्वश्रेष्ट नेता लेनिन द्वारा होती रही। मार्क्सवाद या साम्यवाद रूपी नवीन सिद्धान्त को नई नई परिस्थिति में कार्यान्वित करने का श्रेय लेनिन को मिला।

मार्क्स के लेखों से यह ज्ञात होता है कि समाजवादी या साम्य-वादी विप्लव उन्हीं देशों में हो सकता है जहाँ उद्योग-धन्धा पूरी उन्नति कर चुका हो और श्रमिकों में चेतना पैदा हो गई हो। इससे वैसी क्रान्ति जर्मनी, फ्राँस, इंग्लैंड आदि देशों में ही होनी चाहिए थी। उद्योग-धन्धा का विकास दुनियां के अन्य देशों की अपेक्षा वहाँ सबसे अधिक हुआ था। परन्तु उसके उलटा रूस में साम्यवादी विप्लव हुआ। वहाँ कृषि ही प्रधान थी। लेनिन ने मार्क्सवाद की ऐसी कमजोरियों को अपने तर्क से दूर करने का प्रयत्न किया।

उनके अनुसार विप्लव तभी सम्भव हो सकता है जब वह सशस्त्र हो। समाजवादी या साम्यवादी क्रान्ति के लिये वह मजदूरों का या उनकी पार्टी का नेतृत्व अनिवार्य मानते थे। सर्वाहारा की तानाशाही हो उसके द्वारा पूँजीवाद, पूँजीपति, सामन्तवाद, उसके समर्थक—राजा, नवाब, ताल्लुकेदार, जागीरदार, जमींदार इत्यादि का सर्वनाश हिंसात्मक उपायों से भी हो। कोई दूसरी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक पार्टी न हो। उनका यही मत था। वे अहिंसात्मक, शान्तिमय तथा वैधानिक उपायों से विप्लव होना असम्भव समझते थे।

मनुष्य अपना आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थ हृदय परिवर्तन तथा समझाने बुझाने से भी त्याग सकता है—यह वात उनके मस्तिष्क में आती ही नहीं थी। रूस में साम्यवादी या मार्क्सवादी नेता जिन उपायों से विप्लव असम्भव समझते थे और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को १९३५ तक प्रतिक्रियावादी एवं पूँजीवादी कहते थे उन्हीं उपायों द्वारा भारतवर्ष में स्वाधीनता प्राप्त हुई तथा साम्राज्यवाद का विनाश हुआ। उन्हीं से प्रजातन्त्र की स्थापना के बाद भारतीय जनतन्त्र समाजवादी जनतन्त्र

के रूप में परिवर्तित हो रहा है ।

रूस में वहीं के बादशाह जार के शासन का अन्त करने के लिए सशस्त्र विद्रोह हुआ तथा हजारों लाखों व्यक्तियों की हत्या हुई । भारत में विप्लवी एवं सत्याग्रही आन्दोलन को कुचलने के अभिप्राय से विदेशी शासन द्वारा घोर दमन होने पर भी काँग्रेस आन्दोलन सत्याग्रह के पथ से विमुख नहीं हुई । तब भी यहाँ ब्रिटिश साम्राज्य मिट गया तथा जनतंत्र की स्थापना हुई । इस प्रकार संसार के सबसे बड़े साम्राज्य एवं शक्तिशाली साम्राज्य वाद का सुदृढ़ केन्द्र नष्ट हो गया । उनके बदले विश्व में कई प्रगतिशील लोकतन्त्रात्मक राज्य एवं नवीन जनतन्त्र स्थापित हुए ।

इसके लिए विध्वंसात्मक कार्यक्रम या तोड़-फोड़ होने पर भी भारत में न तो सशस्त्र संघर्ष ही हुआ और न हजारों शासकों एवं उनके समर्थकों की हत्या ही हुई । आन्दोलन करने वाले भारतीय लोगों का बलिदान भले ही हुआ किन्तु अँग्रेजी शासक सुरक्षित रहे । इतने बड़े देश के क्रान्तिकारी संघर्ष में कुछ व्यक्तियों के मरने या मारने से सत्याग्रह तथा उसकी शान्तिमय नीति पर प्रभाव नहीं पड़ा ।

१९४२ के विप्लवी आन्दोलन में भी यह विशेषता थी कि शासन के साधनों को नष्ट किया जाता था परन्तु स्वयं शासकों को मारने के लिए प्रयत्न नहीं होता था । शासन के विगठन के लिए काँग्रेस तथा उसके नेतृत्व में लोग बहुत सक्रिय थे किन्तु शासन के सरकारी कर्मचारियों की हत्या के लिये वे उत्सुक नहीं थे । जहाँ तक हो सकता था वहाँ तक वे रक्तपात एवं हत्या बचाते थे । अंग्रेज शासक तथा उनके सहायक भले ही गोलियाँ चलवाते थे परन्तु आन्दोलन चलाने वाले उनकी हत्या का प्रयास नहीं करते थे । हाँ, शासन के विभिन्न साधनों को नष्ट करने के लिए पूरा प्रयत्न होता था ।

इससे यह ज्ञात होता है कि रूस या अन्य देशों के मार्क्सवादी एवं कम्युनिस्ट पार्टियाँ स्वाधीनता प्राप्ति के अभिप्राय से होने वाले आन्दोलनों की सफलता के लिए जिन उपायों को अनिवार्य समझती थीं उनके प्रयोग न होने पर भी भारत में विदेशी साम्राज्य का विगठन हुआ, स्वतन्त्रता मिली

तथा प्रजातन्त्र स्थापित हुआ ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए कम्युनिस्ट भले ही अनुचित साधन का भी प्रयोग ठीक समझते हों किन्तु गांधीवाद, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस तथा उनके समर्थक अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति के अभिप्राय से अच्छे ही साधन का प्रयोग लाभदायक मानते हैं।

रूस में जार का शासन सशस्त्र क्रान्ति द्वारा समाप्त होने पर जमींदारी, ताल्लुकेदारी एवं सामन्तवाद के विनाश के लिये लाखों बालकों, बालिकाओं, स्त्रियों तथा पुरुषों की हत्यायें हुई । पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए अर्थात् सामन्तवाद एवं उसके पृष्टपोपकों के विशेषाधिकार मिटाने के लिए रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में लाखों नर नारियों की हत्यायें हुई । गृह युद्ध हुआ । तब एकतंत्र (ज़ारशाही) के विनाश के बाद सामन्तवाद का अन्त हुआ ।

चीन में भी ऐसा ही हुआ । १९११ में एकतन्त्र का नाश क्रान्ति द्वारा हुआ था । फिर प्रजातन्त्र के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए लगभग पैंतिस वर्ष से भी अधिक समय तक संघर्ष चलता रहा । गृह युद्ध मे देश बर्बाद हुआ । लाखों आदमी मरे । तब भी सामन्तों तथा जमींदारों के आर्थिक विशेषाधिकार रह गये थे । अन्त में वहाँ की वर्गवादी पार्टी द्वारा रूस की सहायता से सामन्तवाद का विनाश १९४९ में हुआ ।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विगठन के बाद शीघ्र ही लगभग पाँच सौ देशी स्वतन्त्र रियासतें बन गई । उनके शासक अंग्रेजी राज्य समाप्त हो जाने पर बिलकुल स्वतन्त्र हो गये । किन्तु उनके हृदय तथा मस्तिष्क को भारतीय राष्ट्रीयता से प्रेरणा मिली । शान्तिप्रिय वार्तालाप, विचार-विनिमय तथा आदान-प्रदान की भावना से वे प्रभावित हुए । एक गोली भी नहीं चलानी पड़ी । देश-प्रेम से हृदय परिवर्तन हुआ । वे अपना अपना स्वाधीन राज्य समपर्ण करने के लिए तैयार हो गए तथा भारतीय जनतंत्र में मिल गए । सामन्तवाद का दुर्ग लोकतन्त्र के आधीन हो गया । इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय विप्लव की दूसरी सफलता हुई । क्रान्ति कला में भारत की यह नई देन हुई ।

उसके बाद राष्ट्रीय क्रान्ति का तीसरा ऋणात्मक कार्यक्रम आरम्भ हुआ। ताल्लुकेदारी, जागीरदारी तथा जमींदारी का उन्मूलन होने लगा। केवल उत्तर प्रदेश में लगभग उन्नीस लाख जमींदारों की भूमि सम्बन्धी अधिकार वैधानिक उपाय से छिन गये। खेत जोतने वाले अपनी ज़मीन के मालिक हो गये। ऐसे अन्य प्रदेशों में भी हुआ।

जब उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी कानून विधान सभा में विचाराधीन था तब एक बार भारत के राजदूत ने स्टालिन से इसकी चर्चा किया। उस पर सोवियत रूस के कर्णधार हँस पड़े। स्टालिन ने वैधानिक ढंग से जमींदारी उन्मूलन को असम्भव समझा। उनका आशय यह था कि लहूलुहान, मारकाट एवं अशान्तिमय उपाय के बिना जमींदार-ताल्लुकेदार अपनी भूमि सम्बन्धी अधिकार कदापि नहीं छोड़ेंगे। किन्तु उनका विचार गलत साबित हुआ। केवल उत्तरप्रदेश में ही नहीं बल्कि भारत के अन्य प्रदेशों में भी शान्तिमय वैधानिक उपायों से जमींदारी उन्मूलन हुआ। इस प्रकार सामन्तवाद के भग्नावेशष का अन्त रक्तपात बिना हो गया। पचासों लाख से भी अधिक जमींदार, ताल्लुकेदार तथा जागीरदार अपने अधिकार से वंचित हो गये। किन्तु रूस या चीन की तरह गृह युद्ध नहीं हुआ। भारतीय राष्ट्रीय विप्लव की यह तीसरी सफलता एवं विशेषता है। उससे क्रान्ति, सम्बन्धी कला में नया विकास हुआ है।

शान्तिमय उपाय से स्वाधीनता की प्राप्ति, जनतन्त्र में स्वतन्त्र रियासतों का सम्मिलन तथा जमींदारी उन्मूलन रूपी सामन्तवाद के विनाश के साथ ही भारतीय विप्लव से पूंजीवाद का नियन्त्रण भी वैधानिक उपायों ही द्वारा प्रारम्भ हुआ। रूसी कम्युनिस्ट पार्टी सामन्तवाद के स्थिर स्वार्थ का अन्त जैसे अशान्तिमय ढंग से सम्भव समझती थी वैसे ही पूँजीवाद के नियन्त्रण एवं नाश के लिए भी वह उन्हीं उपायों को अनिवार्य समझती थी। किन्तु भारत में गान्धीवाद के सिद्धान्तों के अनुसार शान्तिपूर्वक प्रजातन्त्रात्मक ढंग से पूँजीवाद का नियन्त्रण तथा उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण हो रहा है।

भारतीय संसद द्वारा समाजवादी व्यवस्था घोषित होने के बाद इम्पीरियल बैंक तथा जीवन बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण हुआ है। चितरन्जन रेलवे कारखाना, सिन्द्री में खाद फैक्टरी, लोहे की कई फैक्टरियाँ इत्यादि बड़े बड़े उद्योग धंधे भारतीय सरकार के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में चलने लगे। अन्य उद्योग धन्धों पर भी सरकार का पूरा नियन्त्रण हो गया। ये बातें लोकतन्त्रात्मक उपायों से हुई हैं। भारतीय विप्लव की यह चौथी सफलता है। आधुनिक संसार के कम्युनिस्ट इसे पहले असम्भव समझते थे।

सामाजिक व्यवस्था में भी मौलिक परिवर्तन वैधानिक निर्णयों से हो रहे हैं। भारतीय संसद् ने अनेकों ऐसे कानून पास किये हैं जिनसे समाज में आमूल उलट फेर हो रहा है।

इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक मामलों में भारतीय क्रान्ति ऐसे ढंग से उन्नति कर रही है जिन्हें विश्व के क्रान्तिकारी दल विशेषत: कम्युनिस्ट असम्भव समझते थे। इस विप्लव के सिद्धान्त, नीति तथा सफलता से संसार की विप्लवी विचारधारा में संशोधन हो रहा है। स्वयं क्रान्ति सम्बन्धी विशेषता एवं कला में विप्लव हो रहा है।

इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण रूस में स्टालिन के स्वर्गवास के बाद तथा चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के आठवें राष्ट्रीय कॉंग्रेस के निर्णयों के बाद मिलते हैं। सोवियट रूसी कम्युनिस्ट पार्टी अब यह मानने लगी है कि वैधानिक साधन से भी सामाजवादी व्यवस्था स्थापित हो सकती है। उस दल की सारी बातें नहीं मालूम होती हैं। इससे इस विषय में विस्तार की बातें नहीं दी जा सकती हैं।

जहाँ तक चीन के वर्गवादी दल की बात है वहाँ तक उसके आठवें काँग्रेस के विवरण एवं स्वीकृत प्रस्तावों से विषय पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। १९४९ में उस पार्टी के नेतृत्व में जनता ने साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा कर्मचारीतन्त्रात्मक (Bureucratic) पूँजीवाद के प्रतिक्रियावादी शासन को समाप्त किया। उसने चीन की जनता का जनतन्त्र स्थापित किया। उसके बाद दूसरी महत्वपूर्ण सफलता कृषि, हाथ से चलने वाले उद्योग

धन्धों तथा पूँजीवादी उद्योग धन्धों एवं व्यवसायों में समाजवादी परिवर्तन से हुई । चीन की भूमि पर साम्राज्यवाद तथा उसके सहायक-स्वछन्द पूँजीवादी वर्ग का अन्त हो गया।

चीन की राष्ट्रीय पूँजीवादी श्रेणी में भी परिवर्तन हो रहा है। वह शोषक रहने के बदले देश के काम करने वाले लोगों से मिलती जा रही है। सामान्तवाद का अन्त तो पहले ही हुआ था। उसके बाद तुरन्त ही ऐसे जमींदार तथा धनी किसान जो साधारण किसानों का शोषण किया करते थे अब अपने ही श्रम से जीविकोपार्जन करते हैं। इससे उनमें भारी सुधार हो रहा है।

इस प्रकार चीन में शान्तिमय उपायों से पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव सीधे सर्वाहारा की समाजवादी क्रान्ति के रूप में परिवर्तित हो रहा है। चीनी जनता के जनतन्त्र की स्थापना से प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का कार्यक्रम उस देश में पूरा हुआ है और समाजवादी क्रान्ति का युग प्रारम्भ हुआ है। पूँजीवाद के बदले समाजवाद की स्थापना आरम्भ हुई है।

चीनी क्रान्ति के इस परिवर्तन काल में कई विशेष बातें हैं । यह सब को विदित है कि चीन उद्योग धन्धों में पिछड़ा है। वहाँ अब तक कृषि समाज का प्रधान पेशा है। देश के उत्थान के लिए उसके उद्योग की उन्नति आवश्यक है। इससे उद्योग धन्धा मुख्यतः बड़े बड़े उद्योगों की उन्नति एवं उनका राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। उन्हीं से समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो सकती है। इसके लिये काफी समय लगेगा।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि मजदूर वर्ग के सहयोगी किसान तथा शहरी निम्न मध्यम श्रेणी तो हैं ही। साथ ही राष्ट्रीय पूँजीपतियों की श्रेणी भी श्रमिक वर्ग से सहयोग करती है । इस से केवल कृषि तथा हाथ से चलने वाले उद्योग ही में शान्तिमय उपाय द्वारा परिवर्तन नहीं करना चाहिए बल्कि पुरानी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के अभिप्राय से पूँजीवादी उद्योग धन्धा तथा व्यवसाय का परिवर्तन भी शान्तिमय साधनों से ही होना चाहिए । वह भी क्रमशः एक के बाद दूसरा कार्यक्रम होना चाहिए । इसके लिए भी काफी दिन लगेंगे।

उपरोक्त कार्यक्रम १९५२ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा निश्चित हुआ और १९५४ में नैशनल पिपुल्स काँग्रेस द्वारा स्वीकृत हुआ। फिर चीन के पिपुल्स रिपब्लिक (The People's Republic of China) के विधान में परिवर्तन या सन्धि-काल के लिए वह मौलिक कर्तव्य के रूप में उद्घृत हो गया।

चीनी समाज के हर क्षेत्र में वही विभिन्न कार्यों का आधार है। जब देश सम्बन्धी कोई काम उससे पृथक होता है तो प्रायः भूल हो जाती है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ सदस्य उस मौलिक कार्यक्रम से उदासीन होकर पूँजीवादी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव की सफलताओं से ही सतुष्ट हो जाते हैं। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए क्रान्ति द्वारा पूँजीवाद के नियन्त्रण के अभिप्राय से वे ठीक ठीक नीति नहीं निश्चित कर पाते हैं। उनको इस बात में भी सन्देह होता है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी इस देश में समाजवाद स्थापित कर सकती है।

उस पार्टी के उग्रवादी सदस्य दूसरे प्रकार की भूल करते हैं। वे यह चाहते हैं कि तुरन्त ही समाजवाद की स्थापना हो जाय। राष्ट्र के पूँजीवादी वर्ग के अन्त के लिए किसी तरह से उसकी सम्पत्ति सरकार द्वारा छीन ली जाय। किसी उपाय से पूँजीवादी उद्योग धन्धा एवं व्यवसाय की सारी पूँजी ले ली जाय और पूँजीपतियों को दिवालिया बना दिया जाय। वे राष्ट्रीयकरण में एक पग के बाद दूसरा पग नहीं उठाना चाहते हैं। सामाजवादी क्रान्ति की लक्ष्यपूर्ति के लिए शान्तिमय उपायों पर भी उनका पूरा विश्वास नहीं है। इन दोनों भूलों से चीनी क्रान्ति तथा उसके ध्येय को भारी हानि हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी दोनों प्रकार की भूलों से बचते हुए समाजवाद की स्थापना में आगे बढ़ रही है।

क्रान्ति कला नामक इस परिच्छेद के इस भाग में चीनी विप्लव तथा वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के राजनीतिक रिपोर्ट के आधार पर उद्घृत है। १५ सितम्बर १९५६ को वही रिपोर्ट उस पार्टी के आठवें

राष्ट्रीय काँग्रेस में पेश हुआ । उस काँग्रेस ने उसे स्वीकार किया और आगे के लिए उसके अनुसार अपना कार्यक्रम भी निश्चित किया । इससे यहाँ चीनी क्रान्ति के बारे में जो बातें लिखी गई हैं वे पूर्णतः विश्वासनीय हैं। साथ ही वे विप्लव की कला के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उस काँग्रेस के निर्णयों एवं प्रस्तावों से मार्क्सवाद के कई आधारभूत सिद्धान्तों में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है । समाजवादी विप्लव की सफलता के लिए संसार के कम्युनिस्ट जिन बातों को घातक एवं प्रतिक्रियावादी कहते थे उन्हीं को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने समाजवाद की स्थापना के लिए अनिवार्य तथा लाभदायक मान लिया है ।

मार्क्सवादी विचारधारा में चीन की वर्गवादी पार्टी के नये निर्णयों से मौलिक परिवर्तन हो रहा है । यहाँ उनके सारांश का उल्लेख अच्छा होगा । कम्युनिस्ट सिद्धान्त यह प्रचार करता था कि समाजवाद की स्थापना के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त कोई दूसरी पार्टी, दल या गुट का अस्तित्व न रहे । चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने नई नीति अपनाया है । उसके आठवें काँग्रेस ने नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । उसने जो राजनीतिक रिपोर्ट पास किया उसमें इस आशय की बात एक जगह लिखी है—"अब से हम लोगों का विचार है कि बहुत दिनों के लिए ऐसी नई नीति रहनी चाहिए जिससे कम्युनिस्ट पार्टी के साथ लोकतन्त्रवादी पार्टियाँ भी रहें और उनके द्वारा पारस्परिक निरीक्षण हुआ करे । चीन की प्रजातन्त्रवादी पार्टियों का सामाजिक आधार राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग, उच्च मध्यम श्रेणी तथा इन वर्गों के बुद्धिजीवी है । समाज-वादी परिवर्तन के बाद दोनों वर्ग बदलकर श्रमिकों के किसी भाग की पार्टी बन जायेंगे । उनका रूप चाहे जैसा हो । इससे पूँजीवादी मनोवृत्ति वाले विचार उनमें किसी न किसी रूप में बहुत दिनों तक रहेंगे । श्रमिकों के उस दल में पूँजोंवादी मनोवृत्ति एवं विचार रहने से लोकतन्त्रवादी पार्टियों की आवश्यकता बहुत समय तक रहेगी । ऐसी पार्टियाँ उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करेंगी तथा उनका परिवर्तन होने में उन्हें सहायता देंगी ।

कम्युनिस्ट पार्टी तथा उन पार्टियों के रहने से एक दूसरे की देख-रेख भी करती रहेंगी।"

इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी के साथ ही लोकतन्त्रवादी पार्टियों के सह-अस्तित्व की उपयोगिता चीन की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्वीकृत होने से कम्युनिस्ट नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आरम्भ हुआ है।

शान्तिमय उपायों से सामाजवादी क्रान्ति के लक्ष्य की पूर्ति होने का विश्वास चीनी वर्गवादी पार्टी में होने से मार्क्सवाद में दूसरा व्यापक परिवर्तन प्रत्यक्ष मालूम हो रहा है। चीन की मार्क्सवादी पार्टी ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया है कि पूँजीवादियों को समझाने बुझाने तथा शिक्षा से समाजवाद का समर्थक बनाया जा सकता है। इससे इस नीति का आभास मिलता है कि मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हो सकता है और वह अपना स्वार्थ त्याग कर समाज के हित ही को अपना लक्ष्य एवं हित बना सकता है।

सोवियट सरकार तथा रूस की वर्गवादी पार्टी कला एवं विज्ञान को भी मार्क्सवादी रंग रूप देने का प्रयत्न बराबर करती हैं। इसके सम्बन्ध में भी चीन की कम्युनिस्ट पार्टी कट्टरता छोड़ रही है। उसके आठवें काँग्रेस के राजनीतिक प्रस्ताव से यह बात साफ साफ मालूम होती है कि वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी शासन के विभिन्न साधनों द्वारा विज्ञान तथा कला पर न तो प्रतिबन्ध लगाना ठीक समझती है और न कोई बात उनके ऊपर लादना उचित समझती है।

वह यह चाहती है कि सामन्तवादी तथा पूँजीवादी विचारधारा की समालोचना तथा टीका-टिप्पणी होनी चाहिए। किन्तु साथ ही वह इस बात को लाभप्रद मानती है कि उपयोगी ज्ञान को अपनाना चाहिए। भले ही वह पुराने चीन से प्राप्त हो अथवा विदेश से मिले। चीन की आधुनिक संस्कृति तथा विज्ञान को उसकी प्राचीन प्रशसंनीय संस्कृति की देन से लाभ उठाना चाहिए। नवीन समाजवादी राष्ट्रीय संस्कृति में विभिन्न प्रकार के पुष्पों को समाज रूपी वाटिका में फूलने तथा भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों के विकास के लिए अवसर देना चाहिए।

चीनी संस्कृति, सभ्यता, कला, विज्ञान तथा विभिन्न विचारों के विकास के लिये सुविधा या स्वतन्त्रता देने की बात योरोप के कट्टर कम्युनिस्ट सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है बल्कि वे प्रतिकूल हैं । मार्क्सवाद से तीसरा मतभेद इस सम्बन्ध में आरम्भ हुआ है ।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने यह भी स्वीकार किया है कि प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के बाद न तो समाजवादी व्यवस्था तुरन्त स्थापित हो सकती है और न उसके लिए पूँजीपतियों की सम्पत्ति एवं पूँजी जबरदस्ती छीननी लाभदायक हो सकती है । मार्क्सवाद के विरुद्ध चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने यह चौथा निर्णय किया है ।

समाजवाद की स्थापना में पूँजीवादी वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के सम्बन्ध में चीनी कम्युनिस्ट नेता लिउ शाओ ची ने आठवें काँग्रेस के सामने यह मत प्रकट किया कि समाजवादी परिवर्तन में श्रमिक श्रेणी का सहयोग राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग के साथ होने से पूँजीवादी मनोवृत्ति वाले लोगों को शिक्षित बनाने तथा सुधारने में विशेष सुविधा हुई है। भविष्य में भी ऐसे सहयोग द्वारा उन्हें शिक्षा देकर तथा सुधारकर अपने में मिलाया जा सकता है । समाजवादी रचना में राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग भी अपने ज्ञान द्वारा योग दे सकता है ।

समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के अभिप्राय से पूँजीवादी वर्ग के सहयोग की नीति मार्क्सवादी सिद्धान्तों से पाँचवा मतभेद प्रकट करती है । उसे नया विकास भी कहा जा सकता है ।

उद्योग धन्धा तथा वाणिज्य के सम्बन्ध में भी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के आठवें काँग्रेस द्वारा स्वीकृति विवरण में लिउ शाओ ची ने यह कहा कि जो उद्योग राज्य द्वारा नहीं चलाये जाते हैं उनमें चीनी सरकार तथा व्यवसाइयों का सहयोग हो सकता है । वे सरकार से मिलकर उद्योग धन्धा चला सकते हैं । इस प्रकार का प्रबन्ध चीन के राजकीय पूँजीवाद का सबसे सुन्दर रूप हो सकता है । पूँजीवादी स्वामित्व को पूर्ण समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व के रूप में परिवर्तित करने के लिए यह महत्वपूर्ण निर्णयात्मक साधन सिद्ध हो सकता है ।

चीन के वर्गवादी दल द्वारा उद्योग धन्धा सम्बन्धी स्वीकृत नई नीति तथा राजकीय स्वामित्व एवं व्यक्तिगत पूँजीवादी स्वामित्व के पारस्परिक सहयोग से मार्क्सवादी विचारधारा में छठवाँ व्यापक परिवर्तन आरम्भ हुआ है। यह विप्लव की कला में नया विकास है।

भारत एवं एशिया के अतिरिक्त यूरोप में भी मानवता के विकास सम्बन्धी क्रान्ति में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हो रहा है। उसकी चर्चा पुस्तक के अन्तिम अध्याय में होगी।

यहाँ इस परिच्छेद को समाप्त करते हुए इतना ही लिखना है कि क्रान्ति-कला में भारतीय विप्लव से जो उन्नति हुई है उस भारतीय कला से संसार लाभान्वित हो रहा है। इसकी पुष्टि १९५६ में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्वीकृत नीति, निर्णय तथा कार्यक्रम से हुई है। पूर्वी योरोप में कम्युनिस्ट व्यवस्था के प्रतिकूल नवम्बर तथा दिसम्बर १९५६ में उठने वाले राष्ट्रीय उद्गारों से भी किसी न किसी रूप में भारतीय क्रान्तिकारी देन की उपयोगिता सिद्ध होती है।

छठवाँ परिच्छेद

जनता तथा क्रान्ति

क्रान्ति हो या सुधार, राज हो या कोई सामाजिक संगठन अथवा धार्मिक संस्था हो या राजनीतिक दल—सब के लिये जनता ही आधार होती है। सारी संस्थाएँ जनता के हित की बात कहती हैं। साधारण आन्दोलन से देश की सारी जनता का सम्बन्ध भले ही न हो किन्तु विप्लव का घनिष्ट अविच्छेद सम्बन्ध जनता से सदा रहता है। जनता के सुख ही से क्रान्ति के लिये प्रेरणा मिलती है। क्रान्ति का ध्येय देश के सब नागरिकों की उन्नति तथा आनन्द होता है। विप्लव की प्रारम्भिक से अन्तिम अवस्था तक जनता का हाथ उसमें किसी न किसी रूप में रहता है। जनता से क्रान्तिकारी आन्दोलन को प्रेरणा तथा शक्ति तो मिलती है किन्तु जनता उसके लिए प्रत्येक अवस्था में सक्रिय तथा जागरुक नहीं रहती है। इस परिच्छेद में इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि स्वयं साधारण जनता में विप्लव सफल बनाने के लिये कितनी सक्रियता, चेतना तथा जागरुकता होती है।

विप्लव में भीषण संघर्ष होता है। संघर्ष कई प्रकार से चलता है। जब से मानव प्राणी का जन्म हुआ तभी से संघर्ष किसी न किसी रूप में समय समय पर चलता रहा है। आत्म-रक्षा के लिये हो अथवा आक्रमण के लिये—परन्तु उसका प्रमाण प्रत्येक युग में या हर समय मिलता है। जीव-विज्ञान के अनुसार अपने अस्तित्व के लिए विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों का सामना करना संघर्ष समझा जाता है। प्रकृति की भिन्न भिन्न शक्ति हो, तूफान हो, रोग हो, अथवा किसी प्रकार का आकस्मिक संकट हो, उनका सामना कर अपनी रक्षा करनी भी संघर्ष में निहित होती है। क्रान्ति जनता के हित की रक्षा या उसकी उन्नति के लिए होती है। इसी से विप्लव में देश-व्यापी या राष्ट्र-व्यापी संघर्ष होता है।

उस बड़े संघर्ष में स्वयं जनता कैसे किस प्रकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती है और वह किस हद तक स्थिर रहती है ? इस बात पर ध्यान देना है। चाहे नेता हों, विचारक हों, प्रचारक हों, साहित्यिक हों, वैज्ञानिक हों, इतिहासकार हों या कलाकार इत्यादि हों—सब शिक्षित तथा अशिक्षित व्यक्ति, गुट, दल या समूह जनता में निहित होते हैं। जनता के विभिन्न अंग तथा रूप होते हैं। उसके अंग लगभग उसी प्रकार काम करते हैं जैसे व्यक्ति के विभिन्न अंग अपने शरीर का काम चलाते हैं। नेता, विचारक या संगठनकर्त्ता जनता के मस्तिष्क का कार्य करते हैं। संगठन होने पर अशिक्षित लोग भी विप्लवी संघर्ष एवं असाधारण परिस्थिति में कुछ न कुछ काम कर दिखलाते हैं।

यदि अशिक्षित जनता संगठित न हो तो वह कोई बड़ा काम नहीं कर सकती है और कोई संघर्ष सफलतापूर्वक नहीं चला सकती है। वैसे लोगों में स्थिरता बहुत कम या नहीं के बराबर होती है। जब असंगठित लोग भीड़ के रूप में एकत्रित रहते हैं तब उनकी मानसिक तथा बौद्धिक स्थिति अजीव रहती है। यह बिलकुल सच है कि चतुर व्यक्ति या नेता वैसी भीड़ को खूब उत्तेजित कर सकते हैं, उसमें खूब जोश भर सकते हैं और उसके द्वारा थोड़े समय के लिए बड़ा हिंसात्मक कार्य भी करा सकते हैं। भीड़ अत्यन्त भयंकर कार्य उत्तेजना में कर दिखलाती है। परन्तु यह बात भी बिलकुल सच है कि भीड़ में जैसे कभी कभी प्रशंसनीय वीरता उत्पन्न हो जाती है वैसे ही उस के बाद उस में लज्जाजनक कायरता भी आ जाती है।

भीड़ में एक विशेष बात होती है। उसमें भावुकता शीघ्र जागृत की जा सकती है। उस भावुकता से प्रेरित होकर वह ऐसे काम करने लगती है जिसमें औचित्य अनौचित्य का विचार कम रह जाता है। भीड़ तर्क, युक्ति या विवेचना से उतनी नहीं प्रभावित होती है जितनी भावुकता से उत्तेजित होती है। मतलब यह है कि भीड़ का मस्तिष्क उसे बड़े बड़े विकट कार्यों के लिए उतना नहीं तैयार करता है जितना उसका हृदय उसे भयंकर कार्य के लिए उद्यत कर देता है। इस बात का भी प्रमाण मिलता

है कि जिस भीड़ में अनुशासित, शिक्षित तथा विचारवान व्यक्ति उपस्थित रहते हैं वहाँ भी नेत्र तथा कान को आकर्षित करने वाले वस्तु तथा बातें उस भीड़ को उत्तेजित कर अनर्थ करा देती हैं।

इसका कारण यह है कि जो कमोजरी व्यक्तियों में होती है वही दुर्बलता भीड़ या समूह में भी होती है। मानव प्राणी में चार मौलिक प्राकृतिक सहजात प्रवृत्तियाँ होती हैं--संघर्ष की मनोवृत्ति, अपना शरीर या अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए आवश्यकीय पदार्थ की इच्छा, यौन लिप्सा तथा मातृत्व। इन प्राकृतिक प्रवृत्तियों को जागृत या उत्तेजित करने वाली बातें बौद्धिक शक्तियों की अपेक्षा भीड़ को अधिक तथा जल्दी प्रभावित कर देती हैं। इसी से भीड़ में बौद्धिक संतुलत कम हो जाता है।

इन बातों पर ध्यान रखते हुए राष्ट्रीय विप्लव एवं समाजवादी क्रान्ति--दोनों के सम्बन्ध में साधारण जनता की विशेषता, महत्त्व तथा दुर्बलता साफ साफ समझ लेनी चाहिए। कुछ लोग यह कहते हैं कि समाज या जनता में राजनीतिक तथा आर्थिक असन्तोष बढ़ते बढ़ते ऐसी असाधारण अवस्था में आ जाता है कि क्रान्ति अनिवार्य हो जाती है और विप्लव का आरम्भ अपने आप जनता में हो जाता है। वे भी यह अवश्य मानते हैं कि किसी दल या संस्था द्वारा ही जनता में चेतना पैदा की जाती है और उसे संगठित किया जाता है।

जनता के बारे में क्रान्ति सम्बन्धी उपरोक्त विचार केवल अतिशयोक्ति ही नहीं हैं बल्कि किसी अंश में भ्रमात्मक भी हैं। असल बात तो यह है कि व्यक्ति विशेष, अनेकों व्यक्तियों के गुट या दल रूपी नेतृत्व की आवश्यकता जनता को सदा रहती है। संघर्ष तथा विशेषत: विप्लवी संघर्ष के संचालन के लिए स्वयं साधारण जनता में इतनी योग्यता नहीं रहती है कि वह क्रान्ति की विभिन्न अवस्थाओं में अविचलित रहे और कठिनाइयों का सामना करते हुए सफलता प्राप्त करे। विप्लव के लिए असाधारण या भयंकर अवस्थायें क्रान्ति आरम्भ होने के पहले, क्रान्ति प्रारम्भ हो जाने पर तथा क्रान्ति के बाद भी पैदा होती रहती हैं। वैसी असाधारण परिस्थितियों का सामना सफलतापूर्वक करने में जन-साधारण

बहुत कम समर्थ होता है ।

एक बात अवश्य ठीक है । विशेष व्यक्तियों, किसी गुट या दल द्वारा कभी कभी जनता इस सीमा तक उत्तेजित तथा उद्यत करा दी जाती है कि उचित या अनुचित, भयंकर या असाधारण कार्य कर डालना उसके लिए सरल हो जाता है । परन्तु ऐसी निर्भीकता, दृढ़ता तथा लगन थोड़े ही समय तक जनता में रहती है । साथ ही यह भी बिलकुल सच है कि जनता बेहद कायरता भी दिखला सकती है । जैसा भी हो । वह वीरता दिखलावे या कायरता परन्तु यह बात निश्चित होती है कि जनता किसी न किसी के नेतृत्व के अन्तर्गत ही काम करती है। जब व्यक्ति या व्यक्तियों का दल उसे प्रेरित या संचालित करता है तभी वह कार्य कुशलता दिखला सकती है । उस पर तर्क का प्रभाव सदा उतना नहीं पड़ता है जितना भावुकता तथा उत्तेजना से जनता प्रायः प्रभावित होकर सक्रिय हो जाती है । अन्त में भला या बुरा होगा इस बात पर उसका ध्यान कम रहता है । दूरदर्शिता की मात्रा भी उसमें बहुधा कम होती है । यदि कोई बात सामने दिखलाई पड़ती है तथा निकट भविष्य में लाभदायक जान पड़ती है किन्तु अन्त में हानिकर भी हो सकती है तो जनता प्रायः सामने दिखाई देने वाली या निकट भविष्य में लाभदायक मालूम होने वाली बातों से अधिक आकर्षित होती है ।

जनता की उपरोक्त महत्ता, विशेषता तथा दुर्बलता उसकी बौद्धिक प्रौढ़ता तथा चेतना से सम्बन्धित होती है । हित अथवा अहित पहचानने की योग्यता से जनता की बौद्धिक प्रौढ़ता तथा चेतना की मात्रा का पता चलता है । राजनीतिक तथा आर्थिक भलाई के अभिप्राय से अपना शासन प्रजातन्त्रात्मक ढंग से चलाने के लिए जनता में कुछ योग्यता होती है । उस योग्यता का अनुमान जनता के ज्ञान की उस मात्रा से होता है जो समाज की समस्याओं की गुत्थियों को समझने के लिए आवश्यक होती है । अर्थात शासन ठीक रखने के लिए जनता की योग्यता का अनुपात समाज की विभिन्न समस्याओं तथा कार्यवाही को समझने वाली योग्यता की मात्रा के अनुसार होता है ।

राजनीतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक समस्याओं की विभिन्नता से पैदा होने वाली जटिलता एवं गुत्थियाँ कुछ दिनों तक साधारण जनता को साफ साफ नहीं मालूम होती हैं। किसी व्यक्ति विशेष या कुछ व्यक्तियों द्वारा प्राप्त की गई बौद्धिक या यान्त्रिक सफलता रूपी उन्नति का प्रत्येक पग आगे वढ़ने पर जन-साधारण के बौद्धिक विकास को एक कदम पीछे छोड़ जाता है। इस प्रकार उस उन्नति की अपेक्षा जनता की राजनीतिक प्रौढ़ता की मात्रा कम हो जाती है। उस कमी की पूर्ति में काफी समय लग जाता है। जब तक उसकी पूर्ति होती है तब तक यान्त्रिक या बौद्धिक उन्नति में कोई व्यक्ति विशेष या कुछ व्यक्ति फिर एक दो पग आगे बढ़ जाते हैं। व्यक्तियों द्वारा की गई उन्नति की मात्रा तथा जनता की चेतना की मात्रा के अनुपात ही से जनता की राजनीतिक प्रौढ़ता का ठीक ठीक निर्णय हो सकता है।

जब जनता की चेतना का माप उस समय की उन्नति की अच्छी अवस्था में या उसके निकट पहुँच जाता है तब सामाजिक उन्नति में साधारण जनता के कार्यों की प्रधानता होती है। परन्तु मानव इतिहास में ऐसे अवसरों की संख्या बड़ी नहीं होती है। वैसे अवसर जल्दी जल्दी नहीं आते हैं। जनता की चेतना बढ़ी चढ़ी रहने पर भी लोगों के लिए नेतृत्व आवश्यक होता है। सब से बुद्धिमान, जागरुक तथा परोपकारी व्यक्तियों के दल के हाथों में नेतृत्व प्रायः रहता है। इसी से विशेष व्यक्तियों या उनके दल विशेष के कार्यों की महत्ता प्रकट होती है। अग्रगामी व्यक्तियों का दल जनता का अग्रदूत दल होता है। वही जनता के लिए आवश्यकीय नेतृत्व प्रदान करता है। संगठित सक्रिय नेतृत्व के बिना जनता न तो संघर्ष संतोषजनक ढंग से चला ही सकती है और न सफलता ही प्राप्त कर सकती है।

दूसरी तरफ ध्यान देने से इतिहास यह सिद्ध कर देता है कि यदि जनता में काफी चेतना न हो और वह बहुत सक्रिय भी न हो तब भी ऐसे राजनीतिक दल जिन्हें हिंसा या अहिंसा की चिन्ता नहीं रहती है, राजनीतिक सत्ता पर अधिकार जमा सकते हैं। वैसा दल यदि जनता के

हित का रक्षक रहता है तो देश की भलाई के लिए क्रान्ति सफल हो जाती है। रूस तथा चीन के विप्लव इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात नहीं भूलनी चाहिए। जहाँ जनता काफी जागरूक तथा सक्रिय नहीं होती है और किसी दल विशेष के प्रयत्न से समाज में क्रान्ति हो जाती है वहाँ अधिकतर स्वच्छंदता या उस दल विशेष की तानाशाही स्थापित होने की सम्भावना अधिक होती है। जहाँ जनतन्त्र स्थापित करने का लक्ष्य नहीं रहता है वहाँ अधिनायकतन्त्र की स्थापना हो जाती है चाहे उसका रूप या नाम कुछ भी हो। परन्तु जिस दल विशेष का ध्येय जनतन्त्र रहता है वह विप्लव द्वारा सफलता प्राप्त करने पर भी तानाशाही नहीं स्थापित करता है। जहाँ लोकतन्त्र की स्थापना होती है वहाँ दल विशेष के प्रयत्न से विप्लव हो जाने पर भी उसकी पूर्ण सफलता के लिए जनता में चेतना, जागरूकता एवं सक्रियता उत्पन्न करनी अनिवार्य होती है।

इस प्रकार क्रान्ति के सम्बन्ध में जनता की महत्ता, विशेषता या दुर्बलता पर ध्यान रखते हुए जहाँ विप्लव के लिए प्रयास होता है वहाँ क्रान्ति प्रायः सफल होती है।

सातवाँ परिच्छेद

राज तथा क्रान्ति

जैसा क्रान्ति तथा जनता का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है वैसा क्रान्ति तथा राज का सम्बन्ध नहीं होता है । उसका कारण यह है कि स्वयं राज के बारे में कई प्रकार के विचार संसार में प्रचलित हैं । कुछ विद्वान राज को समाज का सर्वेसर्वा मानते थे । कई पंडित अब भी उसे वैसा ही मानते हैं । आधुनिक युग में भी ऐसे राजनीतिज्ञ एवं विप्लवी हैं जो राज की उपयोगिता विशेष कर भविष्य के लिए नहीं मानते हैं । ऐसी दशा में जब तक राज सम्बन्धी मोटी मोटी बातें स्पष्ट नहीं हो जाती हैं, तब तक क्रान्ति तथा राज की सूक्ष्म बातें समझ में नहीं आ सकती हैं। इससे उसकी उत्पत्ति तथा विकास संबन्धी मुख्य बातों के सारांश पर ध्यान देना आवश्यक है ।

असल में राज की उत्पत्ति परिवार से हुई । आरम्भ में परिवार किसी रूप में संगठित हुआ । माता-पिता तथा बच्चों से परिवार बना । एक परिवार से अनेकों परिवार हुए । उनकी वृद्धि होती गई । उससे पहले कोई गांव बना तब अनेकों गाँव बस गये । फिर कोई कस्बा तथा उस के बाद बहुतेरे कस्बे बने । सामूहिक उन्नति तथा समाज के सदस्यों की समस्याओं के सामंजस्य के लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता प्रारम्भ ही से पड़ी जो सब लोगों को नियन्त्रित रखे । जैसे समाज की उत्पत्ति किसी स्थान पर छोटे-मोटे परिवार से हुई वैसे ही आधुनिक राज का जन्म उसी युग में परिवारों या गाँवों में हुआ ।

इधर उधर घूमने वाली अवस्था समाप्त होते ही अर्थात् ज्यों ही परिवार के लोग इधर उधर घूमने की आदत छोड़ कहीं कहीं बस गये त्यों ही उनकी सामूहिक सुविधा, उनके नियंत्रण तथा उन्हें एक संगठन में रखने

के लिए राज का जन्म किसी रूप में हुआ। फिर धीरे धीरे उसका विकास होता गया। इसमें सहयोग की भावना प्रबल रही।

आधुनिक युग में राज का विकसित रूप मानव समाज का सब से बड़ा संगठन या संस्था है। एक मत के अनुसार राज किसी देश के सारे नागरिकों तथा साधनों सहित ऐसा संगठन समझा जाता है जो सामाजिक इकाई के रूप में विभिन्न प्रकार की सब संस्थाओं, संगठन तथा दल को सम्मिलित रखता है। वह सबसे वृहत सामाजिक इकाई होता है। दूसरा विचार यह है कि राज समाज का राजकीय संगठन है अर्थात् वह स्वयं समाज नहीं है बल्कि उसके सदस्यों की सुविधा तथा हित सुरक्षित रखने वाला आवश्यकीय सार्वजनिक संगठन है। वह सब के लिए सामान्य होता है। तीसरी विचारधारा से यह मालूम होता है कि राज किसी वर्ग विशेष के प्रभुत्व को समाज में सुरक्षित रखने वाली राजकीय संस्था है। भविष्य में उसके अस्तित्व का रुपान्तर हो सकता है और वह समाज के सहकारी संगठन में विलीन हो सकती है।

समाज के विभिन्न कार्यों तथा राज द्वारा उनके सहयोग पर विशेष ध्यान देने से तीसरे विचार की पुष्टि नहीं होती है। वह कमजोर सिद्ध होता है। जिन बातों को आधार मानकर उस दृष्टिकोण द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है स्वयं वे ही निर्बल हैं। उन लोगों का मत है कि राज किसी वर्ग विशेष का प्रभुत्व पूरे समाज पर रखता है। वह इसके लिए एक वृहत संगठन एवं साधन का काम करता है।

इस मत के प्रतिकूल अनेकों प्रकार के प्रमाण आज मिलते हैं। प्राचीन काल में भी उनके प्रतिकूल समाज में विभिन्न प्रकार के प्रमाण मिलते थे। यदि समाज की आन्तरिक शक्तियों या विशेषताओं के प्रति उदासीन रह राज केवल शासन चलाने का काम करता तो किसी अंश में उनकी बातें ठीक होतीं। किन्तु हम तो यह देखते हैं कि प्रत्येक युग में ऐसी प्रभावकारी घटनायें राज द्वारा संचालित हुईं और आधुनिक युग में भी होती हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि राज के दो प्रकार के लक्ष्य, मंतव्य तथा कार्यक्रम होते हैं। पहला धनात्मक

(Positive) दूसरा ऋरणात्मक (Negative)।

धनात्मक लक्ष्य तथा कार्यक्रम में वैसी सारी बातें निहित होती हैं जो समाज के सदस्यों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक हित तथा उत्थान के लिए कार्यक्रम चलाती हैं। प्रत्येक युग के राज का प्रमुख कार्यक्रम धनात्मक होता है। इस बात के अकाट्य प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन समय में भी, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि विकास उतना नहीं हुआ था जितना आजकल है, राज व्यक्ति तथा समूह दोनों के विकास या उन्नति के लिए अर्थात् धनात्मक लक्ष्य तथा कार्यक्रम के लिए ऋरणात्मक कार्यक्रम की अपेक्षा अधिक प्रयत्नशील तथा सक्रिय था।

भारतीय दर्शन में राज का केवल राजनीतिक महत्व नहीं माना जाता है बल्कि उससे राज का सामाजिक तथा आध्यात्मिक महत्व भी सिद्ध होता है। राज राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कार्यक्रम चलाता है। उसके ऋरणात्मक कार्यक्रम में ऐसी बातें निहित होती हैं जो समाज तथा व्यक्ति के विकास में बाधा डालने वाली असुविधाओं को मिटाती हैं। साथ ही समाज एवं उसके नागरिकों का अहित करने वाले व्यक्तियों को राज द्वारा कानूनी ढंग से अनुशासन में रखा जाता है।

यहाँ राज से सम्बन्धित दो अन्य विचारों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। यदि राज का मतलब केवल सरकार या राजनीतिक संगठन लगाया जाय तो उसका लक्ष्य तथा कार्यक्रम अधूरा रह जायगा अगर इस सीमित अर्थ को माना जाय तो किसी देश में क्रान्ति होने पर वहाँ की सरकार के विगठन का मतलब उस राष्ट्र के तत्कालीन राज का अन्त समझना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता है। विभिन्न देशों में अनेकों बार क्रान्तियाँ हुईं। फ्रांस में कई बार विप्लव हुआ। अमेरिका, चीन, रूस, तुर्की इत्यादि देशों में क्रान्तियाँ हुईं। भारत में भी राष्ट्रीय क्रान्ति हुई। किन्तु इन सब राष्ट्रों में राज का अन्त नहीं हुआ। उसका एक विशेष अंग (सरकार) नष्ट होकर नई सरकार रूपी नया अंग बना। परन्तु सारा राज नष्ट नहीं हुआ। स्वयं रूस के प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के बाद

तुरन्त समाजवादी क्रान्ति होने पर भी राज नष्ट नहीं हो सका। वह अधिक शक्तिशाली हो गया। संसार की भिन्न भिन्न क्रान्तियों के बाद राज का अस्तित्व ज्यों का त्यों रहने से यह साबित होता है कि राज तथा सरकार पर्यायवाची नहीं हैं। साथ ही विप्लव से राज नष्ट नहीं होता है बल्कि उसका पुनर्संगठन होता है। क्रान्ति के पहले की सरकार का संगठन अवश्य ही नष्ट हो जाता है। उसके बदले नई सरकार की स्थापना होती है।

जब राज के उस व्यापक अर्थ पर विचार किया जाता है (जिसमें उससे सम्बन्धित समाज के सब अंग, संस्थाएँ एवं संगठन सम्मिलित होते हैं) तब राज तथा क्रान्ति का असल पारस्परिक सम्बन्ध समझ में आता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह मालूम होता है कि राज राष्ट्रीय समाज का वह संगठन है जो समाज के भिन्न भिन्न अंगों, भागों या समूहों को एक सामान्य एकता में बांधता है, उनके लिए एक सामान्य सरकार संचालित करता है, सबकी उन्नति के लिए अपने राष्ट्र में कार्यक्रम चलता है और अपने देश के वाहर अपने समाज के सामूहिक हित के लिए दूसरे राज के साथ आवश्यकतानुसार कार्य करता है। इससे यह प्रकट होता है कि राज राष्ट्रीय समाज का केन्द्रीय संगठन होता है। वह लोगों में एकता पैदा कर समाज की संयुक्त इकाई देश के भीतरी मामलों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के लिए संगठित करता है। उसके द्वारा स्थापित राष्ट्रीय एकता उसके सदस्यों की पारस्परिक एकता से भिन्न होती है। उस एकता से राज के अन्तर्गत रहने वाले सब लोगों, उनके परिवारों तथा उनकी सम्पत्ति की व्यक्तिगत तथा सामूहिक रक्षा होती है। राज अपने देश की जनता, उसकी सम्पत्ति, पृथ्वी, आकाश, पाताल, समुद्रतट, समुद्र तथा अन्य सब साधनों के ऊपर सर्वशक्तिमान होता है।

इससे यह प्रकट होता है कि राज द्वारा एक देश के समाज के सब जीवों तथा वस्तुओं का एकीकरण तथा विभिन्न शक्तियों का समन्वय

एवं सामंजस्य होता है । समाज के विकास तथा हित के लिए राज का विकास होता है। उस में उपरोक्त बातें सम्मिलित होती हैं। स्वयं राज का विकास या संगठन समाज की भलाई के लिए ही होता है । वह इसलिए नहीं रहता है कि समाज पर केवल शासन करे।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि समाज तथा राज पर्यायवाची नहीं होते हैं। जैसे राज तथा सरकार में अन्तर होता है वैसे ही समाज तथा राज में भी भिन्नता होती है। सरकार राज का एक महत्वपूर्ण अंग या विभाग होती है । समाज या राज का शासन चलाने के लिए सरकार होती है। अर्थात् सरकार राज का एजेन्ट या सेवक होती है। वैसे ही समाज का एजेन्ट या सेवक राज होता है।

राज में समाज की सारी बातें निहित होने पर भी समाज का विकास या उत्थान और समाज के सदस्यों का सामूहिक तथा व्यक्तिगत हित ही राज का लक्ष्य होता है । अर्थात् समाज की भलाई के लिए राज का विकास होता है । इसी से समाज की सभी बातों से उस का सम्बन्ध रहता है। राज समाज के कार्यों पर जितना प्रभाव डालता है या उनका संचालन करता है उतना सरकार नहीं कर सकती है । समाज में बहुतेरी ऐसी बातें होती हैं जिन्हें लोग सामाजिक संगठनों द्वारा पूरा करते हैं। उनसे सरकार का सम्बन्ध बहुत कम रहता है । परन्तु राज का सीधा सम्बन्ध समाज के सब प्रयासों से रहता है।

यह होने पर भी समाज तथा राज में अन्तर होता है । स्वाधीन राष्ट्रों में समाज तथा राज का अन्तर भले ही साफ साफ न मालूम हो किन्तु परतन्त्र देशों में बिलकुल स्पष्ट अन्तर जान पड़ता है। पराधीन देश में समाज की सार्वजनिक इच्छा, हित या लक्ष्य की अवहेलना हुआ करती है । विदेशी शासन उस समाज की भलाई के प्रतिकूल भी कार्य किया करता है। उससे प्रजा का मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक पतन होता रहता है। विदेशी शासकों द्वारा शोषण तो सदा होता ही है। वैसे विदेशी शासन में राज रहता है किन्तु वह समाज के सर्वोदय का प्रयत्न नहीं करता है। वह वैसे उत्थान के लिए कभी कभी बाधक भी होता है।

इससे यह बात साफ साफ प्रकट होती है कि समाज तथा राज में स्पष्ट अन्तर होता है।

इस अन्तर से यह बात नहीं सावित होती है कि राज नष्ट किया जा सकता है। क्रान्ति या वैज्ञानिक परिवर्तन द्वारा सरकार विलकुल बदल दी जाती है। पुरानी सरकार मिट जाती है और आवश्यकतानुसार नई सरकार स्थापित हो जाती है। किन्तु उस सरकार के विगठन के साथ राज का नाश नहीं होता है। एक सरकार के बदले दूसरी सरकार स्थापित होने पर भी राज ज्यों का त्यों चलता रहता है। विभिन्न विप्लवों के उदाहरण छोड़ कर यदि रूस की साम्यवादी क्रान्ति पर ही विचार किया जाय तब भी यही मालूम होता है कि ज़ार की पुरानी सरकार तो नष्ट हो गई परन्तु राज का नाश होने के बदले अधिक शक्तिशाली हो गया। अब तक वह निर्वल होने के बदले सबल होता जा रहा है।

इस सम्बन्ध में एक बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। समाज राज तथा सरकार दोनों का मूल आधार होता है। समाज में उसके व्यक्तियों तथा समूह के सारे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक कार्य जिनसे शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक उत्थान होता है, निहित होते हैं।

व्यक्तियों या उनके समूह का अस्तित्व रहने पर समाज का अस्तित्व कभी मिट नहीं सकता है। परन्तु उसका रूपान्तर होकर नवीन जन्म या विकास हो सकता है। प्रथम विश्व युद्ध के पहले आस्ट्रिया तथा हंगरी संयुक्त थे। उनका एक सम्मिलित राज था। जव बलपूर्वक सम्मिलित किए गए राज पर से दबाव समाप्त हो गया तब संयुक्त राज्य नष्ट हो गया। वे दो स्वतन्त्र राज्य के रूप में विकसित हो गये। इससे यह बात प्रकट होती है कि एक ही संयुक्त राज के अन्तर्गत दो देशों के मानव समाज का एकीकरण राजनीतिक दृष्टिकोण से भले ही हो गया था किन्तु सामाजिक मामलों में दोनों समाज के दो भिन्न भिन्न पृथक अस्तित्व थे ही। फिर दोनों देशों के समाज बिलकुल स्वतन्त्र होकर अलग अलग

दो राज के आधार बन गए।

इन बातों का साराँश यह है कि राज मुख्यतः राजनीतिक दृष्टिकोण से संगठित राष्ट्र होता है। समाज रूपी नींव पर ही राज का संगठन होता है। समाज का विनाश नहीं होता है। समाज के रहने पर राज भी आवश्यक होता है किन्तु इस का रूपान्तर हो सकता है। राज का विकास समाज के उत्थान के लिए होता है। जब कोई सरकार छिन्न-भिन्न होती है तब राज का नाश नहीं होता है। राज समाज की उन्नति के लिए अनिवार्य या आवश्यक साधन होता है।

सामाजिक विकास की उस अवस्था में जब सहकारिता के आधार पर जनता अपने विभिन्न कार्य सहकारी संस्थाओं द्वारा चलान में समर्थ हो सकती है तब भी राज या उसका कार्यक्रम चलाने वाला राजनीतिक संगठन आवश्यक एवं अनिवार्य रहेगा। उस आवश्यकता के प्राकृतिक या स्वाभाविक कारण होते हैं। वे सदा रहेंगे। मनुष्य सामाजिक प्रज्ञासंपन्न प्राणी होता है। वह समाज में रहने की उपयोगिता को समझता है। किन्तु अपने सरीखे प्राणियों के साथ रहने की मानव इच्छा या प्रवृति उस प्रकार की नहीं होती है जिस प्रकार की मधुमक्खियों की प्रवृत्ति होती है। समूह में जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति उन मक्खियों में भी रहती है किन्तु मानव प्रवृत्ति तथा उनके प्राकृतिक स्वभाव में बहुत अन्तर होता है।

समाज के सदस्यों की सामान्य इच्छायें या प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। समाज के सदस्यों की समानता तथा व्यक्तिगत इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों का सामंजस्य करने के लिए किसी संगठन की आवश्यकता होती है। सामाजिक जीवन में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। उन्हें दूर करने के लिए भी उस संगठन की जरूरत होती है। ऐसा संगठन न होने पर समाज का संचालन स्वतः नहीं होता है। उसका कार्य चलना कठिन होता है। यही नहीं बल्कि एक प्रकार से असम्भव होता है। वैसी परिस्थितियों में राज अनिवार्य हो जाता है।

राज का कार्यक्रम मुख्यतः दो प्रकार का होता है। समाज के

सदस्यों को जो सामान्य इच्छायें होती हैं उनमें विभेद होते हैं। इससे समाज में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । उन कठिनाइयों को दूर करना राज का ऋणात्मक कार्यक्रम होता है। उसका दूसरा कार्यक्रम धनात्मक होता है । समाज के लोगों की सामूहिक तथा व्यक्तिगत उन्नति के लिए राज पृष्टभाग तैयार करता है और सुविधायें प्रदान करता है । यह उसका धनात्मक कार्य होता है।

मनुष्य के कई पूर्ण गुण होते हैं जो संसार के विभिन्न देशों के मानव समाज के लिए समान रूप में लाभप्रद होते हैं । मानव जाति तथा व्यक्ति के लिए सामान्य पूर्ण गुण होते हैं । उन गुणों तथा व्यक्तिगत इच्छाओं का सामंजस्य होना और उन पूर्ण गुणों का पालन करना अच्छा जीवन कहलाता है। पूर्ण गुणों में आनन्द एक प्रमुख गुण होता है। समाज या अपने सरीखे प्राणियों से सदैव पृथक रहकर केवल व्यक्तिगत रूप में आनन्द का अनुभव नहीं किया जा सकता है। उसकी प्राप्ति समाज में रह कर अपने सरीखे व्यक्तियों के सम्पर्क से होती है। कभी व्यक्ति का आनन्द उस के अन्य साथियों के आनन्द के अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल होता है। पारस्परिक सहयोग तथा उनमें सामन्जस्य होने पर समाज या समूह तथा व्यक्ति का आनन्द संयुक्त में प्राप्त किया जा सकता है । समाज तथा व्यक्ति के मानव आनन्द की प्राप्ति के लिए सुविधायें प्रदान करनी पूरे समाज के सामान्य संगठन के कार्यक्रम में निहित होती हैं। ऐसे ही सामान्य संगठन की आवश्यकता तथा कर्तव्य को पूरा करना राज का क्रियात्मक या धनात्मक कार्यक्रम होता है।

उपरोक्त सारी बातों का मतलब यह है कि समाज के विकास एवं हित के लिए राज या उस प्रकार के संगठन की स्थाई आवश्यकता रहती है । परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि राज हर प्रकार से सदा अपने कार्यक्रम में सफल हो जाता है । ऐसे भी प्रमाण कभी कभी मिलते हैं जिनसे उसकी असफलता प्रकट होती है । समाज के नागरिकों के बहुमत के हित के विरोधी शक्ति-सम्पन्न लोगों के स्वार्थ साधन तथा अनुचित इच्छापूर्ति को रोकने में राज अपने आधुनिक रूप में किसी

किसी देश में असफल हुआ है।

जहाँ ऐसी बात हो वहाँ विप्लव द्वारा राज का आमूल परिवर्तन या रूपान्तर जरूरी है। परन्तु ऐसे परिवर्तन का मतलब यह नहीं है कि वैसे संगठन का कार्यक्रम ही समाप्त हो गया है। समाज तथा उसके सदस्य भविष्य में भी रहेंगे। इससे उनकी सामान्य तथा व्यक्तिगत इच्छाओं के सामन्जस्य का कार्य संसार में सदा रहेगा। ऐसे कार्यक्रम को चलाने के लिए संगठन अनिवार्य होगा। उसको समयानुसार परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा। समाज के उस संगठन के कार्यक्रम के लिए आजकल का राज जिस देश में असफल हो रहा है वहाँ उसका आमूल परिवर्तन तथा रूपान्तर होना आवश्यक तथा अवश्यम्भावी होगा। जहाँ वैधानिक उपाय से यह नहीं हो सकेगा वहाँ विप्लव से परिवर्तन होगा।

वर्तमान राज मानव संगठन का अन्तिम रूप नहीं है। राष्ट्र के आधार पर संगठित राज अन्तर्राष्ट्रीय संगठन या राज की एक इकाई या शाखा बन सकता है। यदि यह बात भी मान ली जाय कि भविष्य में सहकारी संस्थाओं का विकास स्वेच्छापूर्वक होता रहेगा तब भी ऐसे कई प्रकार के कार्य सदा रहेंगे जिन्हें कोई राजनीतिक संगठन ही पूरा कर सकेगा। वैसे आवश्यकीय कार्यों की पूर्ति के लिए जो अनिवार्य आवश्यकता समाज में रहेगी वही राज का आधार सदैव रहेगी। राज के अस्तित्व की अनिवार्यता सिद्ध करने के लिए वही आवश्यकता पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थाई बातें भी सर्वदा रहेंगी जिनसे राज का अस्तित्व अवश्यम्भावी रहेगा। समाज के किसी एक भाग या श्रेणी विशेष द्वारा दूसरे वर्ग पर प्रभुत्व जमाने अथवा शोषण करने का साधन राज भविष्य की उस अवस्था में नहीं रहेगा। आधुनिक राज परिवर्तित होकर भविष्य का नवीन राज बनेगा। ऐसे परिवर्तन के लिए किसी किसी देश में विप्लव होगा और क्रान्ति द्वारा राज का आमूल परिवर्तन होगा।

भविष्य की उस अवस्था में भी मानव आनन्द तथा मानवीय पूर्ण गुणों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति तथा समूह को सुविधाओं की आवश्य-

कता होगी। समाज की सामान्य इच्छाओं तथा विभिन्न व्यक्तियों की भिन्न भिन्न इच्छाओं में सामंजस्य लाने के लिए राष्ट्रीय समाज के विकास की अन्तिम अवस्था में भी किसी न किसी रूप में या किसी नाम से राज रूपी मानव संगठन स्थाई रहेगा।

आठवाँ परिच्छेद

क्रान्ति, राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता

जनता, राज तथा विप्लव के पारस्परिक सहयोग के सम्बन्ध में यह प्रश्न हो सकता है कि क्रान्ति के लिए राष्ट्रीयता सहायक होती है या विरोधी। विप्लव के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता से प्रोत्साहन अधिक मिलता है या राष्ट्रीयता से। ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका महत्व बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बढ़ गया है।

भूतकाल के अनुभव तथा वर्तमान के कार्यों से भविष्य का अनुमान लगाया जाता है। अब तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्रीयता से विप्लव को प्रेरणा मिलती है। राष्ट्रीयता क्रान्तिकारी शक्ति होती है। रूसी विप्लव को छोड़ अब तक होने वाली सारी क्रान्तियों को राष्ट्रीयता से ही प्रेरणा मिलती थी। आधुनिक युग में भी कई देशों में राष्ट्रीयता ही क्रान्ति के लिए समाज को प्रेरित कर रही है।

अठारहवीं शताब्दी (१७७६) में होने वाले अमेरिकी विप्लव के मौलिक आधार राष्ट्रीयता तथा प्रजातन्त्र ही थे। अमेरिकी राष्ट्र अपना शासन स्वयं चलावे, उस पर कोई दूसरा देश कर न लगावे, अमेरिका का समाज ही अपना शासक हो आदि नारे थे। उस विप्लव की पुकार थी—"अपना देश, अपना शासक, अपनी व्यवस्थापिका, अपनी सार्वभौम राजसत्ता"। इनसे राष्ट्रीयता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

उसके बाद फ्रांसीसी विप्लव में भी राष्ट्रीयता की वही देन मालूम होती है। मांटेस्क्वी, वाल्टेयर, रूसो आदि पण्डितों के प्रगतिशील विचार राष्ट्रीयता तथा क्रान्ति के पूर्ण विकास के लिए वातावरण तैयार कर ही रहे थे। विशेषतः राब्सपियर के नारे से विप्लव तथा राष्ट्रीयता का अविच्छेद्य सम्बन्ध बिलकुल साफ साफ साबित हो गया। उनका नारा था—"Think only of the good of the country and of the interest of the humanity" "देश की भलाई तथा मानवता के हित

की ही बात सोचो"। "देश एवं मानवता"—राष्ट्रीयता के क्रान्तिकारी होने का प्रमाण इस नारा से बढ़ कर दूसरा किस से मिल सकता है ?

उसके अतिरिक्त सारे यूरोप में राष्ट्रीयता के विकास के साथ क्रान्ति का प्रचार होता रहा। जहाँ भी विप्लव या विप्लवी आन्दोलन हुआ वहाँ "राजतन्त्र का नाश, अपना राज तथा जनता की सत्ता" मुख्य नारे थे। राष्ट्रीयता क्रान्ति की प्राणशक्ति थी। इटली में राष्ट्र के एकीकरण तथा जनतन्त्र की स्थापना के लिए राष्ट्रीयता प्रेरणा थी और उसका रूप विप्लव था। मैंज़िनी क्रान्ति की सफलता के लिए राष्ट्रीयता ही का प्रचार करते थे। उनके विचारों तथा लेखों से यही सिद्ध होता है कि राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र तथा क्रान्ति का अविच्छेद्य या अन्युन्याश्रय सम्बन्ध सदा रहता है। उनकी राष्ट्रीयता का लक्ष्य केवल इटालियन राष्ट्र का ही हित नहीं था बल्कि उसका ध्येय सारे मानव समाज का कल्याण था।

वह इस बात के प्रचारक थे कि अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद स्वतन्त्र राष्ट्र का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह दूसरे देशों की स्वतन्त्रता प्राप्त करावे। मानव जाति का कार्यक्रम तभी पूरा हो सकता है जब विश्व के सब देश स्वतन्त्र हों। स्वाधीन देश में भी राजतन्त्र एवं एकतन्त्र से जनता की भलाई नहीं हो सकती है। इससे हर राष्ट्र में जनतन्त्र स्थापित होना चाहिए। ऐसे विचार राष्ट्रीय होने के साथ ही क्रान्तिकारी भी हैं। इन्हीं की प्रेरणा से इटली में विप्लव सफल हुआ। ऐसे विचार क्रान्तिकारी भावना के प्रतीक होते हैं।

उधर आस्ट्रिया हंगरी के साम्राज्य के प्रतिकूल राष्ट्रीयता द्वारा विप्लव का प्रचार हो रहा था। आटोमन साम्राज्य के विरुद्ध ग्रीस में जो राष्ट्रीयता जागृत हुई उससे भी क्रान्ति को प्रोत्साहन मिला। बाल्कन राज्यों में ज्यों ज्यों राष्ट्रीयता का विकास होता गया त्यों त्यों सुल्तान के साम्राज्य के प्रतिकूल विप्लवी भावना बढ़ती गई। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी का योरोपीय इतिहास इस बात को साबित करता है। क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता के घनिष्ट सम्बन्ध के बारे में यदि फ्रांस तथा इटली की बात छोड़ भी दी जाय तब भी ग्रीस, रुमानिया, बल्गेरिया तथा बाल्कन

राज्यों में होने वाली घटनाओं से साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता का अनुन्याश्रय सम्बन्ध सिद्ध होता है । बीसवीं सदी में भी इसी बात की पुष्टि हो रही है । साम्राज्यवाद के विरोध में विप्लव केलिए आयरलैंड के निवासियों को प्रेरित करने वाली शक्ति राष्ट्रीयता ही है ।

इतने बड़े ब्रिटिश साम्राज्य का सामना केवल छियालीस लाख की जनसंख्या वाला आयरिश राष्ट्र शताब्दियों करता रहा । उसमें भी लगभग छः लाख प्रोटेस्टेंट स्वाधीनता संघर्ष से अलग रहे । इस प्रकार केवल चालीस एकतालीस लाख के जन-समूह ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुकाबला एक दो नहीं बल्कि चार पाँच सदियों तक किया । प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए इतने छोटे राष्ट्र को उतने दिनों तक अत्याचार तथा भयंकर दमन का सामना करते हुए अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिकूल लड़ाने वाली प्राणशक्ति राष्ट्रीयता ही थी ।

यूरोप की इस बात के अतिरिक्त एशिया के कई देशों का इतिहास इसी विचार को प्रमाणित करता है कि राष्ट्रीयता क्रान्ति की प्रेरणा होती है । जब टर्की में राष्ट्रीयता जागृत अवस्था में विकसित हो गई तब वहाँ विप्लवी संगठन की यही घोषणा हुई कि राजतन्त्र तथा विदेशी शोषण एवं प्रभाव का नाश होना चाहिए और अपने राष्ट्र की अनियन्त्रित सत्ता अपने देश पर स्थापित होनी चाहिए । वहाँ राष्ट्रीयता के प्रचार में इस बात पर जोर दिय जाता था कि एकतन्त्र के विनाश तथा जनतन्त्र की स्थापना के लिए क्रान्ति आवश्यक होती है । वहाँ के विप्लवी राष्ट्रीयता से प्रेरित थे । अब भी तुर्की जनतन्त्र का सैद्धान्तिक आधार राष्ट्रीयता है । तुर्की विप्लव की सफलता का श्रेय राष्ट्रीयता को है ।

चीन ऐसे बड़े राष्ट्र में पहले राष्ट्रीयता का संचार हुआ । तब उससे प्रेरित हो कर गुप्त-विप्लवी दल संगठित होने लगे । सामन्तवाद राष्ट्रीय समाज के लिए हानिकर तथा घातक होता है । उससे राष्ट्रीय एकता ठोस नहीं होती है । साथ ही वह स्वतन्त्र का सहायक एवं पोषक होता है । एकतन्त्र, सामन्तवाद, विदेशी शासन एवं साम्राज्यवाद राष्ट्रीय हित के शत्रु होते हैं । इससे इनका नाश होना चाहिए । चीनी विप्लवी दल के ऐसे ही

विचार थे। इससे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रीयता की जागृति तथा विप्लवी सिद्धान्तों का प्रचार एक साथ होता है और उनका अविच्छेद्य सम्बन्ध रहता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक चीन के वर्गवादी दल ने राष्ट्रीयता ही को किसी न किसी रूप में अपने प्रजातन्त्रात्मक विप्लव के लिए शक्ति माना था।

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी का भारतीय इतिहास इस बात का उज्ज्वल प्रमाण है कि भारतीय राष्ट्रीयता विप्लवी शक्ति है। यह स्वयंसिद्ध ऐतिहासिक घटना है। जब विदेशी शासन की प्रथम शताब्दी पूरी हो रही थी तभी १८५७ के लगभग भारत में राष्ट्रीयता के संचार का प्रारम्भ हो गया था। दिल्ली के मुगल बादशाह, पण्डित, मुल्ला, सैनिक तथा सामन्तों के हृदय में मातृभूमि के उद्धार के लिए विद्रोही भाव उत्पन्न हो गया था। १८५७ के प्रथम राष्ट्रीय संघर्ष अथवा प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन का नारा था—"स्वदेश तथा स्वधर्म की रक्षा करो।" "भारत के शासक हिन्दुस्तानी हों।" उस सशस्त्र विद्रोह से साम्राज्यवाद-विरोधी विप्लवी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। उपरोक्त नारों से राष्ट्रीयता का आभास मिलता है। उस स्वतन्त्रता युद्ध की असफलता के बाद उस के केन्द्र उत्तर प्रदेश पर ब्रिटिश शासन का दमनचक्र जोरों से चला। उस प्रान्त की जनता बुरी तरह कुचल दी गई। किन्तु जिस राष्ट्रीयता के अंकुर पनप चुके थे उस की प्रेरणा से उत्तरी भारत तथा महाराष्ट्र में १८८० के लगभग गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं का संगठन प्रारम्भ हो गया।

जब कोई जन-आन्दोलन नहीं आरम्भ हुआ था तभी से प्राणदण्ड या आजन्म कारावास के दण्ड की आशंका होने पर भी क्रान्तिकारियों को राष्ट्रीयता से प्रेरणा मिल रही थी। अपने राष्ट्र के उत्थान के लिए विदेशी शासन को घातक समझते हुए साम्राज्यवाद के विनाश हेतु भारतीय वीर राष्ट्रीयता ही से प्रेरित हो विप्लवी दल के संगठन में लगे थे। प्राण न्यौछावर ऐसी कठिन परीक्षा में भी विप्लवियों को उसी से उत्साह होता था। अखिल भारतीय गुप्त विप्लवी दल हिन्दुस्तान समाजवादी

जनतन्त्र संघ का लक्ष्य समाजवादी जनतन्त्र घोषित कराने वाली प्रेरणा राष्ट्रीयता से ही उत्पन्न हुई थी। जन-आन्दोलन, असहयोग या सत्याग्रह ऐसे राष्ट्रीय संघर्ष का संचालन कर स्वाधीनता प्राप्त करने वाली भारतीय काँग्रेस का मौलिक सिद्धान्त जनतन्त्रात्मक तथा राष्ट्रीय ही है।

विभिन्न विप्लवी पार्टियों तथा काँग्रेस को प्रेरित करने वाली राष्ट्रीयता प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी है। वह संकुचित नहीं है। भारतीय राष्ट्रीयता का ध्यान केवल हिन्दुस्तान ही पर नहीं रहता है, बल्कि चीन, फिलस्तीन, अबीसिनिया, जावा, सुमात्रा, मलाया, वर्मा आदि देशों की भलाई पर भी रहता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारतीय राष्ट्रीयता सारे संसार विशेष कर एशिया के सब पीड़ित या शोषित देशों के हित के लिए जागरुक, सचेत तथा प्रयत्नशील रहती है। भारतीय क्रान्तिकारी तथा जन आन्दोलनों से यह सिद्ध होता है कि क्रान्ति और राष्ट्रीयता पारस्परिक सहायक होती हैं। एशिया में चीन तथा भारत के अतिरिक्त कई छोटे छोटे राष्ट्रों का इतिहास भी यही प्रमाणित करता है। फिलस्तीन में क्रान्तिकारी प्रयास को राष्ट्रीयता से प्रेरणा मिलती है। सीरिया ऐसे छोटे देश में फ्राँसीसी साम्राज्यवाद के प्रतिकूल जो आन्दोलन चला उसका प्रेरक भी राष्ट्रीयता ही है। इस प्रकार विभिन्न देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों का इतिहास इस बात को अच्छी तरह सिद्ध करता है कि राष्ट्रीयता क्रान्तिकारी प्रगतिशील शक्ति होती है।

राष्ट्रीय समाज के उत्थान हेतु नये आदर्श देश में उत्पन्न होते हैं। वे राष्ट्रीयता के मूल होते हैं। नये आदर्शों का पूरा विकास तभी होता है जब सहजात प्रवृत्तियाँ उनका आधार होती हैं। इससे राष्ट्रीयता का असल मौलिक आधार सहजात प्रवृत्तियाँ ही होती हैं। ऐसी राष्ट्रीयता अथवा देश प्रेम किसी दूसरे देश, राष्ट्र या अन्तर्राष्ट्रीयता का शत्रु नहीं होता है बल्कि सहायक होता है। राष्ट्र की आन्तरिक दुर्बलताओं को मिटाने में यही प्रेम सहायता पहुँचाता है।

ऐसी राष्ट्रीयता के प्रवंतक-मैजिनी यह मानते थे कि राष्ट्र ईश्वर या प्रकृति द्वारा बनाई इकाई होता है उस इकाई का कर्तव्य ईश्वर के

प्रति होता है । राष्ट्र के उस महान कर्तव्य की पूर्ति राष्ट्रीय समाज के उत्थान के लिए प्रयत्नशील होने तथा अपने समाज के बाहर मानव समाज की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयास करने से होती है ।

सच्ची राष्ट्रीयता से एक राष्ट्र की मौलिक विशेषताओं के साथ दूसरे राष्ट्र की राष्ट्रीय विशेषता का सहयोग अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में होता है । राष्ट्रीयता की इस अन्तर्राष्ट्रीय देन को जो लोग नहीं मानते हैं वे भी कभी कभी ऐसे विचार प्रगट करते हैं जिनसे उपरोक्त बातों की पुष्टि होती है ।

डान ओवर समरकन्द (Dawn over Samarkand) नामक पुस्तक में एक जगह 'The Political Tasks of the university of the Peoples of the East' पूर्वी राष्ट्रों के विश्वविद्यालय के राजनीतिक कार्य के सम्बन्ध में स्टालिन ने ऐसा विचार प्रगट किया था—'राष्ट्रीय संस्कृति तथा सर्वाहारा की संस्कृति में मेल या समन्वय हो सकता है या नहीं ? दोनों के विकास में कैसे सहयोग हो सकता है ? क्या दोनों का मेल सम्भव है ? हाँ, हो सकता है । समाजवाद के आधार पर सर्वाहारा की संस्कृति का विकास तो हो रहा है किन्तु समाजवादी रचना में सहयोग करने वाले कई राष्ट्रों की भाषा, स्थानीय प्रथा, रीति, रिवाज इत्यादि द्वारा उस संस्कृति की अभिव्यक्ति विभिन्न रूप में हो रही है । उसका तत्व सर्वाहारा सम्बन्धी है और रूप राष्ट्रीय है । सर्वाहारा की संस्कृति राष्ट्रीय संस्कृति को समाप्त नहीं कर देती है बल्कि नया महत्वपूर्ण तत्त्व उत्पन्न कर देती है । ऐसे ही राष्ट्रीय संस्कृति सर्वाहारा की संस्कृति को समाप्त नहीं करती है बल्कि उसका नया रूप बना देती है । जब तक पूँजीवादी प्रथा समाज में रहती है तब तक "राष्ट्रीय संस्कृति" पूँजीवादी नारा रहती है । किन्तु जब समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो जाती है तब "राष्ट्रीय संस्कृति" सर्वाहारा का नारा हो जाती है ।······"

कम्युनिस्ट संसार के विश्व विख्यात नेता के उपरोक्त विचार से एक मौलिक बात स्पष्ट हो जाती है । राष्ट्रीय संस्कृति राष्ट्रीयता का एक प्रमुख स्रोत होती है । जब राष्ट्रीय संस्कृति का मेल सर्वाहारा की संस्कृति

से हो सकता है तब सच्ची राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता में भी समन्वय हो सकता है। सर्वाहारा की संस्कृति का जन्म क्रान्ति द्वारा ही होता है। विप्लव राष्ट्रीय उत्थान, स्वतन्त्रता तथा समृद्धि का साधन वैसे ही होता है जैसे वह अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर शोषण मिटा कर शोषण विहीन समाज की स्थापना का साधन होता है।

क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता ऐसे समाज के पृष्टपोषक होती हैं जिसमें स्वाधीनता हो। स्वतन्त्रता का मतलब यह नहीं है कि किसी राष्ट्र पर दूसरे देश का राजनीतिक प्रभुत्व तो न रहे किन्तु आर्थिक प्रभाव या दबाव रहे। दोनों ऐसी स्वाधीनता के प्रचारक हैं जिससे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामले में प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों दृष्टिकोण से पूर्ण रूप में स्वाधीन हो और अपने समाज की उन्नति के लिए दूसरे राष्ट्र के हित पर आघात न करते हुए अपना सब साधन प्रयोग करता हो।

स्वाधीनता का तत्व यह है कि दूसरे के कल्याण पर ध्यान रखते हुए अपने हित के लिए सामाजिक व्यवस्था में कोई ऐसा प्रतिबन्ध न रहे जिससे व्यक्ति या मानव समाज की उन्नति में बाधा पड़े। दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र पर प्रतिबन्ध न लगाते हुए अपनी भलाई के लिए प्रतिबन्ध का न होना स्वतन्त्रता है। क्रान्तिकारी स्वाधीनता का एक दूसरा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण भी है।

यदि किसी राज्य या शासन व्यवस्था में कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी शक्ति किसी व्यवस्था या जनता द्वारा सिद्धान्त एवं कार्य रूप में नियन्त्रित नहीं होती है तो शासित लोग वास्तव में स्वतन्त्र नहीं होते हैं। आज तक के इतिहास का अनुभव यह बतलाता है कि किसी दल, गुट या व्यक्ति की अनियन्त्रित शक्ति शक्तिशाली के मस्तिष्क को दूषित कर देती है। वह अपने ही निर्णय को हर प्रकार से कार्यान्वित करने के लिए उचित तथा अनुचित उपायों का प्रयोग करने लगता है और अपनी शक्ति कायम रखने के लिए अन्य शक्तियों को कुचलना चाहता है। राष्ट्रीयता हो अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता दोनों में ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर क्रान्ति मानवता के हित का लक्ष्य सामने रखते हुए यही प्रयास करती है कि राजनीतिक शक्ति

का नियन्त्रण जनता द्वारा हो।

सच्ची राष्ट्रीयता या अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रवर्तकों के सामने आज भी एक विश्व-व्यापी प्रश्न है। क्या भौतिक आविष्कार एवं अन्वेषण के फलस्वरूप वैज्ञानिक खोज मानवता को आगे बढ़ा रहे हैं या मानवीय गुणों का ह्रास कर रहे हैं ? सभ्यता आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है ?

सबसे पहले तो इसी बात पर ध्यान रहना चाहिए कि उत्पादन, वितरण, आवागमन इत्यादि के साधनों में नये नये आधुनिक आविष्कारों तथा अन्वेषणों और जीवन के सुख के लिए नये नये साधनों की उत्पति से ही सभ्यता की उन्नति नहीं होती है। उन्हें खोज निकालने वाले मानव प्राणी के जीवन की शारीरिक तथा मानसिक शान्ति एवं सुख की वृद्धि भी सभ्यता के विकास का प्रमुख कार्यक्रम होती है। रेल, मोटर, वायुयान, रेडियो, टेलीविजन आदि आधुनिक वैज्ञानिक साधन मानव सभ्यता की भौतिक प्रगति में असम्भव को सम्भव साबित कर रहे हैं। किन्तु अणु बम या हाइड्रोजन बम की विनाशकारी शक्ति सभ्यता के मानवीय गुणों के लिये भयंकर ह्रास सिद्ध हो रही है।

मानवता की विशेषता तथा भौतिक सुख के साधन में उन्नति होने से सभ्यता का विकास जारी रह सकता है। यदि मानव जाति की विशेषता द्वारा उत्पादित वैज्ञानिक साधन अथवा अन्य साधन उन्हें पैदा करने वाले व्यक्तियों द्वारा मानव समाज के किसी अंग के विनाश के लिए प्रयोग किये जायँ तो मानव प्रगति नहीं होगी बल्कि मानव ह्रास होगा। संसार में मानव जाति के सामने विश्व-व्यापी समस्या है। राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा क्रान्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों को इस प्रश्न का हल निकालना है अन्यथा मानव सभ्यता के चक्के प्रगति के मार्ग में कभी पीछे और कभी आगे आया जाया करेंगे। सभ्यता की उन्नति उसी अवस्था में हो सकती है जब शरीर के बाहरी सुख के साथ उसमें रहने वाले मस्तिष्क तथा मन को भी सुख हो।

नवाँ परिच्छेद

आध्यात्मिकवाद तथा क्रान्तिवाद

संसार में मानव जाति की भलाई के लिए आध्यात्मिकवाद तथा भौतिकवाद का प्रश्न उठता है। दोनों ही का लक्ष्य मानव समाज का हित होता है। भौतिकवाद सांसारिक सुख पर जोर देता है, परन्तु आध्यात्मिकवाद इससे उदासीन सा रहता है और आत्मा की उन्नति को ही मनुष्य की वास्तविक उन्नति का साधन समझता है। इससे वह आर्थिक समस्याओं की अपेक्षा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास को अधिक महत्व देता है। इसलिए वह सत्य तथा न्याय का प्रचार करता है और अत्याचार तथा अन्याय का विरोध करता है। ऐसे ही क्रान्ति का लक्ष्य समाज की भलाई होता है। वह भी न्याय तथा सत्य का प्रचार करता है और अन्याय तथा अत्याचार का विरोध करता है। आध्यात्मिकवाद व्यक्ति की अलग अलग उन्नति कर के सारे समाज को सुधारना चाहता है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यक्ति का अधिक उपासना करता है। क्रान्तिवाद भी जनता के सुख ही को अपना ध्येय समझता है। इससे आध्यात्मिक वाद तथा क्रान्तिवाद के लक्ष्य में बहुत अन्तर नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि आध्यात्मिकता जनता के दिन प्रति दिन की समस्याओं से उदासीन रहती है। किन्तु क्रान्तिवाद कर्मक्षेत्र में हर प्रकार की समस्याओं का सामना करने की शिक्षा देता है। दोनों का अन्तिम ध्येय समाज का हित ही रहता है।

बहुतेरे लोगों की यह धारणा होती है कि क्रान्ति के फल को स्थाई बनाने के लिए आध्यात्मिकवाद ही सब से अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इस बात के पक्ष या विपक्ष के विवाद में यहाँ नहीं पड़ना है। यदि मान भी लिया जाय कि इससे आध्यात्मिक शान्ति मिलती है, तब भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसके लिए समय समय पर मानव समाज के विकासावस्था में आमूल परिवर्तनों की आवश्यकता होती है।

इससे यह स्वतन्त्रता का पुजारी तथा परतन्त्रता का शत्रु होता है । यही पराधीन देशों में युवकों को स्वाधीनता के लिए व्याकुल बना देता है और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राण न्यौछावर करा देता है । ऐसी दशा में स्वभावत: क्रान्तिवादी व्यक्तियों का प्रेम अपने सहयोगियों के प्रति सच्चा होता है । यही उनमें भ्रातृभाव संचारित करता है । उनका सामूहिक प्रेम व्यक्ति प्रेम के कारण दूषित नहीं होने पाता है ।

जिस प्रकार आध्यात्मिकवाद मनुष्य के लिए बराबरी की शिक्षा देता है उसी प्रकार क्रान्तिवाद से भी समानता का प्रचार होता है। सामूहिक प्रेम सच्चा होने के कारण क्रान्तिकारियों में बराबरी का भाव रहता है । छोटे बड़े, ऊँच नीच या गरीब धनी के दूषित विचार उनमें नहीं पाये जाते हैं । समानता के भाव के साथ ही उनमें साहस की मात्रा भी बहुत अधिक होती है । हानिकर रुढ़ियों या अत्याचारी पद्धतियों के प्रतिकूल संघर्ष चलाने में वे नहीं हिचकते हैं । इस कार्य में पग पग पर कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, यन्त्रणायें सहनी पड़ती हैं और जब तब फाँसी की रस्सियाँ गले लगानी पड़ती हैं किन्तु ऐसी सारी बातें उनको विचलित नहीं कर पाती हैं । वे अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होते जाते हैं । इससे उनकी वीरता गम्भीरता एवं सहनशीलता का प्रमाण मिलता है ।

यदि आध्यात्मिकवाद में त्याग के सिद्धान्त पर जोर दिया जाता है तो क्रान्तिवाद में भी उस पर उससे कम जोर नहीं दिया जाता है । एक दृष्टिकोण से विचार करने पर क्रान्तिवादियों का त्याग सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है क्योंकि इसमें तो प्राण न्यौछावर का भी समय आ पड़ता है ।

बहुधा आध्यात्मिकवाद के पुजारी भाग्य पर भरोसा करते हैं किन्तु क्रान्तिवाद के प्रचारक कर्तव्य पर अपने भविष्य को अवलम्बित समझते हैं । क्रान्तिवादियों के लिए कर्म ही प्रधान होता है । उनके मतानुसार मनुष्य अपने भाग्य को बना सकता है और भाग्य बनाने का उपाय कर्म होता है । एतएव वे कर्म करते हैं । उनका विश्वास होता है कि कर्म का फल कभी न कभी किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है । इससे उनकी लालसा कर्मवीर बनने की होती है । असफलतायें उन्हें शिथिल

नहीं बनाती हैं। निराशा उन्हें कायर नहीं बनाती है। क्रान्तिवादी स्वभावतः आशावादी होते हैं। यही आशावाद उन्हें विकट परिस्थितियों तथा संकट में लक्ष्य के तरफ बढ़ने को उत्साहित करता है।

अतः सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क्रान्तिवाद आध्यात्मिकवाद का विरोधी नहीं बल्कि सहायक होता है। दोनों का ध्येय मानव समाज की उन्नति होता है। दोनों त्याग को लक्ष्य पूर्ति के लिए आवश्यक समझते हैं। दोनों स्थाई शान्ति तथा न्याय चाहते हैं। इसके लिए दोनों अन्याय, अत्याचार तथा अनाचार को मिटाना चाहते हैं। सारांश यह है कि दोनों में लक्ष्य सम्बन्धी एकता होती है।

दसवाँ परिच्छेद

ऐतिहासिक क्रान्तिकारी घोषणायें

क्रान्ति सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर विचार विनिमय के पश्चात् विप्लव की ऐतिहासिक देन पर विचार होना चाहिए । विश्व में सबसे पहले भारतीय इतिहास में उसका उल्लेख मिलता है । यों तो महाभारत युद्ध के बाद ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी तक भारत का राजनीतिक इतिहास सिलसिलेवार नहीं मिलता है, तो भी कई ऐसी घटनाओं की जानकारी होती है जो बहुत महत्वपूर्ण थीं । उन्हीं में विदेह की राज्य क्रान्ति एक ऐतिहासिक घटना हुई ।

क्राल जनक नामक एक राजा विदेह का शासक था । उसका आचरण खराब था । इससे प्रजा उससे रुष्ट थी । उसने एक कन्या पर आक्रमण किया । लोग भड़क गए । प्रजा ने उसको मार डाला । बिलकुल निश्चित प्रमाण तो नहीं मिलते हैं किन्तु जहाँ तक पुराण एवं इतिहास से मालूम होता है, कराल शायद विदेह का अन्तिम राजा था । संभवतः उस की हत्या के बाद विदेह में एकतन्त्र (राजतन्त्र) का अन्त हो गया और संघ राज्य स्थापित हुआ । ईसा से पूर्व सातवीं या छठवीं शताब्दी में विदेह राज्य के निकट ही वैशाली में भी गणतन्त्र था । वहाँ लिच्छवी लोग रहते थे । इस बात का आभास मिलता है कि किसी समय विदेह की प्रजा तथा लिच्छवियों के संघों को, जो पहले पृथक-पृथक थे, मिलाकर एक ही गणतन्त्र या संघ (जनतन्त्र) स्थापित हुआ । उत्तर बिहार के वृजिगण के पच्छिम और कोसल से पूरव मल्लों का मल्ल गणतन्त्र था । उनका राज्य आधुनिक गोरखपुर तथा देवरिया जिलों के क्षेत्र में फैला था। कुशीनगर तथा पावा उसके मुख्य कस्बे थे । इस बात की अधिक संभावना मालूम होती है कि उत्तरी भारत के उस भाग में एकतन्त्र का नाश करके जनतन्त्र की स्थापना विप्लव द्वारा हुई थी ।

प्राचीन भारतीय इतिहास के बाद विश्व इतिहास में शताब्दियों क्रान्ति संबन्धी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के प्रमाण नहीं मिलते हैं। उस काल में राजतन्त्र पूर्ण रूप में विकसित हुआ। साथ ही सामन्तवाद के जन्म तथा विकास के लिए अवसर मिला। एकतन्त्र द्वारा राजतन्त्र से संबन्धित कुप्रथाओं को पनपने के लिए सारी सुविधायें मिलीं। विकसित राजतन्त्र ने जहाँ साम्राज्यवाद का रूप धारण किया या जहाँ उसे निरंकुश एवं अत्याचारी होने का मौका मिला वहाँ समाज की विभिन्न शक्तियों ने अवसर पाते ही एकतन्त्र को निर्मूल करने का आन्दोलन आरम्भ किया। उससे राजतन्त्र के बदले प्रजातन्त्र की स्थापना होने लगी। क्रान्तियाँ हुई और देश पर जन साधारण की सत्ता स्थापित हुई। साम्राज्यवाद के शोषण का विरोध होने लगा।

इसके लिये विप्लव हुए। विभिन्न देशों की क्रान्तियों के कार्यक्रम में भिन्नता उत्पन्न हुई। किन्तु मौलिक कार्यक्रम में जो मानव समाज की उन्नति के लिए थे, प्रायः एकता थी। संसार में आधुनिक युग के आरम्भ से अब तक क्रान्तिकारी कार्यक्रम के ऐतिहासिक घटनाओं में अमेरिकी तथा फ्राँसीसी विप्लव का उल्लेख आवश्यक है। उनका इतना महत्त्व था कि उससे विश्व के सब संगठित तथा विकसित राष्ट्रों पर असर पड़ा।

अमेरिकी क्रान्ति के मूल सिद्धान्त तथा कार्यक्रम उसकी स्वतन्त्रता-घोषणा से प्रकट होते हैं। ४ जुलाई १७७६ को स्वाधीनता घोषणा हुई। उसके सिद्धान्त तथा नीति का साराँश इस प्रकार है—
'मानवीय घटनाओं के क्रम में जब एक समाज को दूसरे समाज से बाँधने वाले सम्बन्ध से छुटकारा पाना आवश्यक हो जाता है तथा जब इस पृथ्वी पर उसे स्थान प्राप्त करना जरूरी हो जाता है, जिसे प्रकृति के नियमों ने उसके लिए अधिकार दिया है, तब मानव जाति की राय का आदर इस बात से होता है कि सम्बन्ध विच्छेद के कारण घोषित कर दिये जायँ।

यह सत्य तो विदित ही है कि सब आदमी बराबर पैदा होते हैं तथा

उनको पैदा करने वाला (ईश्वर) जीवन, स्वतन्त्रता तथा आनन्द के लिये प्रयत्न करने का जन्मसिद्ध अधिकार भी उन्हें देता है। इन अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार संगठित होती है और सरकार का अधिकार शासित होने वाली जनता की राय पर ही अवलम्बित होता है। जब सरकार मानव जाति के उन अधिकारों को कार्य रूप में परिणत करने के बदले उनका हनन करने लगती है तब उस सरकार को बदल या मिटा कर ऐसी सरकार स्थापित करना जनता का अधिकार होता है जो ऐसे सिद्धान्तों तथा नियमों पर अवलम्बित हो जिनसे जनता की रक्षा हो तथा प्रजा को सुख मिले। यह माना जा सकता है कि छोटी मोटी बातों के आधार पर सरकार नहीं बदलती है। प्रायः यह देखा जाता है कि जब समाज के लोग जितना कष्ट नहीं झेलना चाहिए उससे अधिक पीड़ित या शोषित होते हैं तब शासन बदलने की आवश्यकता पड़ती है। जब अत्याचार काफी दिनों तक जारी रहता है तब लोगों का कर्तव्य हो जाता है कि वे वैसे अत्याचारी शासन का नाश करें और उसके बदले ऐसा शासन तथा कार्यक्रम चलावें जिनसे समाज की उन्नति तथा उसके सदस्यों को सुख हो।'

जनता के उत्थान तथा सुख के लिये उपरोक्त कार्यक्रम चलने से अमेरिकी क्रान्ति हुई और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त वहाँ हुआ। राजतन्त्र की बुराइयों के प्रतिकूल योरोप में भी विद्रोही भावना जागृत हो रही थी। फ्रांसीसी क्रान्तिकारी विचारों को उस विप्लव से विशेष प्रोत्साहन मिला और अगस्त १७८९ में फ्राँसीसी विप्लव की घोषणा हुई। वह इस प्रकार है--

फ्राँस की जनता के प्रतिनिधि इस राष्ट्रीय परिषद् के रूप में यह समझते हैं कि अज्ञान तथा मानव अधिकार के प्रति उदासीनता या घृणा जनता की दुर्भाग्य तथा सरकार में भ्रष्टाचार के मुख्य कारण होते हैं। अतः असेम्बली यह निर्णय करती है कि उन प्राकृतिक तथा पवित्र अविच्छेद्य अधिकारों की घोषणा सशपथ कर दी जाय। इस घोषणा की बात सब लोगों के मस्तिष्क में सदा रहनी चाहिए। यदि व्यवस्थापिका सभा तथा

कानूनों को कार्यान्वित करने वाले सरकारी विभागों के सामने अपने अपने कार्यों तथा राजनीतिक संस्थाओं के ध्येय का तुलनात्मक विवेचन तथा जनता के अधिकार की बातें रहें तो मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर विधान की स्थिरता तथा जनता के आनन्द के कार्यक्रम में सहायता मिल सकती है।

इन कारणों से राष्ट्रीय परिषद् ईश्वर के सामने उनके आशीर्वाद तथा कृपा की आशा में मनुष्य तथा नागरिकों के निम्नलिखित पवित्र अधिकारों की घोषणा करता है—

१. जहाँ तक अधिकारों का सम्बन्ध है मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है। वह स्वाधीन तथा बराबर ही रहता है। इसलिए सार्वजनिक हित के दृष्टिकोण से समाज में कोई अन्तर नहीं रहना चाहिए।

२. स्वतन्त्रता, सम्पति, तथा रक्षा के साथ ही अत्याचार रोकना मनुष्य का अधिकार है। मानव जाति के इन प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा सब राजनीतिक संस्थाओं का लक्ष्य होता है।

३. सत्ता का श्रोत केवल राष्ट्र ही होता है। इससे वहीं व्यक्ति, संस्था या संगठन किसी प्रकार का अधिकारी हो सकता है जिसे स्पष्ट रूप से अधिकार मिला हो।

४. जिस कार्य से दूसरे व्यक्ति को हानि न पहुँचे उसे करने की योग्यता स्वाधीनता है। व्यक्ति को अपने प्राकृतिक अधिकार की पूर्ति के लिए काम करने की सीमा वहीं होती है जहाँ अन्य व्यक्तियों को अपने प्राकृतिक अधिकार को कार्यान्वित करने की हद होती है।

५. कानून द्वारा केवल उन्हीं कार्यों को रोकना चाहिए जो समाज के लिए हानिकर हों। जिस पर कानूनी प्रतिबन्ध न हो उस काम पर रुकावट नहीं हो सकती है। जिस कार्य को करने के लिए कानून किसी को बाध्य नहीं करता है उसे करने के लिए किसी व्यक्ति को विवश नहीं किया जा सकता है।

कानून समाज की इच्छा का प्रतीक होता है। इसे बनाने के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में सहयोग करने का अधिकार सब लोगों को

होता है । यही बात सब लोगों के लिए बराबर लागू होनी चाहिए । योग्यता के आधार पर लोगों को प्रतिष्ठा तथा काम का अवसर मिलना चाहिए । गुण तथा बुद्धि के आधार पर ही कोई अन्तर हो सकता है ।

कानून ही से किसी को दोषी ठहराया जा सकता है, गिरफ्तार किया जा सकता है या बन्दी बनाया जा सकता है । जो लोग कानून के विरुद्ध ऐसा करें उन्हें स्वयं दण्ड दिया जा सकता है । नागरिकों को कानून तुरन्त मानना चाहिए । उसकी उपेक्षा करने से नागरिक स्वयं दोषी होते हैं ।

कानून उन्हीं को दण्ड दे सकता है जिन पर दोष सिद्ध हो जाय । अपराध सिद्ध किए बिना किसी नागरिक को दोषी नहीं घोषित किया जा सकता है ।

किसी प्रकार का मत उस समय तक प्रकट करने का कानूनी अधिकार है जब तक उससे कानून द्वारा स्वीकृत सार्वजनिक हित पर आघात न होता हो ।

नागरिकों के अधिकार की रक्षा के लिए सार्वजनिक शक्तियों के संगठन की आवश्यकता होती है । उसकी पूर्ति के लिए सरकार तथा उसके कर्मचारी होते हैं । उनकी शक्ति सब नागरिकों के लाभ के लिए होती है । उन लोगों को जिनके द्वारा उस सार्वजनिक शक्ति का संचालन होता है अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए ।

व्यक्तिगत सम्पति पर व्यक्ति का पवित्र अधिकार होता है । इससे किसी नागरिक को उससे तब तक वंचित नहीं किया जा सकता है जब तक सार्वजनिक हित के लिए उसकी अत्यन्त आवश्यकता न हो । वह भी सम्पत्ति के अधिकार सम्बन्धी कानून द्वारा स्वीकृत हिसाब से उचित मुआवजा देकर ही ली जा सकती है ।

फ्रांसीसी स्वतन्त्रता घोषणा की मुख्य बातों का यह सारांश है । उस विप्लव ने तो सारे योरोप में क्रान्तिवादी लहर चला दी । फ्रांसीसी विप्लव के सिद्धान्त अन्य राष्ट्रों में भी फैल गये । उनके सिद्धान्त तथा

कार्यक्रम सम्बन्धी बातों में मोटे तौर पर एकता थी । उनमें कोई महत्व-पूर्ण भिन्नता नहीं थी । इससे उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। उस फ्रांसीसी विप्लव ने राजतन्त्र के विनाश तथा प्रजातन्त्र की स्थापना का कार्यक्रम चलाया । अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के बाद उसका प्रभाव एशिया में बीसवीं सदी में भी था ।

जिन राष्ट्रों में पूँजीवाद का बल बढ़ता गया उनमें प्रजातान्त्रिक विप्लव की महत्ता कुछ कम होती गई । जहाँ एकतन्त्र या पराधीनता के साथ सामन्तवाद था वहाँ उस क्रान्ति का महत्व पहले ही ऐसा रहा। योरोप में आयरलैंड का उदाहरण इस बात का प्रमाण है । वहाँ इस शताब्दी में भी प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का ही कार्यक्रम चला । यहाँ आय-रिश स्वतन्त्रता की घोषणा का उल्लेख अच्छा होगा ।

आयरिश जनतन्त्र की घोषणा २१ जनवरी १९१९ को हुई थी । उसका सारांस नीचे है—

'आयरिश राष्ट्र स्वतन्त्र है । सात सौ वर्षों से ब्रिटिश शासन धोखा, सैनिक बल तथा फौजी कब्जा के द्वारा हमारे ऊपर अत्याचार करता आ रहा है । हमारे राष्ट्र ने हमेशा उनका सामाना शस्त्र तथा अन्य साधनों से किया है । अपनी स्वाधीनता के लिए १९१६ में ईस्टर (सोमवार) के दिन जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से डबलिन में आय-रिश जनतन्त्र सेना द्वारा आयरिश जनतन्त्र की घोषणा हुई थी ।

आयरिश जनता अपनी पूर्ण स्वाधीनता कायम रखते हुए न्याय, शान्ति तथा आत्म रक्षा अपने देश में रखने का निश्चय करती है और अन्य राष्ट्रों के साथ सदिच्छा प्रकट करती है । सब नागरिकों के लिये समान अधिकार तथा अवसर सुरक्षित रखते हुए अपनी राष्ट्रीय नीति चलानी है । उसका आधार जनता की इच्छा है ।

राष्ट्र के इतिहास में नवयुग का प्रारम्भ होते ही दिसम्बर १९१८ के आम निर्वाचन द्वारा जनता ने बहुत बड़े बहुमत से आयरिश जनतन्त्र के प्रति अपना पूर्ण विश्वास तथा वफादारी को घोषित कर दिया ।

'हम लोग सशपथ यह घोषित करते हैं कि अपने देश में विदेशी

शासन के अस्तित्व को हम लोग अपने अधिकार पर आक्रमण समझते हैं। इसे हम कभी भी सहन नहीं करेंगे। हमारी राष्ट्रीय मांग है कि अंग्रेजी सेना हमारे देश से निकल जाय।

संसार के सब स्वाधीन राष्ट्रों से हम अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मान्यता तथा सहायता के लिए अनुरोध करते हैं। विश्व शान्ति के लिए हमारी स्वतन्त्रता आवश्यक है।

आयरिश स्वाधीनता संघर्ष की इस अन्तिम अवस्था में आयरिश जनता के नाम पर हम नम्रतापूर्वक उस सर्वशक्तिमान परमपिता परमेश्वर से ईश्वरीय आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करते हुए अपना भाग्य उन्हें सौंपते हैं जिन्होंने भयंकर अत्याचार का सामना शताब्दियों तक करने के लिए हमारे पूर्वजों में साहस तथा दृढ़ संकल्प उत्पन्न किया। हमारे उन पूर्वजों ने हमारे सामने न्याय के लिए दृढ़ता का उज्ज्वल उदाहरण रखा।'

उस घोषणा का सैद्धान्तिक आधार लोकतन्त्र है। उसके कुछ वर्ष पहले ही रूस में हिंसात्मक विप्लव हुआ और मजदूरों तथा किसानों का राज्य स्थापित हुआ। उससे भी पहले सनयात सेन के नेतृत्व में चीनी विप्लव हुआ तथा चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। किन्तु उसकी प्रगति में अनेकों प्रकार की बाधायें पड़ीं। इससे चीनी क्रान्ति अपना ऐतिहासिक कार्यक्रम कोमिंगटेंग के नेतृत्व में पूरी नहीं कर सकी। चीन की प्रथम क्रान्ति की आर्थिक असफलता होने पर उस देश के विप्लवियों ने अपने कार्यक्रम में आमूल परिवर्तन किया और नए ढंग से नए सिद्धान्तों के आधार पर संघर्ष आरम्भ किया। उनके नेता श्री माओत्सेतुंग ने १९४० से कुछ दिनों पहले अपनी पार्टी के कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक बार यह घोषित किया था—

'चीन के कम्युनिस्ट चीनी विप्लव के पूँजीवादी पहलू के बारे में यह मानते हैं कि वह इस समय अनिवार्य है। इस अवस्था में हमें दो ऐतिहासिक कार्यक्रम को पूरा करना है (१) विदेशी साम्राज्यवाद को नष्ट कर चीन को अर्ध औपनिवेशिक अवस्था से मुक्त करते हुए उसे

सच्चे अर्थ में स्वाधीन बनाना (२) जमींदारी या सामन्तवाद और उसके सामाजिक संगठन का नाश कर देश में प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए जनता को सामन्तशाही से मुक्त करना । इन दो ऐतिहासिक कार्यों के बाद समाजवाद की बात पैदा होती है ।'

उसके फलस्वरूप चीन में राष्ट्रीय पूँजीवाद के विकास के लिए अवसर मिला । वह उसी हालत में सम्भव था जब विदेशी आर्थिक प्रभुत्व का अन्त करते हुए जमींदारी तथा ताल्लुकेदारी प्रथा का नाश होता और भूमि जोतने वालों को खेत मिलता—अर्थात् गांवों में जमींदारों का राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभुत्व नष्ट हो जाता ।

इसके सम्बन्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने १९३५ में ही बड़े किसानों के बड़े बड़े फार्मों तथा छोटी मोटी मशीनों के मालिकों की सम्पत्ति की भी रक्षा के लिए यह घोषणा कर दी थी—'सामन्तशाही, उसके अवशेष और साम्राज्यवाद का नाश करने के अभिप्राय से अधिक से अधिक लोगों का सहयोग लाभकर होता है। इस मतलब से कुटीर एवं गृह उद्योग धन्धों में लगे हुए लोगों की भूमि पर सरकार द्वारा कब्जा नहीं होना चाहिए । साथ ही अपने हाथों से पेशा करने वाले लोगों, पुरोहितों (पादरियों), छोटे छोटे व्यवसाइयों तथा मजदूरों की अचल सम्पत्ति को, जिन्होंने नौकरी की कमाई से उसे खरीदी हो, उन्हीं के अधिकार में छोड़ देना चाहिए । यदि उनमें से कुछ लोग स्वयं भूमि की कृषि न करते हों तब भी उनकी जमीन जब्त नहीं होनी चाहिए। स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों तथा सेना के अन्य सैनिकों की भूमि नहीं छीननी चाहिए ।

सहकारी समितियों तथा राष्ट्रीय उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने के साथ ही राष्ट्रीय औद्योगिक उन्नति के लिए व्यक्तिगत (निजी) पूँजी लगाने वाले नागरिकों को भी उत्साहित करना चाहिए। ऐसी पूँजी द्वारा राष्ट्रीय उद्योग धन्धे बढ़ाने के लिए यदि उस पर बहुत कर लगा हो और इस कारण उन धन्धों के बन्द होने की आशंका हो तो कर कम कर उनकी रक्षा के लिए उपाय होना चाहिए ।

काम करने वाले सैनिकों, श्रमिकों, लाल सेना के किसानों और

जापान के प्रतिकूल राष्ट्रीय उद्धार के लिए युद्ध लड़ने वाले सिपाहियों को राष्ट्रीय अधिकार मिलेंगे। यदि सोवियट संगठन के लिए पूँजीवादी विशेषज्ञों की सेवा, पूँजी तथा योग्यता क्रान्तिकारी उद्योग को लाभ पहुँचावे तो उनकी सेवा से लाभ उठाया जायगा। साम्राज्यवाद के प्रतिकूल संघर्ष में भाग लेने वाले ऐसे दल को जो कम्युनिस्ट नहीं भी हैं, प्रजातन्त्रात्मक अधिकार तथा स्वाधीनता दी जायगी।'

अगस्त १९३५ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा चीनी सोवियट सरकार की संयुक्त घोषणा में उपरोक्त बातों का उल्लेख हुआ था। उसी साल मई में माओत्सेतुंग ने कम्युनिस्ट पार्टी के लिए नीचे लिखे आशय का आदेश दिया—'क्रान्ति के मौलिक परिवर्तन में हम लोगों का विश्वास है। प्रजातन्त्रात्मक विप्लव का विकास समाजवाद के रूप में होगा। ऐसे प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के विकास में कई अवस्थायें उत्पन्न होंगी। किन्तु सब का नारा प्रजातन्त्रात्मक जनतन्त्र रहेगा—सोवियट जनतन्त्र नहीं रहेगा। समाजवाद की स्थापना के लिए हम लोगों को प्रजातन्त्रात्मक जनतन्त्र की सारी अवस्थाओं को पार करना आवश्यक है।'

चीनी विप्लव की वर्तमान विचारधारा का सैद्धान्तिक आधार रूसी क्रान्ति के सिद्धान्त हैं, यद्यपि चीनी विप्लव तथा रूसी क्रान्ति के कार्यक्रम में अन्तर है। चीन के समाजवादी विप्लवियों के कार्यक्रम से रूसी कम्युनिस्ट पार्टी का मतभेद बहुत दिनों तक था। संसार को वह अच्छी तरह विदित है। अपनी राष्ट्रीय समस्याओं को सामने रखते हुए चीन में कम्युस्टों ने अपना कार्यक्रम बनाया। फिर भी रूसी विप्लव तथा उसके सिद्धान्तों ने चीन की क्रान्ति पर पूर्ण प्रभाव डाला।

यहाँ रूस के सोवियट विधान की कुछ बातें विषय के लिए उपयोगी होंगी। १९३६ में रूसी सरकार तथा वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्वीकृत रूसी विधान की निम्नलिखित धाराएँ चीनी समाजवादी विप्लवियों तथा रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की आर्थिक योजनाओं का अन्तर प्रकट कर देंगी।

१९३६ के रूसी विधान की पहली धारा (१) सोवियट सोश-

लिस्ट जनतन्त्र का संघ श्रमिकों तथा किसानों का समाजवादी राज है।

चौथी धारा (४) सोवियट समाजवादी जनतन्त्र संघ का आधार समाजवादी आर्थिक व्यवस्था और उत्पादन के औजार तथा साधनों का समाजवादी स्वामित्व है। मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण, उत्पादन के औजारों तथा साधनों का व्यक्तिगत (निजी) स्वामित्व और पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था का अन्त करने के बाद वह घोषित हुआ है।

पाँचवीं धारा (५) सोवियट समाजवादी जनतन्त्र संघ के समाजवादी स्वामित्व का रूप सार्वजनिक सम्पत्ति पर राज का स्वामित्व, या सहकारी सामूहिक स्वामित्व है। उसमें सामूहिक कृषि के अलग अलग फार्म हैं और सहकारी संघों के फार्म भी हैं।

नवीं धारा (९) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था सोवियट यूनियन में सर्वप्रधान व्यवस्था है। उसमें सोवियट कानून अपने हाथ से काम करने वाले किसानों तथा मजदूरों की निजी सम्पत्ति को उसी सीमा तक मान्यता देता है जहाँ तक उससे दूसरे नागरिकों का शोषण नहीं होता है।

दसवीं धारा (१०) के अनुसार कानून अपने श्रम से उपार्जित आय तथा बचत, अपने शरीर सम्बन्धी आवश्यकीय वस्तु तथा घर में पारिवारिक जीवन के जिए जरूरी चीजों के निजी स्वामित्व की रक्षा करता है। ये साम्यवादी व्यवस्था के सोवियट नियम हैं।

तुर्की जनतन्त्र दल ने अपने चतुर्थ विशेष सम्मेलन (काँग्रेस) द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम को मई १९३५ में घोषित किया था। उसका आशय निम्नांकित है—

टर्की का क्रान्तिकारी जनतन्त्र है जिसमें धार्मिक पक्षपात रहित राष्ट्रीय समाज की सार्वभौम सत्ता है। तुर्की राष्ट्र के शासन का आधार शक्ति की एकता का सिद्धान्त है। केवल एक ही सार्वभौम सत्ता है और वह राष्ट्र की सत्ता है जिस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध या दबाव नहीं है।

राष्ट्र की तरफ से ग्रैंड नेशनल असेम्बली उस सार्वभौम सत्ता के

अधिकार को कर्यान्वित करती है । उस परिषद् में विधान एवं कानून बनाने तथा उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का अधिकार निहित है। असेम्बली स्वयं विधान सभा का अधिकार कार्यान्वित करती है । कानून लागू करने तथा शासन चलाने का अधिकारी जनतन्त्र का सभापति है। वह अपना मंत्रिमण्डल नियुक्त करता है। असेम्बली द्वारा उसके सदस्यों में से कोई एक सदस्य सभापति निर्वाचित होता है । तुर्की में न्यायालय बिल्कुल स्वतन्त्र है ।

जनता के जनतन्त्र दल का विश्वास है कि राष्ट्र ही सार्वभौम सत्ता तथा जनता की इच्छा का मुख्य मूल या श्रोत होता है । राज के प्रति नागरिक तथा नागरिकों के प्रति राज के पारस्परिक कर्तव्यपालन की निष्ठा उस सार्वभौम सत्ता तथा सार्वजनिक इच्छा को कार्यान्वित करने के लिए महत्वपूर्ण होती है । कानून के सामने सब लोग बिलकुल बराबर हैं। किसी व्यक्ति, परिवार या वर्ग के लिए कोई विशेष सुविधा नहीं है। व्यक्ति जनता ही का छोटा अंग है । वह जनता ही के हित के लिए रहता है ।

यह मुख्य सिद्धान्त है कि तुर्की जनतन्त्र का राष्ट्र भिन्न भिन्न वर्गों से नहीं बना है। तुर्की राष्ट्र ऐसा समाज है जिसमें तुर्की कौम के सामूहिक हित तथा व्यक्ति की भलाई के अभिप्राय से आवश्यकीय श्रम विभाजन के लिए विभिन्न पेशा के लोगों का एकीकरण है। किसानों, मिस्त्रियों, कारीगरी का काम अपने हाथों से करने वाले, मजदूरों, व्यवसाइयों तथा जनता के नौकरों के मुख्य मुख्य समूह हैं, उन लोगों से राष्ट्र के विभिन्न अंग बने हैं। नागरिकों तथा समाज के कल्याण के लिए उनमें से प्रत्येक पेशा का कार्य अनिवार्य होता है ।

धर्म निजी विश्वास का विषय होता है। राजनीति तथा धर्म को बिलकुल अलग रखने से तुर्की राष्ट्र, राज तथा संसार का हित होगा। हमारे राष्ट्र की सफलता धर्म तथा राजनीति को पृथक रखने से होगी ।

तुर्की जनतन्त्र की स्थापना तो प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही हो गई थी। किन्तु उपरोक्त घोषणा १९३५ में काफी अनुभव के बाद हुई।

इसके कुछ दिन पहले जब योरोप में फासिस्टवाद का प्रचार तेजी से हो रहा था तब स्पेन में राजतन्त्र के विरुद्ध क्रान्ति हुई थी। स्पेन के जन तन्त्र की स्थापना होने पर दिसम्बर १९३१ में उसके विधान की घोषणा हुई। यहाँ उसके कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की चर्चा उपयोगी होगी। उस घोषणा के कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं—

'स्पेन सब श्रेणी के श्रमिकों का प्रजातान्त्रिक जनतन्त्र है। इसका संगठन स्वाधीनता तथा न्याय के आधार पर हुआ है। इसके विभिन्न अंगों के अधिकार जनता से ही मिलते हैं।

स्पेन के नागरिकों के अधिकार तथा कर्तव्य बराबर हैं। कानून के सामने सब नागरिक समान हैं। देश की सम्पत्ति पर राष्ट्र का आधिपत्य है भले ही उसका मालिक कोई व्यक्ति हो। सार्वजनिक हित के लिए उचित मुआवज़ा देकर व्यक्ति किसी सम्पत्ति से बेदखल किया जा सकता है। उत्पादन बढ़ाने के लिए राज उद्योग धन्धों की उन्नति तथा सामंजस्य में स्वयं भाग ले सकता है। किन्तु किसी भी हालत में किसी नागरिक की सम्पत्ति मुआवज़ा दिये बिना ज़ब्त नहीं की जा सकती है।'

स्पेन की जनतंत्रात्मक क्रांति अपने सिद्धांतों के अनुसार शासन नहीं चला सकी। विभिन्न विप्लवी दलों में मतभेद होने तथा योरोप के सुधारवादी शक्तियों के षणयंत्र के फलस्वरूप विप्लव असफल हुआ। क्राँति-विरोधी शक्तियाँ सफल हो गई और प्रतिक्रियावादी तनाशाही की स्थापना हुई। इस प्रकार योरोप में क्रांति के विरोध में एक राष्ट्र अधि-नायकतंत्र का शिकार हुआ।

योरोप में तो प्रजातन्त्रात्मक विप्लव तथा प्रगतिशील शक्तियों के मुकाबले में नाजीवाद विभिन्न रूप में शक्ति संचय कर रहा था किन्तु एशिया में चीनी विप्लवियों के अतिरिक्त भारतीय क्रान्तिकारी बहुत सक्रिय थे। कई विप्लवी दल प्रयत्नशील थे। विशेषतः हिन्दुस्तान समाज-वादी जनतन्त्र संघ नामक गुप्त विप्लवी पार्टी द्वारा संचालित संघर्ष तथा उसके नेताओं—स्मरणीय चन्द्रशेखर आज़ाद, सरदार भगतसिंह आदि के बलिदान से भारतीय विप्लव के लिए वायुमण्डल तैयार हो रहा था।

भारत का जन-संगठन-राष्ट्रीय काँग्रेस-भी तेजी से आगे बढ़ रही थी। उसने दिसम्बर १६२६ में लाहोर के अपने वार्षिक अधिवेशन द्वारा प्रजातन्त्र तथा पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में ऐसे शब्दों में किया——

अपने विकास के लिए पूरी सुविधा तथा अवसर प्राप्त करना, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, अपने काम के फल भोगने की सुविधा होनी तथा स्वतन्त्रता भारतीय राष्ट्र का अविच्छेद्य अधिकार है वैसे ही यह अन्य राष्ट्रों का भी जन्मसिद्ध अधिकार होता है। यदि कोई सरकार किसी राष्ट्र को इन जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित करती है और उस पर अत्याचार करती है, तो जनता को यह हक है कि उस सरकार को बदल दे या मिटा दे। भारत में ब्रिटिश सरकार ने न केवल भारतीय जनता को स्वाधीनता से वंचित किया है बल्कि अपने को जनता के शोषण पर निर्भर रखा है और आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भारत का पतन किया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारत को ब्रिटिश राज्य से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहिए तथा पूर्ण स्वराज्य या पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिए।'

इस घोषणा के बाद सैंकड़ों क्रान्तिकारियों को फांसी या गोली का शिकार होने, हजारों के प्राण न्योछावर, लाखों की जेल यन्त्रणायें तथा करोड़ों की विभिन्न प्रकार की वेदना होने के पश्चात्, १५ अगस्त १६४७ को भारत स्वाधीन हुआ और २६ जनवरी १६५० को भारतीय जनतन्त्र की स्थापना हुई।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति

क्रान्ति के सैद्धान्तिक आधार के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण से विचार विनिमय हुआ है । अब इस बात पर भी ध्यान जाना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रीय विप्लव में कहाँ तक प्रगति हो रही है तथा भारत की स्वतन्त्रता संसार के विप्लव में कहां तक क्रान्तिकारी योग दे रही है। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय क्रान्ति की आधुनिक अवस्था के पहले ही कई राष्ट्रीय संघर्ष चले । उनसे वर्तमान क्रान्ति के लिए कहाँ तक अनुकूल वातावरण उत्पन्न हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर विषय समझने के लिए सहायक होगा ।

इस मतलब से सबसे पहले प्रथम स्वाधीनता संघर्ष की बातें विचारणीय हैं । भारतवर्ष में उस समय तक एकतन्त्र, सामन्तवादी आदि प्रथाओं के विनाश के लिए कोई राष्ट्रीय प्रयास नहीं हुआ था । जैसे योरोप में औद्योगिक क्रान्ति के बाद सामन्तशाही दिन प्रतिदिन निर्बल होती गई और प्रजातन्त्र विशेषत: १७८९ के फ्राँसीसी विप्लव के बाद एकतन्त्र के विनाश के लिए सबल होता गया, वैसे एशिया या हिन्दुस्तान में कोई विप्लवी प्रजातन्त्रात्मक प्रयास अठारहवीं या उन्नीसवीं शताब्दी में नहीं हुआ ।

उसके बदले एशिया के देशों में यूरोपीय पूँजीवाद के आक्रमण होने लगे । साथ ही योरोप के कई देशों में साम्राज्य स्थापित हो गये । फलस्वरूप भारत में एकतन्त्र तथा सामन्तशाही को भी उसका कुफल भोगना पड़ा । इस देश का अधिकाँश भाग ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत चला गया । फूट होने पर भी पराधीनता लोगों को दुखदाई होने लगी । विदेशी शासन की पहली शताब्दी पूरी भी नहीं हुई थी तभी उसके प्रतिकूल विद्रोह के अंकुर जम गए ।

१८५७ में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध भीषण राष्ट्रीय संघर्ष आरम्भ हुआ। उसके सम्बन्ध में कई विवाद-ग्रस्त बातें प्रचलित हैं। उन्हें साफ साफ समझने से भारतीय राष्ट्रीय विप्लव में उसकी देन मालूम हो सकती है। पहला सवाल तो यह है कि १८५७ का आन्दोलन क्या प्रथम स्वाधीनता संग्राम था ? क्या वह केवल सैनिकों का गदर नहीं था ? यदि वह केवल सामन्तों का विद्रोह था तो उससे साम्राज्यवाद को कैसे धक्का लग सकता था ? यदि वह साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष था तो उससे सर्वसाधारण जनता को कुछ लाभ की आशा होनी ठीक थी या नहीं ? यदि वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय प्रयास था तो क्या वह राष्ट्रीय विप्लव का अग्रगामी संघर्ष था ? क्या उससे प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार होनी प्रारम्भ हुई ? इन प्रश्नों के उत्तर से राष्ट्रीय संघर्ष तथा वर्तमान राष्ट्रीय क्रान्ति में उनकी देन के बारे में बहुतेरी बातों का स्पष्टीकरण हो जायगा। इसलिये सबसे पहले उन्हीं को हल करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अंग्रेज़ इतिहासकारों तथा ब्रिटिश शासकों ने तो सदा यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि १८५७ का भारतीय संघर्ष केवल सैनिकों का विद्रोह था। यदि उनका यह कथन असत्य हो जाय तो उस आन्दोलन पर बहुत प्रकाश पड़ सकता है।

सबसे पहले दो प्रश्नों पर विचार होना चाहिए। १८५७ का संघर्ष स्वतन्त्रता के लिए प्रथम आन्दोलन था या नहीं तथा वह केवल सैनिकों का विद्रोह था या नहीं ? सब लोग जानते हैं कि जो बात या घटना जितनी ही बड़ी या व्यापक होती है उतने ही बड़े इसके कारण भी होते हैं। कोई भी आन्दोलन किसी कारण बिना नहीं होता है। विशेषतः ऐसा संघर्ष जिसमें प्राण न्योछावर की बात होती है, किसी आदर्श, उच्च ध्येय तथा प्रेरणा के बिना नहीं आरम्भ हो सकता है। आत्मबलिदान तथा महान कार्य के लिए मनुष्य तभी उद्यत होता है जब हृदय एवं मस्तिष्क को प्रेरित करने के लिए अच्छे तथा महत्वपूर्ण सिद्धान्त होते हैं।

१८५७ का भारतीय आन्दोलन कोई छोटी मोटी घटना नहीं था। एक साम्राज्य का सामना करना था। लाखों व्यक्ति अपने सर्वस्व के विनाश की आशंका होने पर भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध परतन्त्रता मिटाने के लिए कटिबद्ध हुए थे। राजा, नवाब, सामन्त, ब्रिटिश सेना के सैनिक, पंडित, मुल्ला तथा कहीं कहीं साधारण जनता के प्रमुख लोग भी उसमें सहयोग दे रहे थे। तीन चार प्रान्तों में संघर्ष हुआ था। तात्पर्य यह है कि वह बहुत बड़ा आन्दोलन था। वह किसी उच्च ध्येय की आकाँक्षा से ही आरम्भ हो सकता था।

उसका लक्ष्य स्वराज्य एवं स्वधर्म था। परतन्त्रता का विनाश तथा अपने अपने धर्म की रक्षा की भावना उस समय लोगों को प्रेरणा दे रही थी। भारतवासियों का राज्य रहे तथा धर्म सुरक्षित रहे—ये दोनों प्रमुख लक्ष्य थे। इन्हीं से अन्य बातें पैदा हुई थीं।

पहले देश के व्यवसाय और उसके बाद विभिन्न रियासतों पर अंग्रेजों ने अधिकार जमाया। तब हिन्दुस्तानियों को परतन्त्रता का कटु अनुभव होने लगा। उस समय तक समाज का नेतृत्व राजाओं एवं सामन्तों के हाथों में था। मुगल बादशाह शक्तिहीन हो गए थे। आपसी फूट के कारण कोई देशव्यापी राज्य या संगठन नहीं था। तब भी हजारों मील दूर रहने वाले अंग्रेजों का राज्य भारत में स्थापित होने से बादशाह, राजाओं, सामन्तों, नवाबों तथा अन्य लोगों में भी अपने देश के निवासियों के राज्य की इच्छा उत्पन्न हुई। अपने ही देश के लोग हिन्दुस्तान में शासन करें और विदेशी शासन न रहे—यही राजनीतिक लक्ष्य था।

जब यहाँ के लोगों के धर्म पर ईसाई मत के अंग्रेज़ प्रचारकों द्वारा आघात होने लगा तब हिन्दुओं एवं मुसलमानों दोनों में धर्म-मज़हब की रक्षा की भावना जागृत हुई। "दीन दीन" की पुकार हुई। राजा, रंक, धनी, निर्धन, हिन्दू, मुसलमान अर्थात् सारे भारतीय समाज में इससे कुछ राष्ट्रीय जागृति हुई। इस बात की पुष्टि दिल्ली के तत्कालीन बादशाह की एक घोषणा से हुई। यह स्वराज्य के सम्बन्ध में हुई थी। उसका कुछ अंश ऐसी भाषाओं में था—"ऐ हिन्दुस्तान के नौजवान लड़को! अगर आप लोग

पक्का इरादा कर लें तो दुश्मनों (अंग्रेज़ों) को बात की बात में भगा देंगे। हम लोग उनको दबा देंगे और जान से भी प्यारे मुल्क और मज़हब का डर मिटा देंगे।"

फिर बरेली की घोषणा हुई—"हिन्दुस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो ! उठो ! भाइयो ! उठो ! ख़ुदा ने जिन चीजों को दिया है उनमें सबसे कीमती चीज़ अपना राज्य (स्वराज्य) है। क्या जुल्मी शैतान जिसने धोखे से हम से इसे छीन लिया है, हमेशा के लिए हमें इससे अलग रखेगा ? क्या ख़ुदा की मर्ज़ी के खिलाफ ऐसा हमेशा होता रहेगा ? नहीं नहीं। विदेशियों ने इतना ज़ुल्म किया है कि अब गुनाह का प्याला भर चुका है। अब आगे भी हमारा पाक मज़हब बिगाड़ने का बुरा हौसला उन्हें है। क्या अब भी आप काहिली करेंगे ? ख़ुदा यह नहीं चाहता है कि आप इस तरह बैठे रहें। अपने मुल्क से अंग्रेजों को बाहर निकालने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों में उन्होंने हौसला पैदा किया है। ख़ुदा की फ़ज़ल और तुम्हारी बहादुरी से वे इस तरह शिकस्त खायेंगे कि हिन्दुस्तान में उनका नामो-निशान नहीं रहेगा। हमारी इस फ़ौज में छोटे बड़े का फ़ज़ूल फ़र्क नहीं रहेगा और हर तरह बराबरी रहेगी क्योंकि मज़हब की महफ़ूज़ी की पाक लड़ाई में जो भी तलवार उठाएगा वह बराबर शानदार होगा। सभी भाई भाई हैं। इसलिए उनमें किसी तरह का फ़र्क नहीं रहेगा। इससे मैं हिन्दुस्तानी भाइयों से कहता हूँ उठो और ख़ुदाई फर्ज़ के लिए मैदाने जंग में कूद पड़ो।"

इन घोषनाओं से यह बात साफ साफ ज्ञात होती है कि उस संघर्ष में भाग लेने वाले लोगों का लक्ष्य भारतीय राज्य (स्वराज्य) की स्थापना तथा धर्म (मज़हब) (स्वधर्म) की रक्षा था। उस ध्येय की प्राप्ति के लिए तत्कालीन समाज के नेता सक्रिय थे। गंगा तट एवं अन्य कई स्थानों पर मन्दिरों में पंडित और मस्जिदों में मुल्ला उसका प्रचार करते थे। वे कहीं कहीं साधारण लोगों से उसके लिए होने वाले प्रयास में सहयोग करने के लिए प्रतिज्ञा कराते थे।

उधर सेना में असन्तोष बढ़ रहा था। अंग्रेज तथा हिन्दुस्तानी

होने के आधार पर एक ही पद के लिए दो प्रकार की सुविधा थी। इस से भारतीय सैनिक असन्तुष्ट थे। फिर चरबी लगी कारतूस की बात उनमें फैलाई गई। राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक कार्यकर्ताओं ने उससे लाभ उठाया। भारतीय सिपाहियों को भड़काया गया। उनका असन्तोष बढ़ाया गया। उनका क्रोध राष्ट्रीय संघर्ष के लिए अनुकूल वातावरण में वैसे ही काम कर गया जैसे बारूद में चिनगारी करती है।

इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि राजनीतिक लक्ष्य (स्वराज्य) एवं धार्मिक रक्षा (स्वधर्म) के अभिप्राय से समाज के नेता, धार्मिक मनुष्य तथा सैनिक पारस्परिक सहयोग से विदेशी शासकों को भारत से निकाल कर स्वाधीनता चाहते थे। इससे यही ज्ञात होता है कि उस समय का वह महान प्रयास स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रथम संघर्ष था।

अवश्य ही बादशाह, राजा, सामन्त तथा सैनिक उस आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उस समय तक देश में सामन्तशाही थी। साधारण जनता में संगठन का विकास नहीं हुआ था। इससे समाज के जो नेता थे वे ही सक्रिय हुए। यदि सामन्तवादी व्यवस्था में कोई सार्वजनिक संस्था या संगठन नहीं रहता है तो इसी बात की आशा रहती है कि तत्कालीन समाज के संचालक ही जनता का नेतृत्व या संचालन करेंगे। इससे देशव्यापी राज, सरकार या संगठन के अभाव में विभिन्न राज्यों तथा रियासतों के राजा, नवाब तथा सामन्त विदेशी-विरोधी भावना के प्रचारक बने। उनके तथा सैनिकों के नेतृत्व में राष्ट्रीयता का भाव लोगों को प्रभावित करने लगा। फलतः अंग्रेजों के विरुद्ध कई प्रान्तों में प्रथम स्वाधीनता संग्राम हुआ।

विदेशी शासक अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिए बीसवीं शताब्दी में अपने अन्तर्गत सामन्तवाद के अवशेष का विनाश प्रायः नहीं करते थे क्योंकि उन्हें राजाओं, नवाबों, सामन्तों आदि से कुछ सहायता मिलती थी। परन्तु जब अंग्रेजी साम्राज्य अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में स्थापित हो रहा था, तब उसका विरोध सामन्त-

वाद ही से हुआ। उस अवसर पर भारतीय सामन्तवाद साम्राज्यवाद का विरोधी बना।

सामन्त-प्रधान व्यवस्था में साधारण लोगों का शोषण बादशाह, राजा, नवाब या ताल्लकेदार द्वारा होता तो है किन्तु तब भी उस देश का धन दूसरे देश में नहीं जाता है। साम्राज्यवाद से पूरे राष्ट्रीय समाज का शोषण दूसरे देश के शासकों या समाज द्वारा होता है। सामन्तवाद में अनेकों दुर्गुण होने पर भी लोग विदेशी शासन की अपेक्षा अपने देश के सामन्तों या राज्य को अधिक चाहते हैं। इससे अपने देश के सामन्तवादी व्यवस्था का समर्थन विदेश के साम्राज्य के विरुद्ध होता है। यही बात १८५७ में हुई। भारतीय सामन्तवाद ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरोध में संघर्ष चलाया।

यदि यह आन्दोलन भारत में सफल हो गया होता तो अंग्रेजी साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जाता। भारतीय राष्ट्र साम्राज्यवाद के शोषण से बच जाता। केवल भारत ही नहीं बल्कि पश्चिमी भाग को छोड़ बाकी सारा एशिया उसके आक्रमण से कम से कम उन्नीसवीं शताब्दी में बच जाता। आधुनिक युग के संसार का सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित ही नहीं होने पाता।

साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष होने से भारत की स्वाधीनता प्राप्त होती। साथ ही लंका, वर्मा, मलाया एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया की स्वतन्त्रता सुरक्षित होती। यह तो पूर्णतः स्पष्ट है कि उस राष्ट्रीय प्रयास की सफलता से केवल भारत ही शोषण से नहीं बचता बल्कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद निर्बल होता। संसार में इसका प्रभुत्व नहीं बढ़ने पाता।

फलतः प्रजातन्त्र का विरोध करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्ति भारत एवं एशिया में दृढ़ नहीं होती। जनतन्त्र की स्थापना में सुविधा होती। इस प्रकार यह विदित होता है कि १८५७ का भारतीय संघर्ष प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध तो था ही साथ ही वह साम्राज्यवाद-विरोधी था। उससे प्रजातन्त्रात्मक शक्तियों को प्रोत्साहन मिला। सारांश यह है कि वह साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय विप्लव के लिए प्रथम राष्ट्रीय प्रयास था।

अभाग्यवश स्वाधीनता के लिए होने वाले उस राष्ट्रीय आन्दोलन को सफलता नहीं मिली। भारतवर्ष पराधीन रह गया। गुलामी की जंजीरों से जनता अच्छी तरह जकड़ दी गई। सारा देश परतन्त्र हो गया। भारत की परतन्त्रता हिन्दुस्तानियों के लिए घातक हुई। साथ ही सारे एशिया पर उसका असर पड़ा। इसकी पराधीनता एशिया को कमजोर करती गई।

अब इसकी स्वाधीनता एशियाई राष्ट्रों के उत्थान में सहायक हो सकती है। इससे हिन्दुस्तान की आज़ादी एशिया की उन्नति का बहुत बड़ा साधन हो सकती है। जिस देश के उत्थान से इतने बड़े महाद्वीप की ससस्याओं को हल करने में सहायता मिल सकती है उसके उद्धार के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीय का सर्वप्रथम कर्तव्य होता है।

पराधीनता में सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि हिन्दुस्तान कैसे स्वतन्त्र होवे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद दोनों विश्व युद्ध के अवसर पर अपनी रक्षा करने में सफल हुआ। उसकी जड़ नष्ट नहीं हुई। अपनी सहायता के लिए उसने अनेकों प्रकार के उपाय किये। अंग्रेजी शासन ने भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिख, अछूत आदि का प्रश्न पैदा कर ही दिया। भारतीय राष्ट्र की आपसी कटुता बढ़ाने में वह सफल रहा। अनेकों सामाजिक बुराइयाँ बढ़ गईं। उन में से कई अब भी निर्मूल नहीं हुईं।

यदि कोई यह समझे कि केवल ब्रिटिश राज्य के मिट जाने से भारतवर्ष की सारी बुराइयाँ तथा कष्ट मिट जावेंगे तो उस की भूल है। यह ठीक है कि अंग्रेज़ी शासन से हिन्दुस्तान के सब नागरिकों की हानि किसी न किसी रूप में होती थी। वह कुप्रथाओं तथा कुरीतियों के समर्थकों को प्रोत्साहित करता था। ऐसा होना स्वाभाविक था। साम्राज्यवाद अपनी रक्षा के लिए भारतीय समाज में बुरी प्रथाएँ इस अभिप्राय से जारी रखता था कि स्वार्थी या देशद्रोही लोग अपने निजी स्वार्थ के लिए विदेशी राज्य को सहायता दें और बदले में अपने भी अनुचित लाभ उठावें या जनता का शोषण करें। अंग्रेजी कौम भारतीय

राष्ट्र के शोषण में अपनी सुविधा के लिए सामन्तवाद के पृष्टपोषकों तथा पूँजीपतियों को कुछ हिस्सा देती थी।

अब इस देश के निवासियों का सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वे साम्राज्यवाद का अन्त इस प्रकार से करें कि उससे भविष्य में भी भय न रह जाय। शोषण के मूल आधार के नाश से उस पर निर्भर रहने वाली कुप्रथाएँ तथा कुरीतियाँ साधारण प्रयास से नष्ट हो सकती हैं। अर्थात भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक प्रजातन्त्र से आर्थिक समस्याएँ सरलतापूर्वक हल हो सकती हैं। साथ ही सामाजिक बुराइयाँ भी मिट सकती हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि जब तक स्वतन्त्रता नहीं मिली थी तब तक देशी नरेशों के अधिकार तथा जमींदारी या ताल्लुकेदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रयत्न होने की आवश्यकता नहीं थी। असल बात तो यह है कि जमींदारी प्रथा का अन्त जल्दी से जल्दी होना चाहिए था। सारांश यह है कि भारतवर्ष में राष्ट्र की भलाई के लिए और प्रजातन्त्र को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक था कि ब्रिटिश शासन के साथ जमींदारी, ताल्लुकेदारी, जागीरदारी तथा देशी नरेशों के विशेषाधिकार का अन्त हो। भारतीय राष्ट्र का संगठन राजनीतिक तथा आर्थिक प्रजातन्त्र के अनुसार होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि पराधीनता के नाश के साथ ही गरीबी भी मिटनी चाहिए। परतन्त्रता तथा दरिद्रता दोनों सहयोगी होती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर गरीबी आसानी से मिट सकती है।

ऐसा राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन धीरे धीरे सुधार से नहीं हो सकता है बल्कि क्रान्ति द्वारा शीघ्र हो सकता है। इसी से भारत में प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति जल्दी सफल बनाने की आवश्यकता है। इस क्रान्ति का प्रथम कर्तव्य यह है कि हर प्रकार का विदेशी प्रभुत्व मिट जाय और राष्ट्रीय जनतन्त्र सुसंगठित हो जाय। इसके द्वारा भारतीय राष्ट्र को अपना प्राकृतिक अधिकार देश के सब साधनों पर सुदृढ़ तथा राष्ट्रीय राजसत्ता अनियंत्रित रखते हुए संसार में अपना उत्तरदायित्व स्वयं निबाहने के लिए

अपनी शक्ति बढ़ानी है। ऐसे विप्लव को जिसके द्वारा ऐसा कार्यक्रम पूरा होता है, प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति कहा जाता है। अर्थात हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद राजनीतिक तथा आर्थिक प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासन चलाने के अभिप्राय से जनतन्त्र को शक्तिशाली बनाने के लिए जिस विप्लव की सफलता आवश्यक है, उसे राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक क्राँति कहना ठीक है।

राष्ट्रीय क्रान्ति से परतन्त्रता और सामन्तशाही तो नष्ट होती ही है। खेत जोतने वाले अपने खेत तथा पैदावार के मालिक भी होते हैं। साथ ही मुख्य मुख्य उद्योग धन्धों पर राष्ट्र का आधिपत्य हो सकता है। राष्ट्रीय राज का पूरा नियन्त्रण पूँजीवाद पर रह सकता है।

इस बात की चर्चा आगे होगी। यहाँ इतना ही कहना है कि राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्र के जो लोग जिन अधिकारों से वंचित हों, उन लोगों को समान रूप से समाज तथा देश के सब साधनों, सुविधाओं और सम्पत्ति का उपभोग करने के लिए समान अधिकार मिलने चाहियें। धर्म, जाति, वंश या रंग के कारण कोई किसी अधिकार से वंचित नहीं रहना चाहिये। देश के सब साधन सब नागरिकों के लिए बराबरी के आधार पर उपलब्ध होने चाहियें। राष्ट्रीय विप्लव के सिद्धान्त एवं कार्यक्रम में ऐसी सारी बातें निहित होती हैं। भारतीय जनतन्त्र इन्हें कार्यान्वित करने के लिये प्रयत्नशील है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसी बातें किस उपाय से पूरी हो सकती हैं? इस कार्यक्रम को पूरा करने का साधन क्या हो सकता है? उस साधन का प्रयोग कौन कैसे कर सकता है?

यह तो विदित ही है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में कुरीतियों तथा कुप्रथाओं का अन्त हो रहा है और भारतीय जनतन्त्र की नींव राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा दृढ़ हो रही है। अंग्रेजी शासन की भ्रमात्मक सुधारवादी नीति से राष्ट्रीय काँग्रेस तथा उसके नेतृत्व में क्रान्तिकारी शक्तियाँ भ्रम में नहीं पड़ीं और राष्ट्रीय विप्लव के लिए आगे बढ़ती गईं। यह उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि स्वराज्य कोई देता नहीं है बल्कि स्वा-

धीनता अपने बल से ली जाती है । पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का उपाय दूसरे देश की पार्लियामेंट द्वारा कानून पास कराना नहीं होता है बल्कि अपने राष्ट्र को जागृत एवं संगठित कर उसे सबल बनाना तथा राजनीतिक सार्वभौम सत्ता पर अधिकार जमाना होता है । इसके लिए विप्लव साधन होता है । सुधार तो पराधीन देश की क्रान्तिकारी शक्तियों को विचलित करने के लिए होता है । राष्ट्रीय क्रान्ति ही विदेशी शासन का अन्त करती है और अपने देशवासियों को इस योग्य बनाती है कि वे राजनीतिक सत्ता अपने हाथों में लें तथा उसे चलावें । उस राष्ट्रीय विप्लव का प्रारम्भ १९४२ में विप्लवी आन्दोलन के रूप में राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में हुआ । उसमें आज़ाद हिन्द फ़ौज, गुप्त विप्लवी दल (हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्रसेना), फ़ार्वर्ड ब्लाक इत्यादि की भी देन थी ।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि राष्ट्रीय क्रान्ति का संचालन कौन कर सकता है । इसका नेतृत्व करने के लिए ऐसी राजनीतिक पार्टी का देशव्यापी संगठन आवश्यय१. होता है जो राष्ट्र को संगठित कर सके तथा जिस पर देश के निवासियों के बहुमत का विश्वास हो । राजनीतिक पार्टी उस राजनीतिक संगठन को कहते हैं जिसमें राष्ट्र के विभिन्न अंग सम्मिलित होते हैं, जिनका एक राजनीतिक लक्ष्य होता है और जो एक सामान्य अनुशासन में काम करता है । देश की जनता के किसी एक अंग या श्रेणी का संगठन राष्ट्रीय राजनीतिक दल नहीं होता है । राजनीतिक पार्टी जनता के ऐसे भिन्न भिन्न अंगों का सम्मिलित संगठन होती है जो एक ध्येय प्राप्त करना चाहते हैं तथा जो एक अनुशासन में रहते हैं । ऐसे ही राजनीतिक दल के नेतृत्व की सफलता का प्रमाण भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति में मिलता है ।

वही राजनीतिक दल राष्ट्रीय विप्लव को सफल बना सकता है जिसमें राष्ट्र के ऐसे अंगों या वर्गों के लोग सम्मिलित रहते हैं जो क्रान्ति के समर्थक होते हैं । प्रायः शिक्षित नागरिक राष्ट्रीय भावना से कुछ न कुछ अवश्य प्रभावित रहते हैं । राष्ट्रीयता स्वयं क्रान्तिकारी शक्ति होती है । विशेष कर परतन्त्र देश में वह विप्लवी तथा प्रगतिशील भाव लोगों में

उत्पन्न करती है। उससे पराधीन नागरिक किसी न किसी अंश में प्रभावित होते हैं। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी रहते हैं जो अपने देश के उत्थान के प्रति उदासीन हो कर अपने आर्थिक स्वार्थ ही को प्रधान मानते हैं और राष्ट्रीय क्रान्ति का विरोध करते हैं।

ऐसे लोगों को किसी ऐसे राजनीतिक दल में नहीं रहना चाहिए जो राष्ट्रीय विप्लव के लिए प्रयत्नशील हों। उसमें ऐसे ही लोगों को सम्मिलित होना चाहिए जो राष्ट्रीयता से प्रेरित हो कर अपने स्वार्थ का बलिदान करते हों अथवा जो इस बात को समझते हों कि क्रान्ति से राष्ट्रीय हित के साथ ही उनकी भी भलाई है।

यहाँ व्यक्ति की बात छोड़ कर समाज के भिन्न भिन्न अंगों के सम्बन्ध में यह विचार करना है कि वे क्रान्तिकारी हैं या नहीं। यह अच्छी तरह जान लेने पर ऐसा राजनीतिक दल संगठित करने या पहले से कोई दल हो तो उसे शक्तिशाली बनाने में विशेष सफलता मिल सकती है। तभी वैसा सुसंगठित राजनीतिक दल या संगठन राष्ट्रीय विप्लव का ठीक संचालन कर उसे सफल बना सकता है।

इस विषय पर दो दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए। पहला आर्थिक तथा दूसरा बौद्धिक या मनोवैज्ञानिक। यदि आर्थिक दृष्टिकोण पर ध्यान दिया जाय तो यह कहना बिलकुल ठीक होगा कि भारतवर्ष में किसानों की दशा सन्तोषजनक नहीं है। यद्यपि उनकी शिक्षा की तरफ विदेशी शासन का ध्यान नहीं के बराबर था तब भी भारतीय किसान राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्र के अन्य श्रेणियों से पीछे नहीं थे बल्कि कई वर्गों से बहुत आगे थे।

उन्हें इस बात का विश्वास था कि स्वाधीन होने पर उनका दुःख दूर होगा और जमींदारी प्रथा द्वारा जो शोषण या अत्याचार होता था उसका अन्त हो जायगा। अर्थात् वे यह समझते थे कि स्वतन्त्रता से केवल मानसिक उन्नति नहीं होगी बल्कि देश की गरीबी भी मिटेगी। वे सबसे अधिक पीड़ित थे। इसलिए वे संख्या के दृष्टिकोण से पराधीनता और उसके द्वारा होने वाले अन्याय, अत्याचार या शोषण से

छुटकारा पाने के लिए सबसे अधिक तत्पर थे । अब भी किसान राष्ट्रीय क्रान्ति को सफल बनाने के लिए बिलकुल उद्यत हैं । हिन्दुस्तान में किसान श्रेणी पूरी तरह से क्रान्तिकारी है । राष्ट्रीय विप्लव की सफलता या उसकी रक्षा के लिए वे कठिनाइयो से विचलित नहीं होते हैं।

भविष्य में भी ऐसा ही होने की पूरी आशा है। अब तक का अनुभव इस बात का प्रमाण है। अर्थात् भारत में किसान क्रान्तिकारी कार्य-क्रम पूरा कर सकता है और कर रहा है।

मजदूरों के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि वे भी विप्लवी हैं । यह बात अवश्य है कि १९४५ तक जितने राष्ट्रीय संघर्ष हिन्दुस्तान में चले उनसे मजदूर राजनीतिक दृष्टिकोण से उदासीन रहे। उन्होंने उनमें सक्रिय भाग नहीं लिया। संख्या के विचार से भी उनका महत्व भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में १९४२ के विप्लवी विद्रोह तक नहीं के बराबर था । उद्योग धन्धों में लगे हुए मजदूरों की संख्या उस समय करीब ढाई फ़ीसदी थी। उनमें सार्वहारा कहे जाने वाले श्रमिक अब तक बहुत ही कम हैं ।

सर्वाहारा उस व्यक्ति या श्रेणी को कहते हैं जिसके पास अपने श्रम के अतिरिक्त जीवन निर्वाह के लिए कोई दूसरा साधन नहीं होता है। अर्थात् यदि वह स्वयं मजदूरी न करे तो भूखों मर सकता है। ऐसे मजदूर भारतवर्ष में बहुत ही कम हैं।

भारत में जो मजदूर हैं उनमें अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो गांवों के निवासी हैं। उनके परिवार की खेती के लिए कुछ खेत हैं । किन्तु उनके पास कृषि के लिए भरपूर भूमि नहीं है। इससे किसान परिवार के लोग मिलों में काम करते हैं । रोटी की खोज में वे शहरों में जाते हैं और मिलों में नौकरी करते हैं। परन्तु उनका ध्यान अपने अपने गाँवों पर लगा रहता है । असल में वे कुछ दिनों किसान रहते हैं और कुछ दिनों मजदूर रहते हैं। सभा करने, जल्दी ही एकत्रित होने तथा प्रचार के लिए कृषकों की अपेक्षा मजदूरों को बहुत सुविधा रहती है। तब भी यह कहना पड़ता है कि कृषक वर्ग के समान भारतीय मजदूर वर्ग राष्ट्रीय संघर्षों में

भाग नहीं लेता था। सम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलनों में श्रमिक श्रेणी की देन नाम मात्र ही कही जा सकती है।

कुछ भी हो किन्तु उद्योग धन्धों में लगे हुए श्रमिकों का शोषण ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा होता था। साथ ही उनका शोषण भारतीय पूँजीवाद तथा सामन्तवाद के अवशेष द्वारा भी होता था। इससे हिन्दुस्तानी मजदूर विदेशी शासन तथा पूँजीवाद को नाश करना चाहते थे। राष्ट्रीयता भी उन्हें प्रेरित करती थी। इन कारणों से वे क्रान्तिकारी प्रयास का समर्थन करते हुए उसमें योग देना चाहते थे। अब भी उनकी मनोवृति वैसी ही है। इसीसे इस देश में श्रमिक भी क्रान्तिकारी है।

किसानों तथा मजदूरों की तरह भारतीय राष्ट्र की मध्यम श्रेणी भी क्रान्तिकारी है। अब तक जितने आन्दोलन चले हैं उन सब में उसका विप्लवी कार्य सबसे अधिक रहा है। भविष्य में भी ऐसा ही होने की आशा है। जैसे विश्व के अन्य देशों में मध्यम श्रेणी क्रान्तिकारी होती है वैसे भारत में भी वह विप्लवी है। वह भी सम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामन्तशाही के भग्नावशेष आदि शोषण करने वाली प्रथाओं का अन्त कर जनतन्त्र का समर्थन करती है। वह समाज में क्रान्ति द्वारा गरीबी, अत्याचार तथा शोषण मिटाना चाहती है। सारांश यह है कि भारतीय मध्यम श्रेणी क्रान्तिकारी है।

आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करने पर राष्ट्र के उपरोक्त तीनों अंग क्रान्तिकारी हैं। इससे इन तीनों का सम्मिलित राजनीतिक दल या संगठन साम्राज्यवाद, सामन्तवाद के भग्नावशेष तथा पूँजीवाद के विनाश के लिए विशेष उपयोगी तथा सफल हो सकता है।

जहाँ तक जमींदारी तथा सामन्तशाही के समर्थकों का सम्बन्ध है वहाँ तक उनके कार्य क्रान्ति-विरोधी होते थे। राष्ट्रीयता का प्रभाव पड़ने पर भी वे अपने आर्थिक स्वार्थ पर विशेष ध्यान रखते थे और क्रान्तिकारी आन्दोलन का विरोध करते थे।

भारतीय पूँजीपतियों में दो गुट थे। यों तो दोनों ही विप्लवी प्रयास का विरोध करते थे परन्तु उनमें एक गुट क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता से

बहुत घबड़ाता था। जो गुट राष्ट्रीयता से कुछ प्रभावित था वह राष्ट्रीय आन्दोलन में कुछ सहायता देता था परन्तु जब संघर्ष क्रान्ति का रूप धारण करने लगता था तब वह भी उसे कमजोर करने या दबाने का प्रयत्न करता था। वह क्रान्ति के बदले विधानवादी उपायों से सुधारों द्वारा शान्ति-पूर्वक स्वराज्य प्राप्त कर प्रजातन्त्र स्थापित करने की बात करता था केवल सुधारवादी आन्दोलन का समर्थन करता था। विप्लवी संघर्ष से दोनों गुट भयभीत थे।

भारतीय पूँजीपतियों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी पूँजी विदेशी पूंजी के साथ हिन्दुस्तान के किसी किसी उद्योग-धन्धों में लगी थी। जब भारत पराधीन था तब उनकी पूँजी इंग्लैंड की पूँजी द्वारा काफी नियन्त्रित होती थी। अब हालत अवश्य ही बदल गई है। किन्तु तब भी उन की पूँजी और इंग्लैण्ड के कुछ पूँजीपतियों की पूँजी किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है। ब्रिटिश पूँजीपतियों से आर्थिक सम्बन्ध विच्छेद कर आर्थिक प्रजातन्त्र के लिए वे विप्लवी प्रयास में सहयोग के प्रति उदासीन रहते हैं।

पराधीन भारत में पूँजीपति अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए स्वाधीनता द्वारा हर प्रकार की सुविधा चाहते थे। स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीयता की प्राकृतिक इच्छा से वे परतन्त्रता का नाश भी चाहते थे। परन्तु वे उसके लिए क्रान्तिकारी उपायों का अवलम्बन नहीं करते थे। वे यह समझते थे कि क्रान्ति होने पर उनका आर्थिक स्वार्थ भारी संकट में पड़ सकता है या उस प्रथा का अन्त ही हो सकता है। उन्हें इस बात की आशंका सदा थी कि विप्लव होने पर कभी न कभी पूँजीवाद का अन्त हो सकता है। इसी भय से भारतीय पूँजीपति क्रान्ति का समर्थन नहीं करते थे। सारांश यह है कि भारतीय पूँजीपति विप्लव से पूँजीवाद के लिए संकट समझ राष्ट्रीय विप्लव के क्रान्तिकारी कार्यक्रम में सहायता नहीं देते हैं। वे उसका विरोध करते हैं। पहले का अनुभव यह सिद्ध करता है कि जमींदारी, ताल्लुकेदारी तथा सामन्तशाही के समर्थकों तथा पूँजीपतियों के कार्य ऐसे नहीं थे जो राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

आर्थिक दृष्टिकोण से इस बात पर विचार कर लिया गया कि भारतीय राष्ट्र का कौन अंग क्रान्तिकारी है और कौन विप्लव विरोधी है। अब मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर ध्यान देना है। यों तो जन्म से ही सब लोग स्वाधीनता चाहते हैं। मनुष्य में आर्थिक स्वार्थ की इच्छा प्रबल होने पर भी सब लोगों में स्वतन्त्रता की आकांक्षा रहती है। जानवर भी स्वाधीनता-पूर्वक इधर उधर विचरना चाहता है। पिंजड़ा में अच्छे अच्छे फल पाकर भी पक्षी परतन्त्रता के कारण दुखी रहता है। जब पक्षियों तथा जानवरों की मानसिक इच्छा ऐसी होती है तब मानव प्राणी का अधिक स्वतन्त्रता-प्रेमी होना स्वाभाविक है क्योंकि उसमें चेतना भी होती है।

विशेषत: जब मनुष्य शिक्षित होता है तब उसके गुण बढ़ जाते हैं तथा भावनायें जागृत हो जाती हैं। इससे वह अपने ही स्वार्थ की बात नहीं सोचता है बल्कि मानव समाज के हित पर भी ध्यान देता है। वह समाज के कल्याण के लिए ऐसे कार्य करने के लिए विशेष उत्सुक तथा तत्पर हो जाता है जिनसे राष्ट्र या जनता की भलाई होती है।

इस प्रकार विचार करने पर यह प्रकट होता है कि मध्यम श्रेणी में अन्य वर्गों की अपेक्षा शिक्षा अधिक होने से उसमें सहयोग, परोपकार, तथा समाज-सेवा की नि:स्वार्थ भावनाएँ अधिक जागृत होती हैं। इससे उस श्रेणी के लोग स्वाधीनता संघर्षों में प्राय: अधिक भाग लेते हैं तथा नेतृत्व भी करते हैं। इस दृष्टिकोण से मध्यम श्रेणी अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक विप्लवी होती है। यही बात भारत तथा चीन में साबित हो रही है। राष्ट्रीय विप्लव में भारतीय राष्ट्र का मध्यम श्रेणी सबसे अधिक क्रान्ति कारी है। आज भी राष्ट्रीय क्रान्ति में उसी का नेतृत्व है भविष्य में भी इसकी आशा है।

भारतीय स्वतन्त्रता से क्रान्ति-विरोधिनी शक्तियों को मार्मिक धक्का लगा है। उनका सहायक ब्रिटिश शासन न रह जाने पर भी वे सामन्तवादी मनोवृत्ति एवं साम्प्रदायिकता को भड़का कर भारतीय क्रान्ति को असफल बनाने के प्रयत्न में हैं। विश्व में अमेरिकी तथा ब्रिटिश साम्रा-

ज्यवाद का घनिष्ट सहयोग संसार की विप्लवी शक्तियों तथा राष्ट्रीय क्रान्तियों को निर्बल बनाने के लिए प्रयास करता है । भारत का विभाजन, सामन्तशाही के समर्थकों की कूटनीति, काश्मीर पर आक्रमण, देशी नरेशों के षड्यन्त्र तथा विश्ववंद्य हृदय सम्राट महात्मा गांधी का बलिदान साम्राज्यवादी कूटनीति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ऐसी दशा में भारत स्वतन्त्र तो हुआ। किन्तु साम्राज्यवाद सामन्तवादी के समर्थकों, साम्प्रदायिक संस्थाओं तथा पूँजीवादी प्रतिक्रियावाद शक्तियों को भड़काकर राष्ट्रीय क्रान्ति को असफल बनाने के प्रयत्न में है । देश की क्रान्तिकारी शक्तियों को संगठित रहना आवश्यक है। स्वाधीनता सुरक्षित तथा राजनीतिक एवं आर्थिक प्रजातन्त्र सुदृढ़ रखने के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

मूल विषय के अध्ययन के लिये राष्ट्रीय विप्लव में विभिन्न पार्टियों की देन समझ लेना चाहिए।

जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है वहाँ तक प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति का सुझाव सबसे पहले देने का श्रेय इस देश के गुप्त विप्लवी दल को है। जो बीसवीं सदी आरम्भ होने से पहले ही महाराष्ट्र, राजपुताना, पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में संगठित हो गया था । उसके नेता सर्वश्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल इत्यादि विदेश में प्रकाशित करा कर जो साहित्य हिन्दुस्तान में भेजते थे और यहाँ भी जो प्रकाशन गुप्त रूप से होता था उनसे यह सिद्ध होता है कि प्रजातन्त्र का आदर्श सबसे पहले देश के सामने रखने वाले उस गुप्त विप्लवी दल के सदस्य ही थे।

यह बात अवश्य है कि उनकी विचारधारा उतनी स्पष्ट नहीं थी जितनी आजकल राजनीतिक नेताओं के विचार साफ हैं । वह सम्भव भी नहीं था । फिर भी इतना तो निर्विवाद है कि भारत में साम्राज्यवाद को नष्ट कर प्रजातन्त्र स्थापित करने के विचार विप्लवयों के लक्ष्य में उसी समय घोषित हो गए थे । किन्तु उनके ध्येय, नीति एवं कार्यक्रम का प्रचार नहीं हो सका। इने गिने लोगों को उनकी जानकारी थी।

चीन में सन् १९११ ही में प्रजातन्त्रात्मक विप्लव हुआ । प्रथम विश्व युद्ध के अवसर पर दुनिया में क्रान्तिकारी लहर चल पड़ी। भारतीय विप्लवी बहुत सक्रिय हुए किन्तु राष्ट्रीय क्रान्ति नहीं हो सकी । वे ब्रिटिश शासन का अन्त तो नहीं कर सके परन्तु प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के आदर्श का कुछ प्रचार देश में कर गए । उस विप्लवी प्रयास के बाद भारत में क्रान्ति सम्बन्धी चर्चा कुछ बढ़ने लगी । १९२२ से ही अखिल भारतीय गुप्त विप्लवी दल हिन्दुस्तानी जनतन्त्र संघ (तथा सेना) ने अपना ध्येय "मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर शोषणविहीन समाज" निश्चित किया । अपना आदर्श नाम ही से प्रकट कर देने के अभिप्राय से काकोरी षड़यन्त्र के सम्बन्ध में उसके नेताओं—स्मरणीय सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, आशफाक उल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा रोशन सिंह के बलिदान के बाद सेनानी चन्द्रशेखर आज़ाद, सरदार भगतसिंह आदि के नेतृत्व में उसके नाम में समाजवादी शब्द जोड़ा गया । १९२८ से वह दल हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्र सेना (तथा संघ) कहलाने लगा । उसका लक्ष्य "ऐसा समाज जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव हो ।" घोषित हुआ । साथ ही उसकी विचारधारा में यह बात बिलकुल साफ हो गई कि सबसे पहले देश में राष्ट्रीय क्रान्ति होगी और उसके द्वारा जनतन्त्र की स्थापना होगी । परन्तु उस समय भी सर्वसाधारण तक उसके सिद्धान्तों की बात कहीं पहुँच सकी ।

जैसा भी हो । भारतीय विप्लवी राष्ट्रीय लोकतंत्रात्मक क्रान्ति की बात करते थे । किन्तु रूस में लेनिन इत्यादि नेता यह कहते थे कि पराधीन देश में भी पहला ही विप्लव समाजवादी क्रान्ति का रूप धारण कर सकता है । हिन्दुस्तान में जो वर्गवादी पैदा हुए वे भी वही स्वर अलापने लगे । इससे तृतीय इंटरनेशनल नामक कम्युनिस्ट संगठन की नीति के समर्थकों तथा हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी में गहरा सैद्धान्तिक मतभेद हो गया । दोनों दल अपने अपने विचार पर दृढ़ थे। जब काँग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता लक्ष्य घोषित किया तब उसने जनता के सामने प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति की नीति तथा देशव्यापी कार्यक्रम रखा । १९२९ में

कांग्रेस के लाहौर अधिवेषण के समय तक भारत में केवल गुप्त विप्लवी दल ही राष्ट्रीय क्रान्ति का नारा लगाते थे और वर्गवादी उसके प्रतिकूल प्रचार करते थे।

ऐसा राजनीतिक विवाद केवल भारत में ही नहीं था बल्कि कई दूसरे देशों के विप्लवियों में भी था। यहाँ तक कि थर्ड इन्टरनेशनल और चीन की वर्गवादी पार्टी में मतभेद होने के कारण कुछ दिनों के लिए दोनों का सम्बन्ध विच्छेद भी हो गया था। चीन के क्रान्तिकारी तथा वर्गवादी भारतीय विप्लवियों की तरह इस विचार को दृढ़ता पूर्वक मानते थे कि पराधीन तथा अर्ध पराधीन देशों में पहले प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति होनी अनिवार्य होती है और उसके बाद जनतन्त्र सुदृढ़ हो जाने पर समाजवादी जनतन्त्र की स्थापना संभव हो सकती है।

इस विवाद-ग्रस्त बात के सम्बन्ध में १९३५ के बाद भी चीनी वर्गवादी दल के नेता माओत्सेतुंग ने एक बार यह कहा था कि "चीन के राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता दुनिया के वर्गवादी आन्दोलन की सफलता का एक अंग है। चीन में साम्राज्यवाद का नाश करने से साम्राज्यवादी संगठन का एक बहुत बड़ा केन्द्र नष्ट हो जायगा। यदि चीन पूर्ण स्वतन्त्र हो जायगा तो संसार में क्रान्ति की उन्नति बहुत जल्दी होगी। ऐसे देश में जहाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता नहीं होती है वहाँ राष्ट्र का पहला कर्तव्य समाजवादी व्यवस्था की स्थापना नहीं होता है बल्कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति होता है। जो देश पराधीन हैं वहाँ हम लोग समाजवाद का प्रश्न नहीं छेड़ेंगे।"

वह तथा उनका दल इस बात को पहले से मानते थे कि परतन्त्र या अर्द्ध स्वाधीन देश के सामने सर्वप्रथम दो बड़े ऐतिहासिक कार्य विशेष या कर्तव्य होते हैं—पहला साम्राज्यवाद को नष्ट कर स्वतन्त्रता प्राप्त करना और दूसरा सामन्तशाही या अर्द्ध सामन्तशाही को समाप्त कर प्रजातन्त्र स्थापित करना। ऐसे ही विचारों के कारण चीन का वर्गवादी दल थर्ड इन्टरनेशनल से कुछ दिनों के लिए अलग भी हो गया था। १९३५ के बाद थर्ड इन्टरनेशनल ने अपनी भूल स्वीकार किया और प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति को स्वीकार किया।

हिन्दुस्तान् समाजवादी जनतन्त्र सेना (हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी) इस बात को सदा कहती थी। काँग्रेस ने तो प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति का पाठ सारे राष्ट्र को पढ़ाया ही । भारत में फारवर्ड ब्लाक, इत्यादि अन्य दल भी पहले राष्ट्रीय क्रान्ति ही होना आवश्यक तथा अनिवार्य समझते थे। चीन के वर्गवादी अपने देश के लिए १६५० तक यह कहते थे कि अब भी उन्हें प्रजातन्त्रात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम को पूरा करना है।

भारतवर्ष में जब थर्ड इन्टरनैशनल द्वारा विरोध होता था तब भी राष्ट्रीय क्रान्ति का नारा लगाने और उस सम्बन्ध में ठीक नीति निर्धारित करने का श्रेय बहुत पहले से देश के गुप्त विप्लवी दल और भारतीय काँग्रेस ही को है । आज सब दल जो सचमुच पार्टी कहे जा सकते हैं राष्ट्रीय विप्लव को मानते हैं।

अब यह देखना है कि भारतीय राष्ट्रीय प्रजातन्त्रात्मक विप्लव में उसके आरम्भ के पश्चात् इस समय तक कहाँ तक प्रगति हुई है तथा कहाँ तक उससे अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में विप्लवी शक्तियों को बल मिल रहा है। क्रान्ति सम्बन्धी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से इसकी परीक्षा होनी चाहिए।

यदि विप्लव से जनसाधारण के राजनीतिक अधिकार बढ़ें तो उसकी सफलता समझनी चाहिए । इस विचार से भारतीय विप्लव संसार की सब से बड़ी एवं महत्वपूर्ण क्रान्ति है। विदेशी शासन का अन्त होते ही भारतीय राष्ट्र राजसत्ता का श्रोत एवं आधार बन गया। अब राष्ट्रीय समाज का प्रत्येक व्यक्ति—स्त्री तथा पुरुष—देश का शासन चलाने के लिए जनता के प्रतिनिधि-निर्वाचन में समान रूप से अपने राजनीतिक अधिकार का प्रयोग कर सकता है। वह शासन में अपना प्रभाव हर पाँचवें वर्ष डाल सकता है। भारतीय विधान के अनुसार वह बालिग होते ही राष्ट्रीय शासन में अपना योग दे सकता है।

केवल मत देकर प्रदेशीय विधान सभा तथा भारतीय संसद् के सदस्यों को चुनने ही की बात नहीं है । भारतीय नागरिक को शासन में

सक्रिय सहयोग के लिए भी अवसर मिलता है । कई प्रदेशों जैसे उत्तर प्रदेश में प्रत्येक बालिग नागरिक ग्राम सभा (पंचायत), द्वारा अपने गाँव के शासन में भाग लेता है । इस प्रकार वह अपनी नागरिकता का प्रयोग केवल अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करने में ही नहीं करता है बल्कि स्वयं वह अपने ग्राम के आधार पर शासन भी चलाता है। इस तरह भारत का नागरिक भारतीय जनतन्त्र के विभिन्न शासकीय ईकाइयों में किसी न किसी रूप में भाग लेता है।

विश्व के किसी अन्य देश मे मतदाताओं की इतनी बड़ी संख्या नहीं है जितनी भारत में है। इससे यह प्रकट होता है कि भारतीय शासन में यहाँ के नागरिकों को अन्य राष्ट्रों के लोगों की अपेक्षा सब से अधिक अधिकार एवं सुविधा है । भारतीय विप्लव की यह सब से बड़ी राजनीतिक सफलता है।

जहाँ तक सारे देश की एकता का सम्बन्ध है आज सारा देश राष्ट्रीय राज के अन्तर्गत है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही राजा, महाराजा, नवाब आदि भारत में मिल गए। जिस समय १९४७ में हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हुआ, उस समय पाँच सौ से भी अधिक देशी स्वाधीन राज्य थे । वे सब भारत में सहर्ष विलीन हो गए। फ्रांसीसी राज्य के अधिकार में जो स्थान थे वे भी इनमें मिल गए। काश्मीर भी भारत का अंग बन गया। किसी युग में भी भारतवर्ष में इतनी राजनीतिक एकता नहीं थी जितनी अब है।

केवल अपने देश के भीतर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी भारत का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ रहा है । मानव हित के लिए संसार भारतीय नीति एवं सदिच्छा की उपयोगिता तथा देन मान रहा है। भारतीय राष्ट्रीय विप्लव की अद्वितीय सफलता विश्व को चकित कर रही है।

आर्थिक दृष्टिकोण से भारतीय विप्लव की प्रगति विशेष उल्लेखनीय है । स्वाधीनता प्राप्ति के समय इस देश में अन्न, वस्त्र, औषधि आदि सारे वस्तुओं का अभाव था । जीवन निर्वाह के लिए आवश्यकीय

पदार्थ की कमी के कारण बहुतेरे राजनीतिज्ञों को इस बात की आशंका थी कि भारतीय लोकतन्त्र के लिए भारी संकट उत्पन्न हो सकता है और साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी शक्तियाँ उसे असफल बना सकती हैं। यह शंका उचित ही थी।

कुछ भी हो। भारतीय जनतन्त्र की स्थापना होते ही भारत की सरकार तथा उसे चलाने वाली राष्ट्रीय काँग्रेस ने आर्थिक व्यवस्था के आधार ही को बदलने का निर्णय किया। जिस साधन से उद्योग-धन्धा के लिए आवश्यकीय पदार्थ उत्पन्न होते हैं उसी मूल साधन में मौलिक परिवर्तन का निर्णय हुआ। कल कारखानों के लिए जो वस्तु आवश्यक होती हैं उन सारी चीजों का उत्पादन भूमि से होता है। इससे उस मुख्य श्रोत एवं साधन के स्वामित्व में अभूतपूर्व परिवर्तन आवश्यक समझा गया।

इस अभिप्राय से भारत में स्वतन्त्र रियासतों (राज्यों) का मिलन होते ही उनके राज्यों कीं भूमि पर से उनका स्वामित्व भी समाप्त हो गया। अर्थात उनकी राजनीतिक सत्ता भारतीय जनता की सत्ता में विलीन होने के साथ ही उन रियासतों की भूमि पर उनके अधिकार का अन्त हो गया। फिर देश के विभिन्न प्रदेशों में जमींदारी, ताल्लुकेदारी, जागीरदारी उन्मूलन सम्बन्धी कानून पास हुए। उनसे लाखों जमींदारों तथा जागीरदारों की भूमि सम्बन्धी अधिकार मिट गए। यह शान्तिमय वैधानिक उपायों से हुआ।

इस प्रकार १९४७ तक भारत की रियासतों में जो सामन्तवादी भूमि व्यवस्था थी वह बिलकुल समाप्त हो गई। जमींदारी प्रथा रूपी सामन्तवाद के भग्नावशेष का भी अन्त हो गया।

फिर उद्योग-धन्धा एवं वाणिज्य के सम्बन्ध में नई नीति आरम्भ हुई। अप्रैल १९४८ में भारतीय सरकार ने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया। उसमें हर प्रकार का उत्पादन बढ़ाने और उसके उचित वितरण पर बहुत ज़ोर दिया गया। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए स्वयं राज (सरकार) को सक्रिय कार्य करना

चाहिए । इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय सरकार को अपने प्रबन्ध में भी उद्योग-धंधा चलाना चाहिए । इसके अनुसार हथियार तथा उसके लिए आवश्यकीय सामग्री, अणु शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण, और रेलवे सम्बन्धी आवागमन के साधनों को राजकीय प्रशासन में सुरक्षित रखने का निर्णय हुआ । असाधारण परिस्थिति में राष्ट्रीय रक्षा के लिए आवश्यकीय सारे उद्योग धंधे सरकारी प्रबन्घ में ले लेने की नीति भी तय हुई ।

उस प्रस्ताव द्वारा कोयला, लोहा तथा इस्पात, वायुयान बनाने का कारखाना, समुद्री जहाज बनाने का कार्य, तार, टेलीफोन, बेतार का तार आदि संबन्धी उद्योग-धंधों और मिट्टी के तेल एवं पैट्रोल निकालने के उद्योग-धंधों को सरकार के सीधे प्रबन्ध में रखा गया । इनको छोड़ बाकी उद्योगों के स्वतन्त्र विकास के लिये पूरी सुविधा दी गई । यदि नए उद्योग-धंधों के लिए सरकार को निजी पूँजी या सहयोग की आवश्यकता जान पड़े तो उनमें सरकारी पूँजी तथा निजी (private) पूँजी का सम्मिलित प्रयास हो सकता है । वैसी हालत में सरकार ही का अधिकार प्रबन्ध एवं संचालन में प्रधान रहना चाहिए । यह निश्चय हुआ । उस प्रस्ताव पर ध्यान रखते हुए प्रथम पंच वर्षीय योजना बनी । उसमें सबसे अधिक कृषि की उन्नति के लिए प्रयत्न हुआ, क्योंकि उसके बिना उद्योग-धंधा नहीं बढ़ सकता है । यदि अर्थ व्यवस्था अच्छी तरह विकसित नहीं होती है तो कृषि तथा उद्योग-धंधों में विरोधी स्वार्थ उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं के बराबर होती है । खेती में जो लोग लगे रहते हैं उनके अतिरिक्त बहुतेरे आदमी ऐसे रहते हैं जिनकी जीविका कारखानों में चल सकती है । इससे उद्योग-धंधा के लिए आवश्यकीय पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने तथा मिलों में श्रमिकों की पूर्ति में विरोध नहीं पड़ता है ।

उद्योग-धंधों के विकास से मजदूरों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है । इनके लिए खाद्य सामग्री भरपूर पैदा करने के अभिप्राय से यह अनिवार्य है कि कृषि खूब उन्नति करे । साथ ही मिलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती और भूमि से कच्चा माल अधिक पैदा करने की

राज इस बात का विशेष ध्यान रखेगा कि आर्थिक व्यवस्था में कोई ऐसी बात न हो जिससे सार्वजनिक हित के प्रतिकूल धन (सम्पत्ति) तथा उत्पादन के साधन कहीं केन्द्रित हो जाये । इस अभिप्राय से राज बड़े बड़े उद्योग-धन्धों को केवल पूरे नियन्त्रण में ही नहीं रखेगा बल्कि स्वयं वह उन्हें चलावेगा भी । ऐसे उद्योगों से उत्पादन बहुत बढ़ता है । यदि उन पर राज का पूरा नियन्त्रण नहीं रहेगा तो उन से शोषण हो सकता है । उन्हें चलाने वाले पूँजीपतियों का आधिपत्य उन पर हो सकता है । इससे देश को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि स्वयं राज बड़े बड़े उद्योगों को चलावे या उन पर पूरा नियन्त्रण रखे ।

भारतीय विधान की इस नीति तथा औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव (१९४८) के बाद भारतीय संसद् ने "समाजवादी ढाँचे का समाज" अपना लक्ष्य घोषित किया । इससे आर्थिक व्यवस्था में भारी परिवर्तन अनिवार्य हो गया । इस राष्ट्रीय ध्येय के लिए सार्वजनिक उपयोगिता, एवं राष्ट्रीय रक्षा सम्बन्धी उद्योगों तथा छोटे-मोटे उद्योगों के आधारभूत उद्योग-धन्धों को सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रखना जरूरी है । इसलिए औद्योगिक उन्नति के लिए स्वयं राज को अधिक जिम्मेदारी उठानी चाहिए अर्थात् राज को अपने सीधे प्रबन्ध में अधिक से अधिक उद्योग-धन्धों को चलाना चाहिए ।

राष्ट्र के औद्योगिक ध्येय तथा समाजवादी ढाँचे के समाज के लक्ष्य के अनुसार १९५६ में भारतीय सरकार ने देश के लिए नई औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में नया प्रस्ताव स्वीकृत किया । इसके अनुसार भारत के उद्योग-धन्धों में तीन विभाजन हुए ।

१. कुछ उद्योग-धन्धे केवल राज के संचालन एवं प्रबन्ध में चलने चाहिएँ ।

२. कुछ उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए स्वयं सरकार को प्रयत्न करना चाहिए । किन्तु उसके साथ ही निजी पूँजी भी उनमें लग सकती है । अर्थात् ऐसी इन्डस्ट्री में राजकीय पूंजी, संचालन एवं प्रबन्ध में अन्य व्यक्तियों का भी सहयोग हो सकता है । राजकीय पूंजी तथा

निजी पूंजी का पारस्परिक संयुक्त सहयोग तथा प्रयास होना चाहिए।

३. बाकी उद्योग-धन्धों को चलाने तथा जो हैं उनकी उन्नति के लिए व्यक्ति को पूरी सुविधा एवं स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। अर्थात् निजी पूंजी से वैसे उद्योग चल सकते हैं।

१९४८ की औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार केवल नौ उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए सरकार ने उन्हें अपने प्रबन्ध में रखा था। आवाड़ी में राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा समाजवादी ढाँचे की व्यवस्था स्वीकृत हो जाने के बाद द्वितीय पंच वर्षीय योजना में उनकी संख्या लगभग दुगुनी (सत्तरह) हो गई। अर्थात् स्वयं राज नौ उद्योग-धन्धों के बदले दूसरी पाँच साला योजना में सत्तरह उद्योगों को अपने संचालन तथा प्रबन्ध में चलाने लगा।

भारतीय संसद् ने १९५६ में औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में नया प्रस्ताव पास किया। उसके अनुसार द्वितीय पंच वर्षीय योजना में उद्योग धन्धों पर पहली योजना की अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति लगाई गई। इससे समाजवादी व्यवस्था के लक्ष्य के अनुकूल राष्ट्र, राज या सरकार ने उद्योगों के लिए बहुत व्यापक कार्यक्रम आरम्भ किया। भारत में पूँजी की विशेष कठिनाई होने पर भी कई उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो गया।

पहली राष्ट्रीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी राजकीय प्रबन्ध में चलने वाले उद्योग-धन्धों के लिए चौरानवे करोड़ रुपये की पूँजी लगाने का निर्णय था और निजी क्षेत्र में पूँजीपतियों द्वारा दो सौ तेंतीस करोड़ रुपये की पूँजी लगने वाली थी। दूसरी पाँच साला योजना के अन्तर्गत राजकीय प्रबन्ध के बड़े बड़े उद्योग-धन्धों में छः सौ नब्बे करोड़ रुपये की पूँजी लगाने का निर्णय हुआ और निजी पूँजी से चलने वाले कारोबार में पाँच सौ पचहत्तर करोड़ रुपए लगाने की बात तय हुई। इससे यह मालूम होता है कि भारतीय उद्योग-धन्धों में राज दिन प्रति दिन अपना कारोबार बढ़ाता जा रहा है और उनके राष्ट्रीयकरण में जल्दी जल्दी प्रगति हो रही है। समाजवादी व्यवस्था के लक्ष्य के अनुकूल कार्यक्रम

आरम्भ हो गया है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी भारतीय विप्लव सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहा है । आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी भारतीय जनतन्त्र तथा उसके विधान के सिद्धान्त से भी राष्ट्रीय क्रान्ति की महत्ता स्पष्ट ज्ञात होती है ।

भारतीय विधान में निम्नलिखित बातों पर पूरा ध्यान रखा गया है——

१. सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय हो ।

२. विचार, विश्वास एवं धर्म मानने तथा उसे प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो ।

३. सबको समान अवसर मिले ।

४. व्यक्ति की महत्ता तथा राष्ट्र की एकता सुरक्षित रहे और उनमें बन्धुत्व की भावना रहे ।

विधान के मुख्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में राज की यह नीति है कि "जनता की भलाई के लिए राज ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने तथा उसे सुरक्षित रखने के लिए पूरा प्रयत्न करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय हो ।" विशेषत: निम्न बातों की पूर्ति के लिए राज अपनी नीति सक्रिय रूप से कार्यान्वित करेगा——

१. जीविका के लिए उपयुक्त साधन का अधिकार सब नगरिकों-पुरुषों एवं स्त्रियों——को बराबर रहे ।

२. समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व एवं नियन्त्रण का विभाजन इस प्रकार हो कि अधिक से अधिक सार्वजनिक हित हों ।

३. आर्थिक व्यवस्था ऐसी न हो जिससे सार्वजनिक स्वार्थ के प्रतिकूल सम्पत्ति तथा उसके साधन का केन्द्रीकरण हो ।

४. आदमी तथा औरत दोनों को बराबर काम के लिए बराबर वेतन मिले ।

५. आर्थिक कठिनाइयों के कारण किसी व्यक्ति को ऐसे कार्य न करने पड़ें जो उसकी आयु एवं शक्ति के अनुकूल न हों । श्रमिकों (स्त्री

एवं पुरुष) के स्वास्थ्य तथा शक्ति का और बालक बालिकाओं के आयु. का दुरुपयोग न हो।

६. शोषण से बाल्य एवं युवा अवस्था की रक्षा हो।

जब दिसम्बर १९५४ में सामाजिक एवं आर्थिक ध्येय के सम्बन्ध में भारतीय संसद् ने "सामाजवादी ढाँचे का समाज" अपना लक्ष्य स्वीकार किया तब उन सिद्धान्तों तथा नीति को अधिक बल मिला। उनका महत्व स्पष्ट मालूम होने लगा।

भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा ऐसी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए अनेकों महान कार्य हो रहे हैं। उनसे संसार के विभिन्न देश प्रभावित एवं चकित हो रहे हैं। उनसे आर्थिक व्यवस्था में आमूल मौलिक परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से भी भारतीय विप्लव सफल हो रहा है।

समाज के सदस्यों में हर प्रकार की समानता के लिए भारतीय सरकार ने अनेकों कानून पास किये हैं। जाति, रंग, या किसी वंश में जन्म के कारण किसी प्रकार का विभेद नहीं रह गया है। देश के सब नागरिकों को बिना किसी अन्तर के समाज में सब साधनों का उपयोग समानता के आधार पर करने की सुविधा है। छुआछूत, ऊँच नीच एवं धनी निर्धन का भेद रामाप्त हो गया है।

धर्म के सम्बन्ध में भारतीय राज निरपेक्ष है। अपना अपना धर्म एवं विचार मानने की सुविधा तो है किन्तु धर्म का कोई प्रभाव सरकार—राज—पर नहीं है। धार्मिक मामलों में भारतीय सरकार तटस्थ है। धर्म के कारण शासन पर कोई असर नहीं पड़ता है। देश के नागरिकों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास के लिए राज द्वारा अवश्य प्रयास होता है।

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रीय विप्लव पर विचार करने से यह निर्विवाद हो जाता है कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी उसको महत्वपूर्ण सफलता मिल रही है।

इस अवस्था में भी उसकी तुलना चीन की साम्यवादी क्रान्ति से

हो सकती है। जहाँ तक राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक समानता की बात है भारतीय विधान चीन की सरकार की अपेक्षा व्यक्ति तथा समाज को बहुत अधिक सुविधा समानता के आधार पर देता है। अपना विचार प्रकट करने तथा सरकार की आलोचना करने की स्वतन्त्रता जितनी भारत में है उतनी चीन में नहीं है।

जहाँ तक आर्थिक कार्यक्रम एवं नीति की बात है वहाँ तक लोक-तन्त्र होने पर भी भारतीय राज चीन से पीछे नहीं है। उद्योग-धन्धों में वह आगे ही है। भारतीय सरकार ने १६४८ में जिस औद्योगिक कार्य-क्रम तथा नीति को अपनाया, उसकी क्रान्तिकारी महत्ता एवं उपयोगिता चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के आठवें काँग्रेस के निर्णयों से १६५६ में भी सिद्ध हुई। भारतीय औद्योगिक नीति तथा कार्यक्रम १६५६ के प्रस्ताव के रूप में फिर आगे बढ़ गया है।

राज के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में चलने वाले बड़े बड़े उद्योग-धन्धों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। उससे चीन की अपेक्षा भारत का आर्थिक कार्यक्रम पीछे नहीं रह गया है बल्कि आगे बढ़ गया है। चीन में कम्यु-निस्ट पार्टी ने १६५६ में यह घोषित किया कि सरकारी पूंजी और निजी (private) पूंजी में सहयोग देश के लिए लाभदायक है। हिन्दुस्तान में ऐसा ही होता है। भारत के आर्थिक कार्यक्रम के अनुसार स्वयं सरकार कई बड़े बड़े उद्योग-धन्धों को चलाती है। वह कुछ उद्योग-धन्धों को चलाने में पूँजीपत्तियों का सहयोग लेती है। यही नीति चीन में भी है। वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के आठवें काँग्रेस के स्वीकृत प्रस्तावों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

बराबर काम के लिए बराबर वेतन की नीति चीन की कम्युनिस्ट पार्टी मानती है। भारतीय विधान की यही नीति है। भारत के आर्थिक कार्यक्रम एवं नीति का मुख्य अभिप्राय यह है कि देश का उत्पादन अधिक से अधिक बढ़े और पूँजीवाद को अधिक से अधिक नियन्त्रित रख शोषण समाप्त किया जाय। सामाजवादी व्यवस्था लक्ष्य घोषित होने के बाद भारत में पूंजीवादी उद्योग क्रमशः सीमित होते जा रहे हैं।

पूंजीवाद के अन्त के लिए भारतीय जनतन्त्र अपना नवीन ढंग अपना रहा है। जैसे स्वाधीनता प्राप्ति के लिए भारत ने संसार को नूतन उपाय बतलाया है वैसे ही समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए भी भारतीय जनतन्त्र लोकतन्त्रात्मक साधन बतला रहा है।

मानवता के लिए राजनीति में भारत की अद्वितीय देन से सारे विश्व की विचारधारा पर प्रभाव पड़ रहा है। उन देशों में भी जहाँ कम्युनिस्ट सरकार है जैसे पोलैंड, हंगरी आदि, राजनीतिक नीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है। वहाँ भी वैधानिक उपाय से समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का विचार हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के बदले राष्ट्रीय साम्यवाद का प्रादुर्भाव हो रहा है। उसमें लोकतन्त्रात्मक भावना का समावेश आरम्भ हुआ है।

वैधानिक उपायों से समाजवादी समाज की स्थापना के लिए भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की विचारधारा का प्रचार संसार में हो रहा है। विशेषत: जनवरी १६५७ में इन्दौर में होने वाले काँग्रेस अधिवेशन के निर्णयों से उसका स्पष्टीकरण हो गया है। इससे भारतीय राष्ट्रीय विप्लव की सफलता से केवल भारत ही नहीं बल्कि सारा संसार विशेषत: एशिया लाभान्वित हो रहा है। पंचशील की सफलता भारतीय लोकतन्त्रात्मक क्रान्ति की सफलता है। इस राष्ट्रीय क्रान्ति से मानव समाज सुखी होगा—यही आशा है।

भारतीय विप्लव चिरंजिवी हो
इन्कलाब ज़िन्दाबाद।

समाप्त।